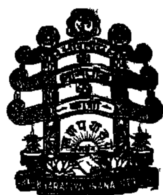
ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला—हिन्दी ग्रन्थाङ्क ५

धर्मशर्माभ्युदय

[धर्मनाथचरित]

पण्डित पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य



भारतीय ज्ञानपीठ काशी

प्रकाशक,—
अयोध्याप्रसाद गोयलीय
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

****
प्रथम संस्करण
१९५४
मूल्य तीन रुपये
****

मुद्रक,
श्री प्यारेलाल भार्गव
राजा प्रिंटिंग प्रेस,
बी. २१।२७, कमच्छा, बनारस।

विषय-सूची

तृतीय सर्ग

चतुर्थ सर्ग

पञ्चम सर्ग

षष्ठ सर्ग

सप्तम सर्ग

अष्टम सर्ग

नवम सर्ग

दशम सर्ग

एकादश सर्ग

द्वादश सर्ग

त्रयोदश सर्ग

चतुर्दश सर्ग

पञ्चदश सर्ग

षोडश सर्ग

सप्तदश सर्ग

अष्टादश सर्ग

एकोनविंश सर्ग

विंश सर्ग

एकविंश सर्ग



दो शब्द

भारतीय परम्परामें कालिदास प्रभृति प्रतिभावान् जो महाकवि हुए हैं उनमे महाकवि हरिचन्दकी गणना होती है। धर्मशर्माभ्युदय उनकी अमर कृति है। इसमे २१ सर्गों द्वारा १५ वें तीर्थंकर धर्मनाथके स्वपरोपकारी पवित्र जीवनका सरस वाणी द्वारा चरित्र चित्रण किया गया है। कविताकी दृष्टिसे धर्मशर्माभ्युदय अनघद्र काव्य है। इसमें कथाभाग आलम्बनमात्र है। इसे स्पर्श करते हुए कवि जिस प्राकृतिक सौन्दर्य सुषमाको काव्यकी आत्मा बनाता है उसकी तुलनामे कतिपय काव्य ही ठहरते हैं। अश्वघोषकी कवितामे जिस स्वाभाविकताके और कालिदासकी कवितामें जिस उपमाके हमे दर्शन होते हैं उन्होंने इसमे सगमका रूप लेकर इसे तीर्थराज प्रयागके स्थानमे ला बिठाया है। श्रीयुक्त बलदेवजी उपाध्यायके शब्दोंमे—'शब्दसौष्ठव तथा नवीन अर्थ कल्पनाके लिए यह काव्य प्रसिद्ध है। जैन साहित्यमें इस महाकाव्यका वही स्थान तथा आदर है जो ब्राह्मण कवियोमे माघकाव्य तथा नैषध काव्यको प्राप्त है।' इतना सब होते हुए भी महाकविने इसके अन्तमे मोक्ष पुरुषार्थकी प्रधानता स्थापित कर भारतीय परम्पराकी जिस सुन्दरतासे रक्षा की है उसे देखते हुए अन्य कतिपय महाकाव्य इसके पीछे रह जाते हैं।

एक ओर जहाँ यह बात है वहाँ दूसरी ओर यह देखकर हमें नतमस्तक होना पड़ता है कि अध्ययन-अध्यापनमें इस महाकाव्यका प्रचार नहींके बराबर है। उँगलियों पर गिनने लायक दो-तीन जैन विद्यालय और पाठशालाएं ही ऐसी हैं जिनमें इसका अध्ययन-अध्यापन होता है। हमे यह देख कर और भी आश्चर्य होता है कि इसपर अबतक कोई छोटी-बड़ी टीका भी नहीं लिखी गई है।

अपने अध्ययन कालमें हमने चन्द्रप्रभचरितकी रूपचन्द पाण्डेय द्वारा निर्मित हिन्दी टीका देखी थी और उससे लाभ उठाया था। उस समय हमारे मनमें यह भाव आया था कि यदि कोई धर्मशर्माभ्युदयकी कविताके मर्मको जाननेवाला विद्वान् इसकी हिन्दी और संस्कृत टीका लिख देता तो साहित्यिक क्षेत्रमें उसकी यह सबसे बड़ी सेवा होती।

उस समय यद्यपि यह काम न हो सका फिर भी इस समय हमें यह लिखते हुए प्रसन्नता होती है कि श्रीयुक्त प० पन्नालाल जी साहित्याचार्यका ध्यान इस कमीकी ओर गया और उन्होने इसे पूरा करनेकी कृपा की है।

पण्डित पन्नालालजी साहित्याचार्य प्रतिभाशाली विचक्षण कवि है। एक कविके लिए प्रतिभा, विद्वत्ता और भद्रता आदि जिन गुणोंकी आवश्यकता होती है वे उनमे मौजूद हैं। साहित्यिक क्षेत्रमें अनुपम सेवामे लगे हुए हैं। वे अपने दैनन्दिन के अध्यापन आदि दूसरे कार्य सम्पन्न करते हुए यह कार्य करते हैं फिर भी इसमें किसी प्रकारकी कमी नहीं आने पाती है। उन्होंने इस महाकाव्यकी संस्कृत और हिन्दी दोनो प्रकारकी टीकाएँ लिखी हैं। इतना ही नहीं उन्होंने चन्द्रप्रभचरित और जीवन्धर-चम्पू जैसे उत्कृष्ट काव्योंकी भी संस्कृत टीकाएँ लिखी हैं।

तत्काल भारतीय ज्ञानपीठसे उसकी धर्मशर्माभ्युदयकी यह हिन्दी टीका प्रकाशित हो रही है। कविताके मर्मको स्पर्श करते हुए यह सरल और सुबोध बनाई गई है। इससे विद्यार्थियोंको तो लाभ होगा ही। साथ ही स्वाध्याय प्रेमी भी इस द्वारा धर्मशर्माभ्युदय जैसे महान् काव्यका रसास्वाद करनेमे समर्थ होगे। इस साहित्य सेवाके लिए हम पण्डितजी और भारतीय ज्ञानपीठ दोनोंके आभारी है।

—फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

प्रस्तावना

काव्य-चर्चा—

यह बिलकुल सत्य है कि जनताके हृदय पर कविताका जितना असर पड़ता है उतना सामान्य वाणीका नहीं। कविता एक चमत्कारमयी भारती है—कविता श्रोताओंके हृदयोंमे एक गुदगुदी पैदा करती है जिससे दुरूह विषय भी उनके हृदय-स्थलमे सरलतासे प्रविष्ट हो जाते हैं। सामान्य आदमी जिस बातको कहते-कहते घण्टो बिता देता है और अपने कार्यमें सफलता प्राप्त नहीं कर पाता उसी विषयको कवि अपनी सरस कविताओंसे क्षण एकमे सफल बना देता है। यदि भावुक दृष्टिसे देखा जाय तो चन्द्रमे, चादनीमे, गङ्गामे, गङ्गाके कलरवमे, हरियालीमे, रङ्ग-विरङ्गे फूलोंमें, धूपमें, छायामे—सब जगह कवित्व विखरा हुआ पड़ा है। जिसकी अन्तरात्मामें शक्ति है उसे सचित करनेकी, वह मनोहर मालाएँ गूंथता है और संसारके सामने उन्हें रख अमर कीर्ति प्राप्त करता है।

काव्यका स्वरूप—

काव्य क्या है? इस विषयमे अनेक कवियोंके अनेक मत है—आनन्दवर्धनने ध्वन्यालोकमें ध्वनिको, कुन्तकने वक्रोक्तिजीवितमें वक्रोक्तिको, भोजदेवने सरस्वतीकण्ठाभरणमे निर्दोष सगुण और सरस शब्दार्थको, मम्मट ने काव्यप्रकाशमें दोष रहित, गुण सहित और अलंकार युक्त (कहीं कहीं अलंकारसे शून्य भी) शब्द और अर्थको, विश्वनाथने साहित्यदर्पणमे रसात्मक काव्यको, पण्डितराज जगन्नाथने विच्छित्ति चमत्कार पैदा करनेवाले शब्दार्थ-समूहको, वाग्भट और अजितसेनने भोजराजकी तरह निर्दोष सगुण, सालंकार तथा सरस शब्दार्थको काव्य माना है। और भी साहित्य

ग्रन्थोमे कई तरहसे काव्यस्वरूपका वर्णन किया है। एक दूसरेने दूसरेकी मान्यताओंका खण्डन कर अपनी-अपनी मान्यताओंको पुष्ट किया है। यदि विचारक दृष्टिसे देखा जाय तो किसीकी मान्यताएं असंगत नहीं हैं क्योंकि सबका उद्देश्य चमत्कार पैदा करनेवाले शब्दार्थमे ही केन्द्रित है। सिर्फ उस चमत्कारको कोई रससे, कोई अलंकारसे, कोई ध्वनिसे, कोई व्यञ्जनासे और कोई विचित्र उक्तियोंसे अभिव्यञ्जित करना चाहते हैं।

काव्यके कारण—

'सर्वतो मुखी प्रतिभा' 'बहुज्ञता व्युत्पत्तिः' सब ओर सब शास्त्रोंमें प्रवृत्त होनेवाली स्वाभाविक बुद्धि प्रतिभा और अनेक शास्त्रोंके अध्ययनसे उत्पन्न हुई बुद्धि व्युत्पत्ति कहलाती है। काव्यकी उत्पत्तिमे यही दो मुख्य कारण हैं। **'प्रतिभा-व्युत्पत्त्योः प्रतिभा श्रेयसी'** इत्यानन्दः—आनन्द आचार्य का मत है कि प्रतिभा और व्युत्पत्तिमें प्रतिभा ही श्रेष्ठ है क्योंकि वह कविके अज्ञानसे उत्पन्न हुए दोषको हटा देती है और **'व्युत्पत्तिः श्रेयसी'** इति मङ्गल,—मङ्गलका मत है कि व्युत्पत्ति ही श्रेष्ठ है क्योंकि वह कविके अशक्ति कृत दोषको छिपा देती है। **'प्रतिभा-व्युत्पत्ती मिथः समवेते श्रेयस्यौ'** इति यायावरीयः—यायावरीयका मत है कि प्रतिभा और व्युत्पत्ति दोनों मिलकर श्रेष्ठ है क्योंकि काव्यमे सौन्दर्य इन दोनों कारणोंसे ही आ सकता है। इस विषयमे राजशेखरने अपनी काव्य-मीमांसामे क्या ही अच्छा लिखा है—**'न खलु लावण्यलाभादृते रूपसम्पत्, ऋते रूप-सम्पदो वा लावण्यलब्धिर्महते सौन्दर्याय'**—लावण्यके प्राप्त हुए बिना रूप सम्पत्ति नहीं हो सकती और न रूप-सम्पत्तिके बिना लावण्यकी प्राप्ति सौन्दर्यके लिए हो सकती है।

कवि—

'प्रतिभाव्युत्पत्तिमांश्च कविः कविरित्युच्यते'—प्रतिभा और व्युत्पत्ति

जिसमे हो वही कवि कहलाता है। कई आदमी अनेक शास्त्रोंका विज्ञान होने पर भी कविताके रूपमे एक पद्य भी ससारके सामने प्रकट नहीं कर पाते। इसमें कारण है तो एक यही कि उनमे काव्यविषयक प्रतिभा नहीं है। और कई आदमी थोड़ा पढ़-लिखकर भी सुन्दर कविताएं करते हैं—इसका कारण है कि उनमे काव्य-विषयक अद्भुत प्रतिभा विद्यमान रहती है। हमने काशीमे एक ऐसे बालकको देखा था कि जिसकी आयु १०-११ वर्षकी थी और जो व्याकरणमे उस समय लघुसिद्धान्तकौमुदीका अजन्त पुल्लिङ्ग पढता था। 'ललाटे' समस्या देने पर उसने बहुत ही सुन्दर शब्दोंमे उसकी तत्काल पूर्ति कर दी थी। पर ऐसा शक्ति किन्हीं विरले ही मनुष्योंमे हुआ करती है। सामान्य रूपसे तो प्रतिभाके विकासके लिए शास्त्राध्ययन की ही आवश्यकता रहती है। प्रतिभा और व्युत्पत्ति दोनोंके सगमसे कविमे एक ऐसी अद्भुत शक्ति उत्पन्न हो जाती है कि उसके प्रभावसे वह अपने कार्यमे तत्काल सफल हो जाता है। यदि प्रतिभाके बिना केवल व्युत्पत्तिके बल पर कविता की जावेगी तो उसमे कृत्रिमता रहेगी, स्वाभाविकता नही। और केवल प्रतिभाके बल पर कविता की जायगी तो उसमे भावके अनुकूल शब्द वगैरह नहीं मिलनेसे सौष्ठव पैदा नहीं हो सकेगा। गाँवोंमे मैंने ऐसे कई ग्राम्यगीत सुने हैं जिनका भाव बहुत ही सुन्दर था और जिनके रचयिता वे थे जो एक अक्षर भी नही लिख पाते थे। परन्तु भावके अनुकूल शब्द नहीं मिलनेसे उनकी शोभा प्रस्फुटित नहीं हो पाई थी।

कविके भेद—

'काव्य-मीमासा'मे राजशेखरने कवियोंके तीन भेद लिखे हैं—१ शास्त्र-कवि, २ काव्य-कवि, ३ उभय कवि। 'तेषामुत्तरोत्तरो गरीयान्' इति श्यामदेवः—श्यामदेवका कहना है कि ऊपर कहे हुए कवियोंमें आगे-आगेके कवि श्रेष्ठ होते हैं—शास्त्र-कविकी अपेक्षा काव्यकवि और उसकी अपेक्षा

उभय कवि श्रेष्ठ होता है। परन्तु यायावरीय इस मतसे सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि 'स्वविषये सर्वो गरीयान्। नहि राजहंसश्चन्द्रिका-पानाय प्रभवति, नापि चकोरोऽद्भ्यः क्षीरोद्धरणाय। यच्छास्त्रकविः काव्ये रससम्पदं विच्छिनत्ति, यत्काव्यकवि शास्त्रे तर्ककर्कशमप्यर्थमुक्तिवैचित्र्येण श्लथयति। उभयकविस्तूभयोरपि वरीयान् यद्युभयत्र परं प्रवीणः स्यात्' अपने-अपने विषयमें सभी श्रेष्ठ हैं। क्योंकि राजहंस चन्द्रिकाका पान नहीं कर सकता और चकोर पानीसे दूधको अलग नहीं कर सकता। दोनोंमें भिन्न भिन्न दो प्रकारकी शक्ति है जिससे वे दोनों श्रेष्ठ हैं। शास्त्र कवि काव्यमे रसका निष्पन्द देता है और काव्य कवि तर्कोंसे कठिन अर्थको अपनी सरस उक्तियोंकी विचित्रतासे मृदुल बना देता है। हाँ, उभय कवि दोनोंमें अवश्य श्रेष्ठ है यदि वह दोनो विषयोमे अत्यन्त चतुर हो।

काव्यका प्रयोजन—

इस विषयका जितना अच्छा संग्रह मम्मट भट्टने अपने 'काव्य-प्रकाश'मे किया है उतना शायद किसी दूसरेने नहीं किया है।

"**काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।**

सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे॥"

काव्य यशके लिए, व्यावहारिक ज्ञानके लिए, अमंगल दूर करनेके लिए, तात्कालिक आनन्दके लिए और कान्तासम्मिततया—स्त्रीके समान मधुर आलापसे उपदेश देनेके लिए—सत्पथ पर लानेके लिए निर्मित किया जाता है—रचा जाता है। आज, काव्य-रचनाके कारण ही कालिदासकी सुन्दर कीर्ति सब जगह छाई हुई है। राजा भोज उत्तम काव्यकी रचनासे ही प्रसन्न होकर कवियोके लिए '**प्रत्यक्षरं लक्षं ददौ**' एक-एक अक्षर पर एक-एक लाख रुपये दे देता था। काव्यके पढ़नेसे ही देशकी प्राचीन अर्वाचीन सभ्यताके व्यवहारका पता चलता है। काव्यरचनाके

प्रतापसे ही आचार्य मानतुङ्ग कारागृहसे बाहर निकले थे, वादिराज मुनिका कुष्ठ दूर हुआ था, पंडितराज जगन्नाथका गङ्गाके प्रवाहने सुस्पर्श किया था। कमनीय काव्योंके सुननेसे ही सहृदय पुरुषोंको अनन्त आनन्द उत्पन्न होता है और काव्यके प्रभावसे ही सुकुमारमति बालक कुपथसे हट कर सुपथ पर आते हैं।

काव्यके भेद—

काव्य दो प्रकारका होता है एक दृश्य काव्य और दूसरा श्राव्य काव्य। दृश्यकाव्य नाटक, रूपक, प्रकरण, प्रहसन, आदि अनेक भेद वाला है। इस काव्यमें कविका हृदय चित्रमय होकर रङ्गभूमिमें अवतीर्ण होता है और अपनी भावभङ्गियोंसे दर्शकोंके मनको मोहित करता है। कहना न होगा कि श्राव्य काव्यकी अपेक्षा दृश्य काव्य जनता पर अधिक असर डाल सकता है। श्राव्य काव्य वह है जो कर्णइन्द्रियका विषय हो। इसमे कविका हृदय किसी भौतिक रूपमे प्रकट नहीं होता, किन्तु वह अलौकिक रूप लेकर ससारमे प्रकट होता है जो कि श्रोताओंके श्रवण-मार्गसे भीतर प्रवेश कर उनके हृदयको आनन्दित करता है। शरीर-दृष्टिसे श्राव्य काव्य, गद्य और पद्यकी अपेक्षा दो तरहका माना गया है। जिसका शरीर–आकार छन्द रहित होता है वह गद्य काव्य कहलाता है और जिसका आकार कई तरहके छन्दोंसे अलङ्कृत होकर प्रकट होता है वह पद्य काव्य कहलाता है। एक काव्य इन दोनोंके मेलसे भी बनता है जिसे चम्पू कहते हैं 'गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते'।

काव्यमें रस—

जैन सिद्धान्तके अनुसार सासारिक आत्माओंमें प्रतिसमय हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा और वेद ये नोकिंचित्कषाय, सत्ता अथवा उदयकी अपेक्षा विद्यमान रहती हैं। जब हास्य वगैरहका निमित्त मिलता

है तब हास्य आदि रस प्रकट हो जाते हैं। इन्हींको दूसरी जगह स्थायि भाव कहा है। यह स्थायिभाव जब विभाव अनुभाव और संचारी भावोंके द्वारा प्रस्फुटित होता है तब रस कहलाने लगता है। यह रस सदा सहृदय-जनैकसंवेद्य ही होता है। सब रस नौ है—१ शृङ्गार, २ हास्य, ३ करुणा, ४ रौद्र, ५ वीर, ६ भयानक, ७ बीभत्स, ८ अद्भुत और ९ शान्त। कई लोग शान्तको रस नहीं मानते उनके मतसे ८ ही रस माने गये है और भरताचार्यने वात्सल्यको भी रस माना है तब १० भेद होते है। आठ, नौ और दश इन तीन विकल्पोमेसे ९ का विकल्प अनुभवगम्य, युक्तिसंगत और अधिकजनसमत मालूम होता है।

काव्यका प्रवाह—

काव्यका प्रवाह गद्यकी अपेक्षा अधिक आनन्ददायी होता है इसलिए वह इतने अधिक वेगसे प्रवाहित हुआ कि उसने गद्य-रचनाको एक प्रकारसे तिरोभूत ही कर दिया। धर्मशास्त्र, न्याय, व्याकरण, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि विषयोके ग्रन्थ काव्य रूपमे ही लिखे जाने लगे। यही कारण रहा कि संस्कृत साहित्यमे पद्यमय जितने ग्रन्थ है उतने गद्यमय ग्रन्थ नहीं है। संस्कृत साहित्यके विपुल भडारमे जब गद्यमय ग्रन्थोकी ओर दृष्टिपात करते है तब कादम्बरी, श्रीहर्षचरित, गद्यचिन्तामणि, तिलकमञ्जरी आदि दश पाच ग्रन्थो पर ही दृष्टि रुक जाती है पर पद्यमय ग्रन्थो पर अव्याहत गतिसे आगे बढती जाती है।

धर्मशर्माभ्युदय—

जैन काव्य ग्रन्थोमे महाकवि हरिचन्द्रका धर्मशर्माभ्युदय अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इसमें काव्यमयी भारतीके द्वारा पन्द्रहवें तीर्थंकर श्री धर्मनाथ भगवान्का जीवन-चरित लिखा गया है। इसकी सरस सुन्दर शब्दावली और मनोहर कल्पनाएं देखकर हृदय आनन्दसे विभोर

हो जाता है। आजसे १७-१८ वर्ष पहले नातेपुतेसे प० फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्रीके सम्पादकत्वमें 'शान्ति-सिन्धु' मासिक निकला करता था उसके कई अंकोंमें मैंने 'महाकवि हरिचन्द्र और उनकी रचनाएँ' शीर्षक लेखमाला प्रकाशित कराई थी। उसमें 'धर्मशर्माभ्युदय' तथा अन्य अनेक काव्यग्रन्थोंके अवतरण देते हुए मैंने 'धर्मशर्माभ्युदय'के महत्त्वको प्रख्यापित किया था। हमारे संग्रहसे वे अंक गुम गये, नहीं तो कुछ अवतरण यहाँ भी अवश्य देता। प्रस्तावनाकी शीघ्र माग तथा समयकी न्यूनता होनेसे पुनः अवतरण संकलन करना साध्य नहीं रहा। फिर भी थोड़ेमें यह अवश्य कह सकता हूँ कि यह जैन काव्यग्रन्थोंमे प्रमुख काव्य ग्रन्थ है। जैन प्रकाशकोंको चाहिये कि इसकी संस्कृत टीका मुद्रित कराकर विद्वानोके सामने रखें। मेरा विश्वास है कि यदि यह ग्रन्थ संस्कृत टीकाके साथ सामने आवेगा तो अवश्य ही जैनेतर परीक्षाओंमें पाठ्य ग्रन्थ निर्धारित किया जावेगा। यह ग्रन्थ माघ कविके शिशुपालवध काव्यके समकक्ष है। दोनोकी शैली एक दूसरोसे मिलती-जुलती है बल्कि किन्हीं-किन्हीं स्थलों पर यह उससे भी आगे बढ़ा हुआ है।

महाकवि हरिचन्द्र—

इस महाकविका पूर्ण परिचय उपलब्ध नहीं है। इन्होंने 'धर्मशर्माभ्युदय'के अन्तमें जो प्रशस्ति दी है उससे इतना ही मालूम होता है कि नोमकवंशके कायस्थ कुलमें आर्द्रदेव नामक एक श्रेष्ठ पुरुषरत्न थे उनकी पत्नीका नाम रथ्या था। महाकवि हरिचन्द्र इन्हींके पुत्र थे और इनके छोटे भाईका नाम लक्ष्मण था। कविने यह तो लिखा है कि गुरुके प्रसादसे उनकी वाणी निर्मल हो गई पर वे गुरु कौन थे? यह नहीं लिखा। ये दिगम्बर सम्प्रदायके अनुगामी थे।

'कर्पूरमंजरी' नाटिकामें महाकवि राजशेखरने प्रथम जवनिकाके अनन्तर

एक जगह विदूषकके द्वारा हरिश्चन्द्र कविका उल्लेख किया है*—यदि ये हरिश्चन्द्र धर्मशर्माभ्युदयके ही कर्ता हों तो इन्हें राजशेखरसे पहलेका—वि० सं० ६६० से पहलेका मानना चाहिये। इसी प्रकार 'श्रीहर्षचरित्र'में बाणभट्टने 'भट्टारहरिचन्द्रस्य गद्यबन्धो नृपायते' इन शब्दोंके द्वारा एक हरिचन्द्र कविका स्मरण किया है। यदि ये हरिश्चन्द्र 'धर्मशर्माभ्युदय'के ही कर्ता माने जावें तब इनका समय बाणभट्टसे भी पूर्ववर्ती सिद्ध होता है। परन्तु हरिश्चन्द्रका गद्य काव्य कौन-सा है? इसका पता नहीं चलता। 'धर्मशर्माभ्युदय'के २१ वें सर्गमें जो धर्मतत्त्वका वर्णन है उसकी शैली अधिक प्राचीन नहीं है। उसमें मूलगुण आदिका जो वर्णन है उससे प्रतीत होता है कि यह कवि यशस्तिलकचम्पूके कर्ता आचार्य सोमसेनके परवर्ती हैं पूर्ववर्ती नहीं।

'धर्मशर्माभ्युदयकी' एक संस्कृत टीका मण्डलाचार्य ललितकीर्तिके शिष्य यशःकीर्ति कृत मिलती है, जिसका नाम 'संदेहध्वान्तदीपिका' है। बहुत ही साधारण टीका है। जैनसिद्धान्त भवन आरासे इसकी एक प्रति प्राप्त हुई थी। टीका यद्यपि संक्षिप्त है परन्तु उससे मुद्रित प्रतिके अशुद्ध पाठ ठीक करनेमें पर्याप्त सहायता मिली है। पाटण [गुजरात] के संघवी पाड़ाके पुस्तक भंडारमे 'धर्मशर्माभ्युदय'की जो हस्तलिखित प्रति है वह विक्रम संवत् १२८७ की लिखी हुई है। और इसलिए यह निश्चय तो अवश्य हो जाता है कि महाकवि हरिश्चन्द्र उक्त संवत्के बादके नहीं हैं पूर्वके ही हैं यह दूसरे प्रमाणोंकी अपेक्षा रखता है। इन्होंने ग्रन्थका कथानक आचार्य गुणभद्रके उत्तरपुराणसे लिया है।

* विदूषक :—(सक्रोधं) उज्जुअं एव्व ता किं ण भणह, अम्हाणं चेडिआ हरिअन्द-णदिअंदकोट्टिसहालप्पहुदीणं वि सुकइ त्ति (ऋज्वेव तत्किं न भण्यते, अस्माकं चेटिका हरिचन्द्रकोटिशहालप्रभृतीनामपि सुकविरिति)।

यह हिन्दी अनुवाद—

श्री गणेश दि० जैन संस्कृत विद्यालय सागरमें साहित्याध्यापक होनेके कारण मुझे 'धर्मशर्माभ्युदय' पढ़ानेका अवसर प्रायः प्रति वर्ष ही आता है। ग्रन्थकी भावभंगी और शाब्दिक विन्यासको देखकर मैं मन्त्रमुग्ध-सा रह जाता हूँ। छात्रोंकी कठिनाई देख मनमे इच्छा होती थी कि इसकी हिन्दी तथा संस्कृत टीका बना दी जाय। इसी इच्छासे प्रेरित होकर ३-४ वर्ष हुए तब इसकी हिन्दी टीका लिखी थी और उसके बाद ही संस्कृत टीका भी। हिन्दी टीकाका प्रकाशन प्रारम्भमें वर्णी ग्रन्थमाला बनारसने करनेका निश्चय किया था परन्तु कारणवश उसका निश्चय सफल नहीं हो सका। अन्तमें इसका प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ बनारसकी ओरसे हुआ, इसके लिए मैं उसके संचालक महानुभावोंका आभारी हूँ। साथ ही उनसे यह भी आशा रखता हूँ कि वे इसकी संस्कृत टीका भी प्रकाशित कर विद्वानो के समक्ष महाकवि हरिचन्द्रके इस महाकाव्यको अवश्य ही रक्खेंगे।

टीका लिखनेके पूर्व आराकी हस्तलिखित सटीक प्रतिसे मुद्रित मूल प्रतिका संशोधन कर लिया था और इसीके आधार पर यह टीका लिखी गई है। मै अल्पज्ञ तो हूँ ही और इस लिए अनुवाद आदिमें त्रुटिया रह जाना सब तरह सभव है अतः मैं विद्वज्जनोसे उसके लिए क्षमा-प्रार्थी हूँ।

सागर
चैत्र शुक्ल ९ संवत् २४८०

—पन्नालाल जैन

महाकवि हरिचन्द्र विरचित





धर्मशर्माभ्युदय





[धर्मनाथचरित]

प्रथम सर्ग

अमन्दानन्दसन्दोहतुन्दिलं नरनन्दनम् ।
वन्दारुवृन्दवन्द्याङ्घ्रिं वन्दे श्रीनाभिनन्दनम् ॥

मङ्गलाचरण

श्रीनाभिराजाके सुपुत्र-भगवान् वृषभदेवके वे चरणयुगल सम्बन्धी नखरूपी चन्द्रमा चिरकाल तक पृथिवी पर आनन्दको बढ़ाते रहें जिनमें नमस्कार करनेवाले देवेन्द्रों और नरेन्द्रोंकी शिखा पर निबद्ध नीलमणियोंका प्रतिबिम्ब हरिणके समान सुशोभित होता था ॥१॥ मैं उन चन्द्रप्रभ स्वामीकी स्तुति करता हूँ जिनकी प्रभासे चन्द्रमाकी वह प्रसिद्ध प्रभा—चाँदनी मानो जीत ली गई थी, यदि ऐसा न होता तो चन्द्रमाका समस्त परिवार नखोंके बहाने उनके चरणोंमें क्यों आ लगता ॥ २ ॥ दुष्ट अक्षरोंको नष्ट करनेकी भावनासे ही मानो जिन्होंने पृथिवी पर बार-बार अपना ललाटपट्ट घिसा है ऐसे देव-लोक जिन बहुगुणधारी धर्मनाथको नमस्कार करते थे वे धर्मनाथ हमारे सुखको बढ़ावें ॥३॥ जिनकी सुवर्णके समान उज्ज्वल शरीरकी कान्तिके बीच देवलोक ऐसे सुशोभित होते थे मानो इस समय हम निर्दोष हैं ऐसा परस्पर विश्वास करानेके लिए अग्निमें ही प्रविष्ट हुए हों—अग्नि-परीक्षा ही दे रहे हों, मैं उन श्री शान्तिनाथ भगवान्की शरणको प्राप्त होता हूँ ॥ ४ ॥ श्रीवर्द्धमान स्वामीका वह सम्यग्ज्ञान-रूपी गहरा समुद्र तुम सबकी रत्नत्रयकी प्राप्तिके लिए हो जिसके भीतर यह तीनों लोक प्रकट हुए पानीके बबूलेकी शोभा बढ़ाते हैं ॥ ५ ॥ जिनके चरण-कमलोंकी परागसे साफ किये हुए अपने चित्तरूपी

दर्पणके भीतर प्रतिबिम्बित तीनों लोकोंको मनुष्य अच्छी तरह देखते हैं—जिनके चरणप्रसादसे मनुष्य सर्वज्ञ हो जाते हैं मैं आनन्द-प्राप्तिके लिए उन चतुर्विंशति तीर्थकरोंकी स्तुति करता हूँ ॥ ६ ॥

मैं जन्म, जरा और मृत्यु रूपी तीन सर्पोंके मदको हरनेवाले उस रत्नत्रय—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रको नमस्कार करता हूँ, जिसका आभूषण प्राप्त कर साधुजन विरूप आकृतिके धारक होकर भी मुक्तिरूपी स्त्रीके प्रिय हो जाते हैं ॥ ७ ॥

तुम्हारी भक्तिसे नम्रीभूत हुए मनुष्यका हम शरण लें—यह साक्षात् पूछनेके लिए ही मानो जिसके कानोंके समीप चन्द्रकान्त-मणि निर्मित कर्णाभरणोंकेब हाने शब्द और अर्थ उपस्थित है उस सरस्वतीका ध्यान करो ॥ ८ ॥ स्वर्ग प्रदेशकी सुषमाको धारण करने-वाले, महाकवियोंके वे कोई अनुपम वचनोंके विलास जयवन्त है जिन अमृतप्रवाही वचनोंमे उत्तम रस और अर्थकी लाली किन पुरुषों को आनन्द उत्पन्न नहीं करती ? पक्षमें—देवसमूहकी लीला किन्हे आनन्दित नहीं करती ॥ ९ ॥

विविध धान्यकी वृद्धिके लिए जिसने स्वरूप लाभ किया है, जो मेघोंमें जलके सद्भावको दूर कर रही है और जिसमें कीचड नष्ट हो गया है वह शरद् ऋतु मेघोंके समूहको नष्ट करे। साथ ही जिसने सुविधानुसार अन्य पुरुषोंकी वृद्धिके लिए जन्म धारण किया है, जो अत्यन्त नीरसपनेको दूर कर रही है और जिसने समस्त पाप नष्ट कर दिये हैं वह सज्जनोंकी सभा भी मेरे पापसमूहको नष्ट कर दे ॥ १० ॥

मन्द बुद्धि होने पर भी मेरे द्वारा जो इस ग्रन्थमें जिनेन्द्र भग-वानका चरित्र वर्णन किया जाता है वह आकाशमार्गके अन्तके अव-

लोकन अथवा समुद्रको लाँघनेसे भी कुछ अधिक है—उक्त दोनों कार्य तो अशक्य हैं ही पर यह उनसे भी अधिक अशक्य है ॥ ११ ॥ अथवा पुराण-रचनामें निपुण महामुनियोंके वचनोंसे मेरी भी इसमें गति हो जावेगी, क्योंकि सीढ़ियोंके द्वारा लघु मनुष्यकी भी मनोभिलाषा उन्नत पदार्थके विषयमे पूर्ण हो जाती है-ठिगना मनुष्य भी सीढ़ियों द्वारा ऊँचा पदार्थ पा लेता है ॥ १२ ॥ यद्यपि मै चञ्चल हूँ फिर भी अपनी शक्तिके अनुसार श्री धर्मनाथ स्वामीका कुछ थोड़ा-सा चरित्र कहूँगा। श्री जिनेन्द्रदेवके इस चरित्रको अच्छी तरह कहनेके लिए तो साक्षात् सरस्वती भी समर्थ न हो सकेगी ॥ १३ ॥ जिसे रचना करना नहीं आता ऐसा कवि अर्थके हृदयस्थ होनेपर भी रचनामें निपुण नहीं हो सकता सो ठीक ही है, क्योंकि पानी अधिक भी भरा हो फिर भी कुत्ता जिह्वासे जलका स्पर्श छोड़कर उसे अन्य प्रकारसे पीना नहीं जानता ॥ १४ ॥ वाणी अच्छे-अच्छे पदोंसे सुशोभित क्यों न हो परन्तु मनोहर अर्थसे शून्य होनेके कारण विद्वानोंका मन सन्तुष्ट नहीं कर सकती, जैसे कि थूवरसे झरता हुआ दूधका प्रवाह यद्यपि नयनप्रिय होता है—देखनेमें सुन्दर होता है फिर भी मनुष्योंके लिए रुचिकर नहीं होता ॥ १५ ॥ बड़े पुण्यसे किसी एक आदि कविकी ही वाणी शब्द और अर्थ दोनोंकी विशिष्ट रचनासे युक्त होती है। देखो न चन्द्रमाको छोड़कर अन्य किसीकी किरण अन्धकारको हरने और अमृतको झरानेवाली नहीं दीखती ॥ १६ ॥ मनोहर काव्यकी रचना होनेपर भी कोई विरला ही सहृदय विद्वान् सन्तोषको प्राप्त होता है सो ठीक ही है; क्योंकि किसी चपललोचना स्त्रीके कटाक्षोंसे तिलक वृक्ष ही फूलता है अन्य वृक्ष नहीं ॥ १७ ॥ दूसरेके छोटे-से-छोटे गुणमें भी बड़ा अनुराग और बड़े-से-बड़े गुणमें भी असंतोष जिसके मनका ऐसा विवेक है उस साधुसे हितके

लिए क्यों प्रार्थना की जाय ?—वह तो प्रार्थनाके बिना ही हितमें प्रवृत्त है ॥ १८ ॥

सज्जन पुरुषोंकी रचना करते समय ब्रह्माजीके हाथसे किसी प्रकार जो परमाणु नीचे गिर गये थे मैं मानता हूँ कि मेघ, चन्द्रमा, वृक्ष तथा चन्दन आदि अन्य उपकारी पदार्थोंकी रचना उन्ही परमाणुओंसे हुई है ॥ १९ ॥ यद्यपि साधु पुरुष कारणवश विमुख भी हो जाता है तो भी परोपकारी कार्योंका भार वहन करनेमें समर्थ ही रहता है। माना कि कच्छप पृथिवीके प्रति दत्त-पृष्ठ है—विमुख है फिर भी क्या वह गुरुतर पृथिवीके धारण करनेमें समर्थ नहीं है ? अवश्य है ॥ २० ॥ चूँकि सज्जन पुरुष स्वभावसे ही निर्मल होता है अतः कोई भी बाह्य पदार्थ उसके चित्तमे विकार पैदा करनेके लिए समर्थ नहीं है। परन्तु स्फटिक विविध वर्णोंवाले पदार्थोंके संसर्गसे अपने स्वभावको छोड़कर अन्य रूप हो जाता है अतः वह सज्जनके तुल्य कैसे हो सकता है ॥ २१ ॥

प्रयत्न पूर्वक दुर्जनकी रचना करनेवाले विधाताने सज्जनका क्या उपकार नहीं किया ? क्योंकि अन्धकारके विना सूर्य और कॉचके विना मणि अपना गुण प्रकट नहीं कर सकता ॥ २२ ॥

दोषोंमें अनुरक्त दुर्जन और दोषा—रात्रिमें अनुरक्त किसी उल्लूके बच्चेमे क्या विशेषता है ? क्योंकि जिस प्रकार उल्लूका बच्चा उत्तम कान्तिसे युक्त दिनमें केवल काला-काला अन्धकार देखता है उसी प्रकार दुर्जन उत्तम कान्ति आदि गुणोंसे युक्त काव्यमें भी केवल दोष ही दोष देखता है ॥ २३ ॥ रे दुर्जन ! चूँकि तू नम्र मनुष्य पर भी प्रेम नहीं करता और मित्रमें भी मित्रताको नहीं बढ़ाता अतः तेरा यह भारी दोष तुझे क्या उस प्रकार नाशको प्राप्त नही

करा देगा जिस प्रकार कि रात्रिका प्रारम्भ सन्ध्याकालको, क्योंकि सन्ध्याकाल भी न नम्र मनुष्यके साथ प्रेम करता है और न मित्रके—सूर्यके साथ मित्रता बढ़ाता है ॥ २४ ॥ चूँकि दूषण रहित काव्य ही सुनने योग्य होता है और निर्गुण काव्य कहीं भी कभी भी सुनने योग्य नहीं होता अतः मेरा विचार है कि गुणग्राही सज्जनकी अपेक्षा दोषग्राही दुर्जन ही अच्छा है ॥ २५ ॥ बड़े आश्चर्यकी बात है कि स्नेहहीन खल–दुर्जनका भी बड़ा उपयोग होता है; क्योंकि उसके संसर्गसे यह रचनाएँ बिना किसी तोड़के पूर्ण आनन्द प्रदान करती हैं। [अप्रकृत अर्थ] 'कैसा आश्चर्य है कि तेल रहित खलीका भी बड़ा उपयोग होता है क्योंकि उसके सेवनसे यह गायें बिना किसी आघातके बर्तन भर-भर कर दूध देती हैं ॥ २६ ॥ अरे ! मैं क्या कह गया ? दुर्जन भले ही मधुर भाषण करता हो पर उसका अन्तरङ्ग कठिन ही रहता है, अतः उसके विषयमें प्रमाद नहीं करना चाहिये; क्योंकि शेवालसे सुशोभित पत्थरके ऊपर धोखेसे गिर जाना केवल दुःखका ही कारण होता है ॥ २७ ॥ चूँकि दुर्जन मनुष्य शब्द और अर्थके दोषोंको ले लेकर अपने मुखमें रखता जाता है—मुख द्वारा उच्चारण करता है अतः उसका मुख काला होता है और दोष निकल जानेसे सज्जनोंकी रचना उज्ज्वल–निर्दोष हो जाती है ॥२८॥ गुणोंका तिरस्कार करनेवाले अथवा मृणालके तन्तुओंको नीचे ले जानेवाले दुर्जन रूप कमलकी शोभा तब तक भले ही बनी रहे जब तक कि दिन है अथवा पुण्य है परन्तु दिनका अवसान होते ही जिस प्रकार कमल चन्द्रमाकी किरणोंके संपर्कसे मुद्रितवदन—निमीलित होकर शोभाहीन हो जाता है उसी प्रकार दुर्जन मनुष्य दिन—पुण्यका अवसान होते ही किसी न्यायी राजाकी सभामें मुँह बन्द हो जानेसे शोभाहीन हो जाता है ॥ २९ ॥ नीच मनुष्य उच्च स्थान पर स्थित होकर भी

सज्जन मनुष्योंके चित्तमें कुछ भी चमत्कार नहीं करता। सो ठीक ही है; क्योंकि कौआ सुमेरु पर्वतकी शिखरके अग्र भाग पर भी क्यों न बैठ जावे पर आखिर नीच कौआ कौआ ही रहता है ॥ ३० ॥ चूँकि सज्जन मनुष्यका व्यवहार गङ्गा नदीके समान है और दुर्जन का यमुनाके समान, अतः प्रयाग क्षेत्रमे उन दोनोंके बीच अवगाहन करनेवाला हमारा काव्यरूपी बन्धु विशुद्धिको प्राप्त हो। [जिस प्रकार प्रयागमें गङ्गा और यमुना नदीके सगममे गोता लगाकर मनुष्य शुद्ध हो जाता है उसी प्रकार सज्जन और दुर्जनकी प्रशंसा तथा निन्दाके बीच पड़कर हमारा काव्य विशुद्ध—निर्दोष हो जावे] ॥ ३१ ॥

इस पृथिवी पर अपनी प्रभाके द्वारा स्वर्गलोकको तिरस्कृत करनेवाला एक जम्बूद्वीप है जो यद्यपि सब द्वीपोंके मध्यमे स्थित है फिर भी अपनी बढ़ी हुई लक्ष्मीसे ऐसा जान पडता है मानो सब द्वीपोंके ऊपर ही स्थित हो ॥ ३२ ॥ यह द्वीप पूर्व विदेह क्षेत्र आदि कलिकाओंसे युक्त है, उसके नीचे शेषनाग रूपी विशाल मृणालदण्ड है और ऊपर कर्णिकाकी तरह सुमेरु पर्वत स्थित है, अतः ऐसा सुशोभित होता है मानो समुद्रके बीच लक्ष्मीका निवासभूत कमल ही हो ॥ ३३ ॥ मेरे रहते हुए भी द्वीपोंके बीच जो अहंकार करता हो वह मेरे सामने हो ऐसा कहनेके लिए ही मानो उस जम्बूद्वीपने सुमेरु पर्वतके बहाने ग्रहरूप कङ्कणसे चिह्नित अपना हाथ ऊपर उठा रक्खा है ॥ ३४ ॥ अपार संसार रूपी अन्धकारके बीच सभी सज्जन एक साथ चतुर्वर्गके फलको देख सकें—इसलिए ही मानो यह द्वीप दो सूर्य और दो चन्द्रमाओंके बहाने चार दीपक धारण करता है ॥ ३५ ॥ यह वर्तुलाकार जम्बूद्वीप शेषनागके फणाकी मित्रता प्राप्त कर किसी छत्रकी शोभा बढ़ाता है और सुमेरु पर्वत उसपर तपाये हुए सुवर्ण-कलशाकी अनिर्वचनीय शोभा धारण करता है ॥ ३६ ॥

यह जम्बूद्वीप ऊपर उठाये हुए सुमेरु पर्वतरूपी हाथकी अङ्गुलिके संकेतसे लोकमे मानो यही कहता रहता है कि यदि सम्यग्दर्शन रूपी सम्बल प्राप्त कर लिया जावे तो उससे मोक्षका मार्ग सरल हो जाता है ॥ ३७ ॥

इस जम्बूद्वीपके बीचमें सुमेरु पर्वत है जो ऐसा जान पड़ता है कि गोदमें सोई हुई लक्ष्मीके सुशोभित केशरके द्रवसे जिसका शरीर पीला हो रहा है ऐसा शेषनाग ही मानो बाहरकी वायुका सेवन करनेके लिए पृथिवीको भेदनकर प्रकट हुआ हो ॥ ३८ ॥ जिसके चारों ओर पतङ्ग–सूर्य प्रदक्षिणा दे रहा है ऐसे सुमेरु पर्वतके ऊपर आकाश ऐसा मालूम होता है मानो शिखरके अग्रभाग पर लगे हुए मेघरूपी अंजनको ग्रहण करनेकी इच्छासे किसी स्त्रीने जिसके चारों ओर पतङ्ग—शलभ घूम रहे हैं ऐसे दीपकपर बर्तन ही औंधा दिया हो ॥ ३९ ॥ पृथिवी और आकाश किसी रथके स्थूल पहियोंकी तरह सुशोभित हैं और उनके बीच उन्नत खड़ा हुआ सुमेरु पर्वत उसके ठीक भौंराकी तरह जान पड़ता है। इसके पास ही जो ध्रुव ताराओंका मण्डल है वह युगकी शोभा धारण करता है ॥ ४० ॥

उस जम्बूद्वीपके दक्षिणमे वह भरत क्षेत्र है जो कि वास्तवमें किसी क्षेत्र––खेतकी तरह ही सुशोभित है और जिसमे तीर्थकरोंके जन्मरूपी जलके सिञ्चनसे स्वर्ग आदिकी सम्पत्तिरूपी फलसे सुशोभित पुण्यरूपी विशेष धान्य सदा उत्पन्न होता रहता है ॥ ४१ ॥ अखण्ड शोभाको धारण करनेवाला वह भरतक्षेत्र सिन्धु और गङ्गा नदीके मध्यवर्ती विजयार्धनामक ऊँचे पर्वतसे विभाजित होकर छह खण्डवाला हो गया है उससे ऐसा मालूम होता है कि लक्ष्मीके भारी बोझसे ही मानो चटककर उसके छह खण्ड हो गये हों ॥ ४२ ॥

उस भरत क्षेत्रमें एक आर्य खण्ड है जो ऐसा जान पड़ता है मानो निराधार होनेके कारण आकाशसे गिरा हुआ स्वर्गका एक टुकड़ा ही हो। उस आर्य खण्डको उत्तरकोशल नामका एक बड़ा देश आभूषणकी तरह अपनी कान्तिसे सुशोभित करता है ॥ ४३ ॥ उस देशके गाँव स्वर्गके प्रदेशोंको जीतते हैं, क्योंकि स्वर्गके प्रदेशोंमे तो एक ही पद्मानामक अप्सरा है परन्तु उन गाँवोंमें अनेक पद्मानामक अप्सराएँ हैं [पक्षमे कमलोंसे उपलक्षित जलके सरोवर हैं], स्वर्गके प्रदेशोंमें एक ही हिरण्यगर्भ–ब्रह्मा है परन्तु वहाँ असख्यात हैं [पक्षमें-असंख्यात-अपरिमित हिरण्य–सुवर्ण उनके गर्भमध्यमें है] और स्वर्गके प्रदेश एक ही पीताम्बर–नारायणके धाम–तेजसे मनोहर हैं परन्तु गाँव अनन्त पीताम्बरोंके धामसे मनोहर हैं [पक्षमें–अपरिमित–उत्तुङ्ग-भवनोंसे सुशोभित हैं] ॥ ४४ ॥

मन्द-मन्द वायुसे हिलते हुए धान्यसे परिपूर्ण वहाँकी पृथिवी ऐसी जान पड़ती है मानो यन्त्रोंके पनालेरूप प्यालोंके द्वारा पौंडा और इक्षुओंके रसरूपी मदिराको पीकर नशासे ही झूम रही हो ॥ ४५ ॥ चूँकि आकाश रात्रिके समय ताराओंको सहसा फैला देता है और दिनके समय उन्हे साफ कर देता है—मिटा देता है इसलिए ऐसा जान पड़ता है कि वह फूले हुए कमलोंसे सुशोभित उस देशके सरोवरोंके साथ प्राप्त हुई अपनी सदृशताको स्वीकृत न करके ही मानो मिटा देता है [जिस प्रकार कोई बालक किसी चित्रको सामने रखकर अपनी पट्टीपर चित्र खींचता है परन्तु मिलानेपर जब अपना चित्र सामने रखे हुए चित्रके समान नहीं देखता तब उसे मिटाकर पुनः खींचता है इसी प्रकार आकाश उस देशके कमलयुक्त सरोवरोंके समान अपने आपको बनाना चाहता है और इसीलिए रात्रिके समय कमलोंके समान अपने आपमे ताराओंको फैलाता है पर जब उन

तालाबोंकी समानता अपने आपमे नहीं देखता तो उन्हें पुनः मिटा देता है] ॥ ४६ ॥ बन्धानरूपी भौंहों तक निश्चल तालाबरूपी हजारों नेत्रोंके द्वारा जिस देशका वैभव देखकर पृथिवी भी उगते हुए धान्यके बहाने आश्चर्यसे मानो रोमाञ्च धारण करती है ॥ ४७ ॥ जिस देशमें प्रत्येक गांवके समीप लोगोंके द्वारा लगाये हुए धान्यके ऊँचे-ऊँचे ढेर ऐसे जान पड़ते हैं मानो उदयाचल और अस्ताचलके बीच गमन करनेवाले सूर्यके विश्रामके लिए किन्हीं धर्मात्माओं द्वारा बनाये हुए विश्राम-पर्वत ही हों ॥ ४८ ॥ जहाँ नदियोंके किनारेके वृक्ष जलके भीतर प्रतिबिम्बित हो रहे हैं और उससे ऐसे जान पड़ते हैं मानो ऊपर स्थित सूर्यके सन्तापसे व्याकुल होकर स्नानके लिए ही प्रयत्न कर रहे हों ॥ ४९ ॥ जिस देशके मार्गमे धानके खेत रखानेवाली लड़कियोंके अल्हड़ गीतोंके सुननेसे जिसका अङ्ग निश्चल हो गया है ऐसे मृगसमूहको पथिक लोग चित्रलिखित-सा मानते हैं ॥ ५० ॥ नीचेसे लेकर स्कन्धतक सीधी और उसके बाद बहुत भारी पत्तों, फूलों और शाखाओंके समूहसे वर्तुलाकार फैली हुई वृक्षोंकी कतार मयूर-पिच्छसे गुम्फित छत्रोंके समान जान पड़ती थी और मानो यह कह रही थी कि यह देश सब देशोंका राजा है ॥ ५१ ॥ जिस देशमें गुलाबोंकी सुगन्धिके लोभसे चारों ओर घूमती हुई भ्रमरोंकी पङ्क्ति ऐसी जान पड़ती थी मानो पथिकोंके चञ्चल लोचनोंको बांधनेके लिए प्रकट हुई लोहेकी सांकल ही हो ॥ ५२ ॥ नदियाँ ऐसे सुन्दर देशको छोड़कर जो खारे समुद्रके पास गई थीं उसीसे मानो उन मूर्खाओंका लोकमें निम्नगा नाम प्रसिद्ध हुआ है ॥ ५३ ॥ पृथिवीरूपी वनिताके कण्ठमें लटकती हुई नवीन सफ़ेद कमलोंकी मालाकी तरह मनोहर जो गायोंकी पङ्क्ति सर्वत्र फैल रही थी वह ऐसी जान पड़ती थी मानो समस्त दिशाओंको अलंकृत करनेके लिए उस देशकी कीर्ति ही फैल

रही हो ।। ५४ ।। जिस देशके वृक्ष चञ्चल पक्षियोंके शब्दोंके बहाने सङ्कल्पित दान देनेवाले कल्पवृक्षोंको जीतनेके लिए ही मानो दूर-दूरसे बुलाकर लोगोंको अचिन्त्य फल देते हैं ।। ५५ ।।

उस उत्तर कोशल देशमे वह रत्नपुर नामका नगर है जिसके गोपुरकी तोरण-वेदिकाके मध्यभागको कभी—मध्याह्नके समय सूर्यके घोड़ोंकी पक्ति नीलकमलकी मालाकी भांति अलंकृत करती है ।।५६।।

उस नगरके समस्त जन मुक्तामय थे—मोतियोंके बने थे [पक्षमे आमय-रोगसे रहित थे], वहां वही स्त्रियां थीं जो नूतन पुष्प-राग मणिकी बनी थीं [पक्षमें—शरीरमें राग रहित नहीं थीं] और वहांका राजा भी शत्रुओंके मस्तक पर वज्र था—हीरा था [पक्षमे वज्र-अशनि था] इस प्रकार स्त्री, पुरुष तथा राजा—सभी उसके रत्नपुर नामको सार्थक करते हैं ।। ५७ ।। ऐसी प्रसिद्धि है कि यह भोगीन्द्र—शेष नागका भवन है [पक्षमे बड़े-बड़े भोगियोंका निवास-स्थान है] इसीलिए शेषनाग प्राकारका वेष रखकर उस नगरकी रक्षा करता है और लम्बी-चौड़ी परिखा उसकी अभी ही छोड़ी हुई कांचलीकी तरह सुशोभित होती है ।। ५८ ।। उस नगरकी मणिखचित भूमिमें नगरवासिनी स्त्रियोंके प्रतिबिम्ब पड़ रहे थे उनसे ऐसा जान पड़ता था मानो पाताल-कन्याएँ सौन्दर्य रूपी अमृतमे लुभाकर वहां की निकटता नहीं छोड़ रही हैं ।। ५९ ।। उस नगरमें रात्रिके समय आकाशगङ्गाके जलके समीप रहनेवाले चक्रवाक पक्षी अपनी स्त्रियोंके वियोगसे दुःखी होकर मकानोंकी शिखरो पर कलशोंके स्थान पर जा बैठते हैं और कलशों पर लगे हुए दूसरे सुवर्ण-कलशका सन्देह करने लगते हैं ।। ६० ।। उस नगरके गगनचुम्बी महलोंके ऊपर ध्वजाओंके अग्रभागमें जो सफेद-सफेद वस्तुएं लगी हुई हैं वह पता-

कायें नहीं हैं किन्तु संघर्षणसे निकली हुई चन्द्रमाकी त्वचाएँ हैं। यदि ऐसा न होता तो इस चन्द्रमाके बीच व्रणकी कालिमा क्यों होती ? ॥ ६१ ॥

जिस भोगिपुरीको मैंने तिरस्कृत कर दिया था [पक्षमें नीचे कर दिया था] वह उत्तम आभूषणोंसे युक्त [पक्षमें शेषनाग रूप आभूषणसे युक्त] कैसे हो गई ?—इस प्रकार अत्यन्त क्रोधसे कम्पित होता हुआ जो नगर परिखाके जलमें प्रतिबिम्बित अपनी छायाके छलसे मानो नागलोकको जीतनेके लिए ही जा रहा हो॥ ६२ ॥ जिसके चन्द्रकान्त मणियोंसे पानी झर रहा है ऐसे पहरेदारोंसे घिरे हुए उस नगरके राजभवनमे प्रतिबिम्बित चन्द्रमा ऐसा सुशोभित होता है मानो स्त्रियोंके मुखकी शोभा चुरानेके अपराधसे जेलखानेमें बन्द किया गया हो और इसी दुःखसे रो रहा हो॥ ६३ ॥ उस नगरकी मणिमय भूमिमें रात्रिके समय ताराओंके प्रतिबिम्ब पड़ते हैं जिससे वह ऐसी जान पड़ती है मानो वहाँकी अद्भुत विभूतिको देखनेकी इच्छासे उसने कुतूहलवश आँखें ही खोल रक्खी हों॥ ६४ ॥ देवताओंकी टिमकार रहित पड़ती हुई दृष्टि कहीं दोष उत्पन्न न कर दे—नजर न लगा दे—यह सोचकर ही मानो रात्रि स्वर्गलोकको जीतनेवाले उस रत्नपुर नगरके ऊपर नीराजनापात्रकी तरह चन्द्रमाका मण्डल घुमाती रहती है॥ ६५ ॥ उस नगरमें बार-बार जलती हुई अगुरुचन्दनकी धूमवर्तिकाओंसे आकाशमें घना अन्धकार फैल रहा है और उस अन्धकारके बीच मकानोंकी शिखरके अग्रभागपर लगे हुए सुवर्णकलशोंकी प्रभा बिजलीकी तरह मालूम होती है॥ ६६ ॥ उस नगरके ऊँचे-ऊँचे जिन-मन्दिरोंके शिखर प्रदेशमें जो कृत्रिम सिंह बने हुए है उनसे डरकर ही मानो एक मृगको धारण करनेवाला चन्द्रमा रातदिन आकाशमें घूमता रहता है॥ ६७ ॥ उस नगरमे

ऊँचे-ऊँचे महलोंके ऊपर सुवर्णमय कलशोंसे सुशोभित जो सफ़ेद-सफ़ेद पताकाएँ फहरा रही हैं वे ऊपरसे गिरनेवाले कमलों सहित आकाशगङ्गाके हज़ारों प्रवाहोंकी शङ्का बढ़ा रही हैं ॥ ६८ ॥ उस नगरमें इन्द्रनील मणियोंसे बने हुए मकानोंकी दीवालोंकी प्रभा आकाश तक फैल रही है जिससे वापिकाके किनारे रहनेवाली बेचारी चकवी दिनमें ही रात्रिका भ्रम होनेसे दुःखी हो उठती है ॥ ६९ ॥ उस नगरके चारों ओर बड़े-बडे उपनगर हैं उनके बहाने ऐसा मालूम होता है मानो वायुसे कम्पित पताकारूप अंगुलियोंसे तर्जित होकर चारों दिक्पालोंके नगर ही उसकी सेवा कर रहे हों ॥ ७० ॥

जिनकी सफ़ेद-सफ़ेद हज़ारों शिखरें रत्नोंके कलशोंसे सुशोभित हैं ऐसे जिन-मन्दिर उस नगरमे ऐसे जान पडते हैं मानो उस नगरको देखनेके लिए पृथिवीतलसे निकले हुए नागराजके द्वारा हर्षसे बनाये हुए अनेक शरीर ही हों ॥ ७१ ॥ जिस नगरके सरोवरोंमें पाताल-तलसे अमृतकी हज़ारों अक्षीण धाराएँ निकलती हैं इसलिए मैं समझता हूँ कि उनमें रस—जल [पक्षमें रसविशेष] की अधिकता रहती है और इसीलिए भोगिवर्ग—भोगी जनोंका समूह [पक्षमें अष्टकुल-नागोंका समूह] उनकी निकटताको नहीं छोड़ता है ॥ ७२ ॥

भावार्थ—ऐसी प्रसिद्धि है कि पातालमें अमृतके कुण्ड हैं और उनकी रक्षाके लिए भोगी अर्थात् अष्टकुल नागोंका समूह नियुक्त है जो सदा उनके पास रहता है। रत्नपुरके सरोवरोंमें उन्हीं अमृतके कुण्डोंसे अमृतकी हज़ारों अक्षीण धाराएँ निकलती हैं इसीलिए उनमे सदा रस अर्थात् जलकी अथवा अमृतोपम मधुररसकी अधिकता रहती है और इसीलिए भोगीवर्ग–विलासी जनोंका समूह उनके उपान्त भागको नहीं छोड़ता है–सदा उनके तटपर क्रीड़ा किया करता

है। पक्षमे उनमें अमृतकी धाराएँ प्रकट होनेसे उनके रक्षक भोगियोंका-कुलनागोंका समूह उनके उपान्त भागको नहीं छोड़ता।

मन्दरगिरि द्वारा मूल पर्यन्त मन्थन करने पर भीतरसे निकले हुए एक कौस्तुभ मणिसे जिसकी धनवत्ता कूती जा चुकी है ऐसा समुद्र यदि परिखाके बहाने इस रत्नपुर नगरकी सेवा नहीं करता तो रत्नाकर कैसे हो जाता? एक कौस्तुभ मणिके निकालनेसे थोड़े ही रत्नाकर कहा जा सकता है॥७३॥ इस प्रकार अपनी प्रभासे कौस्तुभ मणिको तिरस्कृत करनेवाले देदीप्यमान मणियोंके उन ढेरोंको, जो कि लक्ष्मीके क्रीडागिरिके समान जान पडते हैं, देखकर बाज़ारसे दूर रहनेवाले लोग भी उस नगरको पहिचान लेते हैं॥ ७४॥ जो पद-पद पर दूसरोंके धनमें आस्था रखती हैं [पक्षमे प्रत्येक पदमें उत्कृष्ट अर्थसे पूर्ण हैं] और किसी अनिर्वचनीय स्नेहकी स्थितिका अभिनय करती हैं [पक्षमे शृङ्गारादि रसको प्रकट करती हैं] ऐसी वेश्याएँ उस नगरमे कवियोंकी भारतीकी तरह किसके हृदयका आनन्द नहीं बढ़ातीं?॥ ७५॥ जिनमें संगीतके प्रारम्भमें मृदङ्ग बज रहे हैं ऐसी कैलाशके समान उज्ज्वल उस नगरकी अट्टालिकाएँ पानीके अभावमें सफ़ेद-सफेद दिखनेवाले गरजते मेघोंके समूहका अनुकरण कर रही हैं॥ ७६॥ उस नगरके मकानोंकी श्रेणी रुन-झुन बजती हुई क्षुद्र-घण्टिकाओंके शब्दों द्वारा आकाशमार्गमे चलनेसे खिन्न सूर्यके साथ संभाषण कर वायुसे हिलती हुई पताका रूप पंखोंके द्वारा उसे हवा करती हुई-सी जान पड़ती है॥७७॥ ऐसा जान पड़ता है कि हारावली रूपी झरनोंसे सुन्दर एवं अतिशय उन्नत वहाँकी स्त्रियोंके स्तन रूप पहाड़ी दुर्गको पाकर कामदेव महादेवजीसे भी निर्भय हो त्रिलोक-विजयी हो गया था॥ ७८॥

उस नगरमें यदि कुटिलता है तो स्त्रियोंके केशोंमें ही है अन्य

किसीके हृदयमें कुटिलता [माया] नहीं थी और सरागता [लालिमा] है तो स्त्रियोंके ओठोंमे ही अन्य किसीके हृदयमे सरागता [विषय] नहीं है। इसके सिवाय मुझे पता नहीं कि उन स्त्रियोंके मुखको छोड़कर और कोई वहाँ दोषाकरच्छाय—चन्द्रमाके समान कान्तिवाला [पक्षमे—दोषोंकी खान-रूप छायासे युक्त] है ॥ ७९ ॥ उस नगरमें रात्रिके समय अन्धकारसे तिरोहित नीलमणियोंके मकानोंकी छतपर बैठी हुई नील वस्त्र पहिननेवाली स्त्रियोंके मुखसे आकाशकी शोभा ऐसी जान पडती है मानो नवीन उदित हुए चन्द्रमाओंके समूहसे व्याप्त ही हो रही हो ॥ ८० ॥ जिसकी धुरा बिलकुल ऊपरको उठ रही है ऐसे रथके द्वारा हमारे घोड़े इस प्रकारको लाँघनेमे समर्थ नहीं हैं—यह विचार कर ही मानो सूर्य उस रत्नपुरको लांघनेके लिए कभी तो दक्षिणकी ओर जाता है और कभी उत्तरकी ओर ॥ ८१ ॥ उस नगरमे रात्रिके समय नीलमणिमय क्रीड़ा-भवनोंमें झरोखोंसे आनेवाली चन्द्रमाकी किरणों द्वारा छकाई हुई भोलीभाली स्त्रियाँ सचमुचके हारोंमे भी विश्वास नहीं करतीं ॥ ८२ ॥ उस नगरमें मकानोंके ऊपर बैठी हुई स्त्रियोंके मुखचन्द्रको देखकर चन्द्रमा निश्चित ही लज्जाको प्राप्त होता है। यही कारण है कि वह वहाँके मकानोंकी चूलिकाके नीचे-नीचे नम्र होता हुआ चलता है ॥ ८३ ॥ उस नगरके हिमालयके समान विशाल कोटके मध्य भागमे मेघ आकर ठहर जाते हैं जिससे ऐसा जान पड़ता है मानो उड़कर देवोंकी राजधानी स्वर्गको जीतनेके लिए उनमे पङ्ख ही लगा रक्खे हों ॥ ८४ ॥ उस नगरमें अगुरु इस प्रकारकी प्रसिद्ध एक सुगन्धित द्रव्यमें ही है अन्य कोई वहाँ अगुरु [क्षुद्र] नहीं है, यदि वहाँ कोई अविभव [मेघसे उत्पन्न] देखा जाता है तो मेघ ही देखा जाता है अन्य कोई अविभव (सम्पत्ति हीन) नहीं देखा जाता और इसी प्रकार वहाँ वृक्षोंको छोड़-

कर अन्य कोई पदार्थ कहीं भी फल-समय-विरुद्ध नहीं देखे जाते अर्थात् वृक्ष ही फल लगनेके समय वि—पक्षियों द्वारा रुद्ध—व्याप्त होते हैं वहांके अन्य मनुष्य फल मिलनेके समय कभी भी विरुद्ध-विपरीत प्रवृत्तिवाले नहीं देखे जाते ॥ ८५ ॥ अपने भीतर स्थित प्रसिद्ध राजासे शोभायमान एवं समीपवर्ती भूमिको चारों ओरसे घेरने वाला वहांका विशाल प्राकार ऐसा मालूम होता है मानो शत्रुओंके नाशको सूचित करनेवाला, पूर्णचन्द्रका विशाल परिवेष ही हो ॥८६॥

इस प्रकार महाकवि श्री हरिचन्द्र विरचित धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्यमें प्रथम सर्ग समाप्त हुआ।



द्वितीय सर्ग

उस रत्नपुरनगरमें इक्ष्वाकु नामक विशाल वंशमें समुत्पन्न मुक्तामय शरीरके धारक वह महासेन राजा थे जो कि शत्रुओंके मस्तक पर स्थित रह कर भी अपने ही कुलको अलंकृत करते थे ॥ १ ॥

इस राजाके दिखते ही शत्रु अहंकार रहित हो जाते थे और स्त्रियाँ कामसे पीड़ित हो जाती थीं। शत्रु सवारियाँ छोड़ देते थे और स्त्रियाँ लज्जा खो बैठती थीं। जब दिखनेमें ही यह बात थी तब पांच छह बाणोंके धारण करने पर युद्धमें आये हुए शत्रु क्षण-भरमें भाग जाते थे इसमें क्या आश्चर्य था। इसी प्रकार जब यह राजा स्वयं कामको धारण करता था तब स्त्रियाँ समागमके रसको प्राप्त होकर क्षण भरमें द्रवीभूत हो जाती थीं इसमें क्या आश्चर्य था ? ॥ २ ॥ चलती हुई सेनाके भारसे जिसमें समस्त भूमण्डल कम्पित हो रहा है ऐसे महाराज महासेनके दिग्विजयके समय केवल जङ्गम भूधर—राजा ही कम्पित नहीं हुए थे किन्तु शरणागत शत्रुओंकी रक्षा रूप अपराधसे शङ्कित हुए स्थिर भूधर—पर्वत भी कम्पित हो उठे थे ॥३॥ स्त्रियोंने तृप्ति न करनेवाले राजाके सौन्दर्यरूपी अमृतको अपनी इच्छासे नेत्ररूपी कटोरोंके द्वारा इतना अधिक पी लिया था कि वह भीतर नहीं समा सका और हर्षाश्रुओंके बहाने उनके शरीरसे बाहर निकल पड़ा ॥४॥ हे तात ! क्या तुम्हारे भी कुलमें ऐसी रीति है कि पुत्री लक्ष्मी सभाओंमें भी उनके गोदकी क्रीड़ा नहीं छोड़ सकती—ऐसा उलाहना देनेके लिए ही मानो इस राजाकी कीर्ति समुद्रके पास गई थी ॥ ५ ॥

उस समय राजा महासेनके ऊँचे-ऊँचे घोड़ोंकी टापोंके प्रहारसे धँसती हुई मणिरूपी कीलमें पृथिवी मानो खचित हो गई थी यही कारण है कि शेषनाग भारी बाधासे दुःखी होनेपर भी उसे अब तक छोड़नेमें असमर्थ बना है ॥६॥ यह जो आकाशमें चमकीले पदार्थ दिख रहे हैं वह तारा नहीं हैं किन्तु शत्रुओंके डूबनेसे उछटी हुई महासेन राजा की तलवारकी पानीकी बूँदे हैं यदि ऐसा न होता तो उनमें मीन, कर्क और मकर—ये जलके जीव [पक्षमें राशियाँ] क्यों पाये जाते ? ॥७॥ अरे ! यह पीठ तो इसने युद्धमे मुझे दे दी थी [पीठ दिखाकर भाग गया था] पुनः कहाँसे पा ली–इस कौतुकसे ही मानो वह राजा अपने हाथके स्पर्शके बहाने किसी नम्र राजाकी पीठको नहीं देखता था ॥८॥ इसकी भुजामें स्थित तलवारसे [पक्षमें तलवार रूपी सर्पसे] अपने आपकी रक्षा करनेमें न मन्त्री [पक्षमें मन्त्रवादी] समर्थ हैं और न तन्त्री [पक्षमे तन्त्र–टोटका करनेवाले] ऐसा सोच कर ही मानो भयभीत हुए शत्रु इसके चरणोंसे शोभायमान नखरूपी रत्न मण्डलको सदा अपने मस्तक पर धारण करते हैं ॥ ९ ॥ राजाका तलवार रूपी वर्षाकाल बड़े-बड़े तेजस्वी पुरुषों [सूर्य चन्द्रमा आदि] के विशाल तेजको आच्छादित कर ज्यों ही उद्यत हुआ त्योंही नूतन जलधाराके पड़नेसे तितर-बितर हुए राजहंस पक्षियोंकी तरह बड़े-बड़े राजा लोग नवीन पानीसे युक्त धाराके पड़नेसे खण्डित होते हुए वेगसे भाग जाते थे ॥१०॥ पृथिवी विषरूपी अग्निसे मिले हुए शेषनागके श्वासोच्छ्वाससे व्याकुल हो उठी थी अतः ज्यों ही उसे चमकीली खड्गलतासे समस्त खेदको दूर करनेवाली महाराज महासेनकी भुजाका संसर्ग प्राप्त हुआ त्यों ही उसने शेषनागकी मित्रता छोड़ दी ॥११॥ युद्धरूपी घरमें कर्णाभरणकी तरह तलवारकी भेंट देकर ज्यों ही विजयलक्ष्मीके साथ इस राजाका समागम हुआ त्यों ही शत्रुओंके प्रताप रूपी दीपक बुझा दिये

गये सो ठीक ही है क्योंकि स्त्रियाँ नवीन समागमके समय लज्जायुक्त होती ही हैं ॥१२॥ चूँकि वह राजा क्षण भरमें ही अभीष्ट पदार्थ देकर याचकोंको कृतकृत्य कर देता था अतः 'देहि' [देओ] ये दो दुष्ट अक्षर किसी भी ओरसे उसके कानोंमें सुनाई नहीं पड़ते थे मानो उसकी सूरत देखनेसे ही डरते हों॥ १३ ॥ जिनके गण्डस्थलसे मद जलके झरने झर रहे हैं ऐसे राजाओंके द्वारा उपहारमें भेजे हुए मदोन्मत्त हाथी निरन्तर इसके द्वार पर आते रहते थे जो ऐसे जान पड़ते थे मानो बलाक्रमणसे काँपते हुए कुलाचल ही इसकी उपासनाके लिए आ रहे हों ॥ १४ ॥ इस राजाकी तलवार रूपी लताने हस्ति-समूहके अग्र भागका रुधिर पिया था और देव पदके इच्छुक योद्धाओंने इसका बलात् आलिङ्गन किया था अतः वह आत्मशुद्धिके लिए बढ़े हुए इस राजाके प्रताप रूपी अग्निको प्राप्त हुई थी। [जिस स्त्रीने किसी चाण्डालके घटसे रुधिर पान किया है तथा संभोगके इच्छुक पर-पुरुषों द्वारा जिसका बलात् आलिङ्गन किया गया है ऐसी स्त्री जिस प्रकार आत्मशुद्धिके लिए इन्धनसे प्रदीप्त अग्निमें प्रवेश करती है उसी प्रकार राजाकी तलवारने भी आत्मशुद्धिके लिए प्रताप रूपी अग्निमें प्रवेश किया था] ॥१५॥ उस समय शास्त्ररूपी समुद्रके पारदर्शी राजा महासेनसे पराभवकी आशंका करती हुई सरस्वतीने विशेष पाठके लिए ही मानो पुस्तक अपने हाथमें ली थी पर उसे वह अब भी नहीं छोड़ती ॥ १६ ॥ युद्धके आँगनमें राजाके शस्त्रोंका आघात पा कर शत्रुओंके बड़े-बड़े हाथियोंके दाँतोंसे अग्निके तिलगे निकलने लगते थे और जो क्षण भरके लिए ऐसे जान पड़ते थे मानो रक्तके साथ-साथ उनके प्राण ही निकले जा रहे हों ॥१७॥ वह राजा श्रुत, शील और बल इन तीनोंको सदा उदारता रूप गुणसे युक्त रखता था मानो दिग्विजयमें प्राप्त हुई कीर्तिके लिए मङ्गल रूप चौक ही पूरा करता था ॥१८॥

जब राहु हठात् चन्द्रमण्डलको ग्रस लेता है तब लोग किसी नदी आदिके जलमें स्नान कर द्विजों—ब्राह्मणोंके लिए जिस प्रकार कुछ स्व-धनका विभागका कर देते हैं उसी प्रकार इस राजाके तलवार रूपी राहुने जब हठात् राजाओंके समूह रूपी चन्द्रमण्डलको ग्रस लिया तब शत्रुओंने तलवारकी धारके पानीमें निमग्न हो अपने आपका विभाग कर टुकड़े-टुकड़े कर द्विजों—पक्षियोंके लिए दे दिया था ।।१९।। यह लक्ष्मी स्त्री जैसा स्वभाव रखती है अतः फलकालमें कुटिल होगी—ऐसा विचार कर विश्वास न करता हुआ वह राजा शत्रुओंके कुलसे हठ पूर्वक लाई हुई लक्ष्मीको बाहर ही अपने मित्रोंको दे देता था ॥ २० ॥ युद्धके मैदानमें शत्रु-हस्तियोंके चीरे हुए गण्डस्थलसे जो चञ्चल भौंरे उड़ रहे थे उनके छलसे ऐसा मालूम होता था मानो इस राजाका खड्ग क्रोधसे विजय-लक्ष्मीको चरणदासीके समान बाल पकड़ कर ही घसीट रहा हो ।। २१ ।। त्रिभुवनको अलंकृत करनेवाले उस राजाके यशरूपी पूर्ण चन्द्रमाके बीच शत्रुओंका बढ़ता हुआ अपयश विशाल कलङ्ककी कान्तिको धारण कर रहा था ।। २२ ।। शत्रुओंके कवचोंका संसर्ग पाकर बहुत भारी तिलगोंके समूहको उगलता हुआ उस राजाका कृपाण उस समय ऐसा सुशोभित होता था मानो खून रूप जलसे सिंची हुई युद्धकी भूमिमें प्रतापरूपी वृक्षके बीजोंका समूह ही बो रहा हो ।। २३ ।। इतना बड़ा प्रभाव होने पर भी उस राजाके अहं-कारका लेशमात्र भी दिखाई नहीं देता था ऐसा मालूम होता था मानो उसका वह मद इच्छासे अधिक सम्पदाके द्वारा उन्नतिको प्राप्त हुए सेवकोंमें संक्रान्त हो गया था ।। २४ ।। वह राजा शत्रुओंके लिए काल—यम था [काला था], क्षमाका भार धारण करनेमें धवल—वृषभ था [सफ़ेद था], गुणोंमें अनुरक्त था [लाल था], हरित—इन्द्रसे भी अधिक प्रतापी था [हरित वर्ण तथा प्रतापी था] और मनुष्योंके

नेत्रों द्वारा पीत अवलोकित था [पीला था] इस प्रकार अनेक वर्ण-यश [रंग] से युक्त होनेपर भी शत्रुओंको वर्णरहित-नीच [रङ्ग-रहित] करता था ॥ २५ ॥ जिस प्रकार कोई स्वर्णकार धोंकनीसे प्रदीपित अग्निके बीच किसी बर्तनकी पुटमें रखकर सुवर्णके कड़ेको चलाता है उसी प्रकार वह राजा दिग्गजोंके भस्त्रारूपी शुण्डादण्डकी फुंकारसे उत्पन्न वायुके द्वारा प्रदीपित अपने प्रताप रूपी अग्निके बीच किसी अद्भुत आभाको धारण करनेवाले शत्रुओंके कटक-सेना रूपी कड़ेको संसार रूपी पुटमें चलाता है-इधर-उधर घुमाता है ॥ २६ ॥ कितने ही शत्रु भागकर समुद्र-तटको प्राप्त होते थे और कितने ही लौट-लौट कर इस बलवान् राजाके समीप आते थे इससे मालूम होता है कि इसकी शक्तिशालिनी भुजाओंके पराक्रमका क्रीडा-कौतुक कभी भी पूर्ण नहीं होता था ॥ २७ ॥ मित्रकी बात जाने दो, भारी भय से पीड़ित शत्रुके ऊपर भी उसकी तलवार नहीं चलती थी मानो वह 'भयसे पीड़ित मनुष्यकी रक्षा करूँगा' इस महाप्रतिज्ञाको ही धारण किये हो ॥ २८ ॥ यदि वह फणिपति अपने एकाग्र चित्तसे उस समय उस राजाके गुणोंका चिन्तवन कर सका होता तो हजार जिह्वाओंको धारण करनेवाला वह उन गुणोंको अब भी क्यों नहीं वर्णन करता ? ॥ २९ ॥

जब राजा महासेन जगत्का पालन कर रहे थे तब मलिनाम्बरकी स्थिति—मलिन आकाशका सद्भाव केवल रात्रिमें ही था, अन्यत्र मलिन वस्त्रका सद्भाव नहीं था, द्विजक्षति-दन्ताघात केवल प्रौढ़ स्त्रीके सभागमें ही था अन्यत्र ब्राह्मणादि वर्णों अथवा पक्षियोंका आघात नहीं था, सर्वविनाशसंस्तव—सर्वापहारिलोप क्विप् प्रत्ययका ही था अन्य किसीका समूल नाश नहीं था, परमोहसंभव-उत्कृष्ट तर्कका सद्भाव न्याय शास्त्रमें ही था अन्यत्र अतिशय मोहका सद्भाव नहीं

था, करवालशून्यता–तलवारका अभाव धनुर्धारियोंमें ही था, अन्यत्र हाथोंमें स्थित रहने वाले छोटे-छोटे बालकोंका अभाव नहीं था, अविनीतता–मेषवाहनता केवल अग्निमे ही थी अन्यत्र उद्दण्डता नहीं थी और गुणच्युति–प्रत्यञ्चाका त्याग बाणमें ही था अन्यत्र दया आदि गुणोंका त्याग नहीं था ॥ ३०–३१ ॥ चूँकि वह राजा अपने हृदयमें बड़े आनन्दके साथ निर्मल ज्ञानरूपी किरणोंसे समुद्भासित जिनेन्द्ररूपी चन्द्रमाको धारण करता था अतः उस राजाके हृदयमें क्षण भरके लिए भी अज्ञानरूपी अन्धकारका अवकाश नहीं दिखाई देता था ॥ ३२ ॥ वह राजा यद्यपि महानदीन–महासागर था तो भी अजडाशय था—जल रहित था [पक्षमे-महान् अदीन-बड़ा था, दीनतासे रहित था, बुद्धिमान था], परमेश्वर–शिव होकर भी अनष्टसिद्धि–अणिमादि आठ सिद्धियोंसे रहित था [पक्षमें परमेश्वर होकर भी सिद्धियोंसे युक्त था] और राजा–चन्द्रमा होकर भी विभावरीणाम्–रात्रियोंके दुःखका कारण था [पक्षमें अरीणां विभौ-राजा होकर भी शत्रु राजाओंके दुःखका कारण था]–इस प्रकार उसका उदय आश्चर्यकारी था ॥३३॥ वह राजा लहराते हुए वस्त्रसे सुशोभित और पूर्वाचल तथा अस्ताचल रूप पीन स्तनोंसे युक्त पृथिवीका किसी सुन्दरी स्त्रीकी तरह उपजाऊ देशोंमे थोड़ा–सा कर लगा कर [पक्षमें उत्कृष्ट जांघोंके बीच कोमल हाथ रख कर] उपभोग करता था ॥ ३४ ॥

समस्त पृथिवीके अधिपति राजा महासेनके सदाचारिणी सुव्रता नामकी पत्नी थी। वह सुव्रता बहुत भारी अन्तःपुरके रहने पर भी राजाको उतनी ही प्यारी थी जितनी कि चन्द्रमाको रोहिणी ॥ ३५ ॥ सुन्दर कमरवाली उस सुव्रताने धीरे–धीरे मौग्ध्य अवस्थाको व्यतीत कर ब्रह्मा द्वारा अमृत चन्द्रमा मृणाल मालती और कमलके स्वत्वसे निर्मितकी तरह सुकुमार तारुण्य अवस्थाको धारण किया ॥ ३६ ॥

जो भी मनुष्य उसके सौन्दर्य रसका पान करते थे, कामदेव उन सबको अपने वाणों द्वारा जर्जर कर देता था। यदि ऐसा न होता तो वह सौन्दर्यरस पीते हीके साथ स्वेद जलके बहाने उसके शरीरसे बाहर क्यों निकलने लगता ? ॥ ३७ ॥ हे मा ! मैं आजसे लेकर कभी भी तुम्हारे मुखकमलकी शोभाका अपहरण न करूँगा—मानो यह विश्वास दिलानेके लिए ही चन्द्रमाने अपने समस्त परिवारके साथ नखोंके बहाने उस पतिव्रताके चरणोंका स्पर्श किया था ॥ ३८ ॥

जिसने अपने प्रयाणसे ही बड़े-बड़े राजाओंको जीत लिया है और जिसके सहायक निष्कपट हों ऐसे किसी विजिगीषु राजाको देख कर जिस प्रकार जनधन सम्पन्न राजा भी अपना दुर्ग छोड़कर बाहर नहीं आता इसी प्रकार अपने गमनसे राजहंस पक्षियोंको जीतने-वाले एव निर्दोष पार्ष्णि—एड़ीसे युक्त उस सुव्रताके चरणको देख कर कमल यद्यपि कोष और दण्ड दोनोंसे युक्त है फिर भी अपने जल-रूपी दुर्गको नहीं छोड़ता ॥ ३९ ॥ उस सुव्रताके जङ्घा-युगल यद्यपि सुवृत्त थे—गोल थे [पक्षमे सदाचारी थे] फिर भी स्थूल ऊरुओंका समागम प्राप्त होनेसे [पक्षमें मूर्खोंका भारी समागम प्राप्त होनेसे] उन्होंने इतनी विलोमता—रोमशून्यता [पक्षमे विरुद्धता] धारण कर ली थी कि जिससे अनुयायी मनुष्यको भी कामसे दुखी करनेमें न चूकते थे [पक्षमें पांच छह वाणोंसे पीड़ित करनेमे पीछे नहीं हटते थे]। [कुसंगतिसे सज्जनमें भी परिवर्तन हो जाता है] ॥ ४० ॥ उस सुव्रताके उत्कृष्ट ऊरु-युगल ऐसे सुशोभित होते थे मानो स्तन-रूपी उन्नत कूटसे शोभायमान उसके शरीर रूपी काम-क्रीड़ागृहके नूतन संतप्त सुवर्णके बने खम्भे ही हों ॥ ४१ ॥ कामदेवने सुव्रताके जड—स्थूल [पक्षमे मूर्ख] नितम्बमण्डलको गुरु बनाकर [पक्षमें अध्या-पक बनाकर] कितनी सी शिक्षा ली थी फिर भी देखो कितना आश्चर्य

है कि उसने अच्छे-अच्छे विद्वानोंका भी मत खण्डित कर दिया ॥४२॥ उसके उदर पर प्रकट हुई रोम-राजि ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो नाभिरूपी गहरे सरोवरमें गोता लगाने वाले कामदेवके मदोन्मत्त हाथीके गण्डस्थलसे उड़ती हुई भ्रमरोंकी पंक्ति ही हो ॥ ४३ ॥ इधर एक ओर घनिष्ठ मित्रों [अत्यन्त सदृश] की तरह स्तन विद्यमान हैं और दूसरी ओर यह गुरु तुल्य [स्थूल] नितम्बमण्डल स्थित है इन दोनोंके बीचमें कान्तिरूपी प्रियाकी किस प्रकार सेवा करूँ—मानो इस चिन्तासे ही उसका मध्यभाग अत्यन्त कृशताको बढ़ा रहा था ॥ ४४ ॥ यह सुव्रता ही तीनों लोकोंमें साक्षात् सती है, सुन्दरी है, और तीर्थंकर जैसे श्रेष्ठ पुरुषको उत्पन्न करने वाली है—यह विचार कर ही मानो अखण्डित अभिमानको धारण करने वाले विधाताने त्रिवलिके छलसे उसके नाभिके पास तीन रेखाएं खींच दी थीं ॥४५॥ ऐसा जान पड़ता है मानो कामदेवने महादेवजीसे पराजित होनेके बाद उस सुव्रताके स्थूल [पक्षमे गुरुरूप] नितम्बसे दीक्षा ले नाभि-नामक तीर्थ-स्थान पर जाकर रोमराजिके बहाने कृष्ण मृगकी छाला और त्रिवलिके बहाने त्रिदण्ड ही धारण कर लिया हो ॥ ४६ ॥ यदि विधाताने उस सुलोचनाके स्तनोंको अमृतका कलश न बनाया होता तो तुम्हीं कहो उसके शरीरसे लगते ही मृतक कामदेव सहसा कैसे जी उठता ? ॥४७॥ उस सुन्दर भौंहों वाली सुव्रताकी भुजाएं आकाश-गङ्गाकी सुवर्ण-कमलिनीके मृणाल दण्डके समान कोमल थीं और उनके अग्रभागमें निर्मल कंकणोंसे युक्त दोनों हाथ कमलोंकी तरह सुशोभित होते थे ॥ ४८ ॥ यदि श्रीकृष्णका वह पाञ्चजन्य नामका शंख उन्हींके हाथमें स्थित सुवर्ण-कंकणकी प्रभासे व्याप्त हो जावे तो उसके साथ नतभौंहों वाली सुव्रताके रेखात्रय विभूषित कण्ठकी उपमा दी जा सकती है अथवा नहीं भी दी जा सकती ॥४९॥ ऐसा लगता

है मानो विधाताने उस चपललोचनाके कपोल बनानेके लिए पूर्ण-चन्द्रके दो टुकड़े कर दिये हों। देखो न, इसीलिए तो उस चन्द्रमामें कलङ्कके बहाने पीछेसे की हुई सिलाईके चिह्न मौजूद हैं ॥ ५० ॥ किसलय, बिम्बीफल और मूंगा आदि केवल वर्णकी अपेक्षा ही उसके ओठके समान थे। रसकी अपेक्षा तो निश्चय है कि अमृत भी उसका शिष्य हो चुका था ॥ ५१ ॥ वह सुव्रता संगीतकी बात जाने दो, यूं ही जब कभी अमृतके तुल्य विकारहीन वचन बोलती थी तब वीणा लज्जाके मारे काष्ठ हो जाती थी और कोयल पहलेसे भी अधिक कालिमा धारण करने लगती थी ॥ ५२ ॥ उसकी नाक क्या थी ? मानो ललाटरूपी अर्धचन्द्रसे झरने वाली अमृतकी धारा ही जमकर दृढ़ हो गई हो। अथवा उसकी नाक दन्त रूपी रत्नोंके समूहको तौलने की तराजू थी पर उसने अपनी कान्तिसे सारे संसारको तोल डाला था—सबको हलका कर दिया था ॥ ५३ ॥ हमारे कर्णाभूषणके कमल को जीतकर आप लोग कहां जा रहे हैं ? इस प्रकार मार्ग रोकनेवाले कानों पर कुपित हुएकी तरह उसके नेत्र अन्तभागमें कुछ-कुछ लाली धारण कर रहे थे ॥ ५४ ॥ इस निरवद्य सुन्दरीको बनाकर विधाता सृष्टिके ऊपर मानो कलशा रखना चाहते थे इसीलिए तो उन्होंने तिलकसे चिह्नित भौंहोंके बहाने उसके मुखपर 'ॐ' यह मङ्गलाक्षर लिखा था ॥ ५५ ॥ हम इस सुव्रताका आश्रय लें—इस प्रकार श्री रति कीर्ति और कान्तिने ब्रह्मा जीसे पूछा पर चूँकि ब्रह्मा जीके मौन था अतः उन्होंने इस सुव्रताके तिलक चिह्नित भौंहोंके बहाने 'ॐ' ऐसा संगत उत्तर लिख दिया था ॥ ५६ ॥ स्थूल कन्धों तक लटकते हुए उसके कान क्या थे ? मानो कपोलोंके सौन्दर्यरूपी स्वल्प जलाशयमें प्यासके कारण पड़ते हुए समस्त मनुष्योंके नेत्र रूपी पक्षियों-को पकड़नेके लिए विधाताने जाल ही बनाये हों ॥ ५७ ॥ उस नतभ्रूके

ललाटपर कालागुरु चन्दनकी जो पत्र युक्त लताएँ बनी हुई थीं उनसे ऐसा जान पड़ता था मानो कामदेवने समस्त संसारके तिलक स्वरूप अपने श्रेष्ठ गुणोंके द्वारा प्रमाणपत्र ही प्राप्त कर लिया हो ॥ ५८ ॥ दाँतोंकी उज्ज्वल कान्तिसे फेनिल, अधरोष्ठ रूप मूंगासे सुशोभित और बड़े-बड़े नेत्र रूपी कमलोंसे युक्त उसके मुखके सौन्दर्य-सागरमे घुँघुराले बाल लहरोंकी तरह जान पड़ते थे ॥ ५९ ॥ रे चन्द्र ! उस सुव्रताके मुख-चन्द्रकी तुलनाको प्राप्त होते हुए तुझे चित्तमें लज्जा भी न आई ? जिन पयोधरों [मेघों, स्तनों] की उन्नतिके समय उसका मुख अधिक शोभित होता है उन पयोधरों [मेघों] की उन्नतिके समय तेरा पता भी नहीं चलता ॥ ६० ॥ ऐसा लगता है कि मानो समस्त सौन्दर्यसे द्वेष रखनेवाले ब्रह्माजीसे इस सुव्रताकी रचना घुणाक्षर न्यायसे हो गई हो। इनकी चतुराईको तो तब जाने जब यह ऐसी ही किसी अन्य सुन्दरीको बना दें ॥ ६१ ॥ जिस प्रकार अनिन्द्य लक्षण वाली [व्याकरणसे अदूषित] सरस्वती अर्थको अलंकृत करती है, गुण-प्रत्यञ्चासे युक्त धनुर्लता धनुर्धारी वीरको विभूषित करती है और निर्मल प्रभा सूर्यको सुशोभित करती है उसी प्रकार उत्तम लक्षणोंसे युक्त, गुणोंसे सुशोभित और दोषोंसे अदूषित सुव्रता महाराज महासेनको अलंकृत करती थी ॥ ६२ ॥

महाराज महासेन यद्यपि याचकोंके लिए स्वयं अचिन्त्य चिन्तामणि थे फिर भी एक दिन अन्तःपुरकी श्रेष्ठ सुन्दरियोंकी मस्तकमालाकी तरह अत्यन्त श्रेष्ठ उस सुव्रताको देखकर निश्चल नेत्र खोल कर इस प्रकार चिन्ता करने लगे ॥ ६३ ॥ जिस विधाताने नेत्र रूप चकोरोंके लिए चाँदनी तुल्य इस सुव्रताको बनाया है वह अन्य ही है अन्यथा वेदनयान्वित—वेदज्ञानसे सहित [पक्षमें वेदनासे सहित] प्रकृत ब्रह्मासे ऐसा अमन्द कान्ति सम्पन्न रूप कैसे बन सकता है ?

॥ ६४ ॥ ऐसा लगता है कि विधाताने इसका सुन्दर शरीर बनानेके लिए मानो कनेरसे सुगन्धि, इक्षुसे फल और कस्तूरीसे मनोहर रूप ले लिया था, अथवा किससे क्या सारभूत गुण नहीं लिया था ? ॥६५॥ शरीर, अवस्था, वेष, विवेक, वचन, विलास, वंश, व्रत और वैभव आदिक सभी इसमें जिस प्रकार सुशोभित हो रहे हैं उस प्रकार कहीं अन्यत्र पृथक्-पृथक् भी सुशोभित नहीं होते ॥ ६६ ॥ न ऐसी कोई देवाङ्गना, न नागकन्या और न चक्रवर्तीकी प्रिया ही हुई है, होगी अथवा है जिसके कि शरीरकी कान्तिके साथ हम इस सुव्रताकी अच्छी तरह तुलना कर सकें ॥ ६७ ॥ असार संसार रूपी मरुस्थलमें घूमनेसे खेद-खिन्न मनुष्योंके नेत्र रूपी पक्षियोंको आनन्द देनेके लिए इस मृगनयनीका यह नवयौवन रूपी वृक्ष मानो अमृतके प्रवाहसे सींचा जाकर ही वृद्धिको प्राप्त हुआ है ॥ ६८ ॥ यद्यपि हम ऋतुकालके अनुसार गमन करते हैं फिर भी इस सुव्रताके नवयौवन रूप वृक्षमे पुत्र नामक फलको नहीं प्राप्त कर रहे हैं, यही कारण है कि हमारा मन निरन्तर दुखी रहता है मानो उसे इस बातका खेद है कि यह पृथिवीका भार जीवन पर्यन्त मुझे ही धारण करना होगा ॥ ६९ ॥

हजारों कुटुम्बियोंके रहते हुए भी पुत्रके बिना किसका मन प्रसन्न होता है ? भले ही आकाश देदीप्यमान ताराओं और ग्रहोंसे युक्त हो पर चन्द्रमाके बिना मलिन ही रहता है ॥ ७० ॥ पुत्रके शरीरके स्पर्शसे जो सुख होता है वह सर्वथा निरुपम है, पूर्णकी बात जाने दो उसके सोलहवें भागको भी न चन्द्रमा पा सकता है न इन्दीवर पा सकते हैं, न मणियोंका हार पा सकता है, न चन्द्रमाकी किरणें पा सकती हैं और न अमृतकी छटा ही पा सकती है ॥ ७१ ॥ यह मेरे कुलकी लक्ष्मी कुलाङ्कुर-पुत्रको न देखकर अपने भोगके योग्य आश्रयके नाशकी शङ्का करती हुई निःसन्देह गरम-गरम आहोंसे

अपने हाथके क्रीड़ा-कमलको सुखाती रहती है ॥ ७२ ॥ जिस प्रकार सूर्यके बिना आकाश, नयके बिना पराक्रम, सिंहके बिना वन और चन्द्रमाके बिना रात्रिकी शोभा नहीं उसी प्रकार प्रताप, लक्ष्मी, बल और कान्तिसे शोभायमान पुत्रके बिना हमारा कुल सुशोभित नहीं होता ॥ ७३ ॥ कहाँ जाऊँ ? कौन सा कठिन कार्य करूँ ? अथवा मनोरथको पूर्ण करनेवाले किस देवेन्द्रकी शरण गहूँ—इस प्रकार इष्ट पदार्थ विषयक चिन्तासमूहके चक्रसे चलाया हुआ राजाका मन किसी भी जगह निश्चल नहीं हो रहा था ॥ ७४ ॥

इस प्रकार चिन्ता करते हुए राजाके नेत्र खुले हुए थे और उनसे वह वायुके अभावमें जिसके कमल निश्चल हो गये हैं उस सरोवरकी शोभाका अपहरण कर रहे थे। उसी समय एक वनपाल राजाके पास आया, हर्षके अश्रुओंसे वनपालका शरीर भींग रहा था तथा उठते हुए रोमाञ्चोंसे सुशोभित था इससे ऐसा जान पड़ता था मानो राजाके मनोरथ रूप वृक्षका बीजावाप ही हुआ हो—बीज ही बोया गया हो ॥ ७५ ॥ द्वारपालने वनपालके आनेकी राजाको खबर दी, अनन्तर बुद्धिमान वनपालने राजाको विनयपूर्वक प्रणाम कर पापको नष्ट करनेवाले निम्नलिखित वचन कहे। उसके वह वचन इतने प्रिय थे मानो उनका प्रत्येक अक्षर अमृतसे नहलाया गया हो ॥ ७६ ॥

हे राजन् ! पूर्ण चन्द्रकी तरह दिगम्बर पथके [पक्षमें दिशा और आकाश-मार्गके] अलंकार भूत कोई चारण ऋद्धिधारी मुनि अभी-अभी आकाशसे बाह्य उपवनमें अवतीर्ण हुए हैं, उनके चरणोंके स्नेहोत्सवसे औरकी क्या कहूं वृक्ष भी अपना-अपना समय छोड़कर पुष्प और अंकुरोंके बहाने रोमाञ्चित हो उठे हैं ॥ ७७ ॥ वे मुनिराज क्रीड़ाचलकी शिखर पर पद्मासनसे विराजमान हैं और तत्त्वाभ्याससे निकटवर्ती मुनियोंके द्वारा बतलाये हुए प्रचेता नामको

सार्थक कर रहे हैं ॥ ७८ ॥ इस प्रकार वनपालके मुखसे अचानक आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली, सन्ताप दूर करनेवाली और अमन्द आनन्दसे भरपूर यतिचन्द्र विषयक वार्ता सुनकर राजाके नेत्र चन्द्रकान्त मणिकी तरह हर्षाश्रु छोड़ने लगे, हस्त युगल कमलकी तरह निमीलित हो गये और परम आनन्द समुद्रके जलकी तरह बढ़ने लगा ॥७९॥

इस प्रकार महाकवि हरिचन्द्र विरचित धर्मशर्माभ्युदय
महाकाव्यमें द्वितीय सर्ग समाप्त हुआ।



तृतीय सर्ग

जिस प्रकार सूर्य उदयाचलसे उठकर प्रचेतस—वरुणकी दिशा [पश्चिम] में जा कर नम्रीभूत हो जाता है उसी प्रकार राजा महासेन समाचार सुनते ही सिंहासनसे उठा और प्रचेतस-मुनिराजकी दिशामे जा कर नम्रीभूत हो गया—मुनिराजको उसने नमस्कार किया ॥ १ ॥ राजाने वनपालके लिए संतोष रूपी वृक्षका फल—पारितोषिक दिया था जो ऐसा जान पड़ता था मानो मनोरथ रूपलताके बीजोपहारका मूल्य ही दिया हो ॥ २ ॥

राजाने समस्त नगरमें क्लेश दूर करनेमें समर्थ अपनी आज्ञाकी तरह मुनि-वन्दनाको प्रारम्भ करनेवाली भेरी बजवाई ॥ ३ ॥ मेघमालाकी तरह उस भेरीका शब्द आनन्दसे भरे हुए नगरवासी रूपमयूरोंको उत्कण्ठित करता हुआ दिशाओंमें व्याप्त हो गया ॥ ४ ॥

उस समय वह नगर भी चन्दनके छिड़कावसे ऐसा जान पड़ता था मानो हँस रहा हो, फहराती हुई ध्वजाओंसे ऐसा लगता था मानो नृत्य कर रहा हो और फूलोंके समूहसे ऐसा विदित होता था मानो रोमाञ्चित हो रहा हो ॥ ५ ॥

नगरनिवासी लोग अच्छी-अच्छी वेष-भूषा धारण कर अपने अपने घरोंसे बाहर निकलने लगे मानो गमनजनित आनन्दसे इतने अधिक पीन हो गये कि घरोंमें समा ही न सकते हों ॥ ६ ॥ जिस प्रकार दूत कार्यसिद्धिकी प्रतीक्षा करते हैं उसी प्रकार रथ, घोड़े और हाथियों पर बैठने वाले सामन्तगण बाह्य तोरण तक आकर राजाकी प्रतीक्षा करने लगे ॥ ७ ॥

जिस प्रकार सूर्य प्रभाके साथ गमन करता है उसी प्रकार वह राजा भी अपनी प्रियाके साथ रथ पर आरूढ़ होकर दिगम्बर मुनिराजके चरणोंके समीप चला ॥ ८ ॥ जिस प्रकार समस्त संचारी भाव स्तम्भ आदि सात्त्विक भावको प्रकट करनेवाले शृङ्गारादि रसों का अनुगमन करते हैं उसी प्रकार समस्त पुरवासी मुनिराजकी वन्दनाके लिए तत्पर राजाका अनुगमन करने लगे ॥ ९ ॥ चलते समय यह राजा निकटवर्ती घरोंके समान राजाओंको देखकर बहुत ही प्रसन्न हुआ क्योंकि जिस प्रकार घर सज्जालक थे—उत्तम झरोखोंसे युक्त थे उसी प्रकार राजा भी सज्जालक थे—सँभले हुए केशोंसे युक्त थे और जिस प्रकार घर मत्तवारणराजित—उत्तम छपरियोंके सुशोभित थे उसी प्रकार राजा भी मत्तवारण राजित—मदोन्मत्त हाथियोंसे सुशोभित थे ॥ १० ॥ सेवाका अवसर जाननेमें निपुण सेवक मूर्तिमान् ऋतुओंकी तरह फल और फूल लेकर पहले ही उपवनमें जा पहुँचे थे ॥ ११ ॥ जिस प्रकार मृगोंका मार्ग पाशों—बन्धनोंसे दुर्गम हो जाता है उसी प्रकार नगरके उद्यानका मार्ग परस्पर शरीरके संघट्टनसे टूट-टूट कर गिरे हुए हारोंसे दुर्गम हो गया था ॥ १२ ॥ नेत्रोंकी शोभासे कुवलय—नील कमलको जीतनेवाला सुन्दर शरीरसम्पन्न वह राजा स्त्रियोंके नेत्रोत्सवके लिए हुआ था परन्तु दृष्टि मात्रसे भूमण्डल को जीतनेवाला तथा युद्ध दिखलाने वाला वह राजा शत्रुओंके नेत्रोत्सवके लिए नहीं हुआ था—उसे देखकर स्त्रियाँ आनन्दित होती थीं और शत्रु डरते थे ॥ १३ ॥ उस राजाके शरीरके सौन्दर्यमें नगरनिवासी स्त्री-पुरुषोंके नेत्र प्रतिबिम्बित हो रहे थे और पास ही अनेक गन्धर्व—अश्व थे अतः वह गन्धर्वों—देव विशेषोंसे घिरे हुए हजार नेत्रों वाले इन्द्रकी तरह सुशोभित हो रहा था ॥ १४ ॥ उस राजाके मुखकमलके समीप जो भौंरे मँडरा रहे थे वे ऐसे जान पड़ते थे मानों

अन्तरङ्गमें मुनि रूपी चन्द्रमाके संनिधानसे बाहर निकलते हुए अन्धकारके टुकड़े ही हों ॥ १५ ॥ उस समय जो नगरनिवासी स्त्रियाँ उपवनको जा रही थीं वे कामोपवनकी तरह सुशोभित हो रही थीं क्योंकि जिस प्रकार स्त्रियाँ सविभ्रम थीं–हाव भाव विलाससे सहित थीं उसी प्रकार कामोपवन भी सविभ्रम था—पक्षियोंके संचारसे सहित था, जिस प्रकार स्त्रियाँ चारुतिलकाम् अलकावलिं बिभ्रत्—सुन्दर तिलकोंसे सुशोभित केशोंका समूह धारण कर रही थीं उसी प्रकार कामोपवन भी चारुतिलकामलकावलि बिभ्रत्—सुन्दर तिलक और आँवलेके वृक्षोंका समूह धारण कर रहा था, जिस प्रकार स्त्रियाँ उल्लसत्पत्रवल्लीक–केशर कस्तूरी आदिसे बनी हुई पत्रयुक्त लताओंके चिह्नोंसे सहित थीं उसी प्रकार कामोपवन भी पल्लवित लताओंसे सहित था, जिस प्रकार स्त्रियाँ दीर्घ नेत्र धृताञ्जन–बड़ी–बड़ी आँखोंमें अञ्जन धारण करती थीं उसी प्रकार कामोपवन भी बड़ी-बड़ी जड़ोंसे अंजन वृक्ष धारण कर रहा था, जिस प्रकार स्त्रियाँ उत्तालपुंनागों—श्रेष्ठ पुरुषोंसे युक्त थी उसी प्रकार कामोपवन भी उत्तालपुंनागों—ऊँचे-ऊंचे ताड़ तथा नागकेशरके वृक्षोंसे युक्त था और जिस प्रकार स्त्रियाँ सालसं गममादधत्—आलस्य सहित गमनको धारण करती थीं उसी प्रकार कामोपवन भी सालसं गममादधत्–साल वृक्षके संगम को धारण कर रहा था ॥१६–१७॥ वह राजा वृद्धा स्त्रियोंके आशीर्वादकी इच्छा करता हुआ धीमे-धीमे इष्टसिद्धिके द्वारकी तरह नगरके द्वार तक पहुँचा ॥ १८ ॥ जिस प्रकार यति–विराम स्थलसे युक्त और कान्ति नामक गुणको धारण करनेवाला श्लोक किसी महाकविके मुखसे निकलता है उसी प्रकार यति–मुनिविषयक भक्तिसे युक्त और अतिशय कान्तिको धारण करनेवाला राजा नगरसे बाहर निकला ॥ १९ ॥ प्रियाके पुत्रकी तरह अनेक उत्सवोंके स्थान भूत [पक्षमें

अनेक लक्षणोंसे युक्त] शाखानगरको देखकर राजा बहुत ही प्रसन्न हुआ ॥ २० ॥ वह राजा विक्रमश्लाघ्य, पराक्रमसे प्रशंसनीय [पक्षमें वि-मयूर पक्षी पर संचार करनेसे प्रशंसनीय] और भवानीतनय (संसारमें नय मार्गका प्रचार करनेवाला, पक्षमें पार्वतीका पुत्र) तो पहलेसे ही था पर उस समय बड़ी भारी सेनासे आवृत होनेके कारण महासेन [बड़ी सेनासे युक्त पक्षमें कार्तिकेय] भी हो गया था ॥२१॥

ऊँची-ऊँची डालियों पर लगे हुए पत्तोंसे सुशोभित वनकी पङ्क्ति को देखकर वह राजा उन्नत स्तनोंके अग्रभाग पर उल्लसित पत्राकार रचनासे सुशोभित अपनी प्रियासे इस प्रकार बोला ॥२२॥ हे प्रिये ! जिनपर भौंरोंके समूह उड़ रहे हैं ऐसे कामके उन्मादको करनेवाले ये वनके वृक्ष ही हमारी प्रीतिके लिए नहीं है किन्तु जिसमें मदिरा पान करनेका भाव उठता है ऐसा कामके उन्मादसे किया हुआ वह स्त्री-संभोगका शब्द भी हमारी प्रीतिके लिए है ॥२३॥ अनेक डालियों से मेघोंके तटका स्पर्श करनेवाली यह उद्यानमाला अपनी अकुली-नता-ऊँचाईको स्वयं कह रही है। (अनेक गुण्डे जिसके स्तनतटका स्पर्श कर रहे हैं ऐसी स्त्री अपनी अकुलीनता-नीचताको स्वय कह देती है) ॥ २४ ॥ जिसके गर्दन परके बाल हवासे उड़ रहे है, जो खून और माँस खाता है तथा हाथियोंसे कभी भी पराजित नहीं होता ऐसा सिंह जिस प्रकार सबको व्याकुल कर देता है उसी प्रकार जिसमें बकुलके वृक्ष सुशोभित हैं, जिसमें टेसूके लाल-लाल फूल फूल रहे हैं और जो निकुञ्जोंसे विराजित है ऐसा यह वन किसे नहीं व्याकुल करता ? अर्थात् सभीको कामसे व्याकुल बना देता है ॥ २५ ॥ सैनिकोंके कोलाहलसे जिनपर पक्षियोंके समूह उठ रहे है ऐसे यह वृक्ष इस प्रकार सुशोभित होते हैं मानो हम लोगोंके आगमनके हर्षमें इन्होंने पताकाएँ ही फहरा दी हों॥ २६ ॥ वनमें यह जो इधर-उधर

भौंरोंकी पङ्क्ति उड़ रही है वह नीलमणियोंकी बनी वंदनमालाका अनुकरण कर रही है ॥ २७ ॥ यह जो वृक्षोंके अग्रभाग पर सफ़ेद-सफ़ेद फूलोंके समूह फूल रहे हैं वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो पत्ते खानेके लिए मुख खोलते समय गिरे हुए सूर्यके घोड़ोंके फेनके टुकड़े ही हों ॥ २८ ॥ उछलते हुए ऊँचे-ऊँचे घोड़े रूप तरङ्गोंसे सहित इस सेना रूपी समुद्रके आगे यह हराभरा वन ऐसा जान पड़ता है मानो समुद्रसे निकाल कर शेवालका ढेर ही लगा दिया गया हो ॥ २९ ॥ हे मृगनयनी, जिसके आम्रमञ्जरी रूपी सुवर्णकी छड़ी ऊपर उठाई है, जो लवङ्ग, इलायची, लाञ्ची, कपूर और चम्पेकी सुगन्धिको इधर-उधर फैला रहा है, जो तालाबके जल-कणोंकी वर्षा करनेसे ऐसा लगता है मानो हारसे ही सुशोभित हो, जो बार-बार हिलती हुई लताओंके द्वारा मानो हाथके संकेतसे प्रेरित ही हो रहा है और जो चन्दनकी सुगन्धसे सुन्दर है—बड़ा भला मालूम होता है ऐसा यह पवन, वन-रूपी राजाके प्रतीहारके समान हम लोगोंके निकट आ रहा है ॥३०-३२ ॥ अपने अग्रभागमें चन्दन वृक्षसे उत्कट तिलक वृक्षको धारण करनेवाली यह वनकी वसुधा अखण्ड दूर्वाके द्वारा हम लोगोंका ठीक उसी तरह मंगल कर रही है जिस तरह कि मुख पर चन्दनका बड़ा-सा तिलक लगाने वाली सौभाग्यवती स्त्री अक्षत और दूर्वाके द्वारा किसी अभ्यागतका मङ्गल करती है ॥ ३३ ॥ इधर ये पल्लवोंसे मनोहर [पक्षमें मूंगासे सहित अथवा उत्तम केशोंसे रमणीय] और भ्रमरोंसे युक्त [पक्षमें परिक्रमाके आनन्दसे युक्त] लताएँ वायुरूपी नर्तककी तालका इशारा पाकर मानो नृत्य ही कर रही हैं ॥ ३४ ॥ इस प्रकार प्रियाके लिए वनकी सुषमाका वर्णन करता हुआ राजा ज्यों ही उपवनके समीप पहुँचा त्यों ही उसने अहंकारकी तरह रथका परित्याग कर दिया ॥ ३५ ॥

जिसने तत्काल ही समस्त राज-चिह्न दूर कर दिये हैं ऐसा राजा मुनिराजके सम्मुख जाता हुआ मूर्तिमान विनयकी तरह सुशोभित हो रहा था ॥ ३६ ॥ जिस प्रकार उन्नत नक्षत्रोंसे युक्त चन्द्रमा अपने कराग्र–किरणोंके अग्रभागको संकुचित कर मेघके भीतर प्रवेश करता है उसी प्रकार उन्नत क्षत्रियोंसे युक्त राजाने अपने कराग्र—हस्तके अग्रभागको जोड़कर पत्नीके साथ क्रीड़ावनमे प्रवेश किया ॥ ३७ ॥

वहाँ उसने वह अशोक वृक्ष देखा जो कि बड़े–बड़े गुच्छोंसे लाल–लाल हो रहा था और ऐसा जान पड़ता था मानो निकटवर्ती मुनियोंके मनसे निकले हुए राग भावसे ही व्याप्त हो रहा हो ॥३८॥ उस अशोक वृक्षके नीचे एक विस्तृत स्फटिककी शिला पर मुनिराज विराजमान थे जो ऐसे जान पड़ते थे मानो तपके समूहसे बढ़े हुए अगणित पुण्यके समूह ही हों, वे मुनिराज नेत्रोंके लिए आनन्द प्रदान कर रहे थे और अच्छे-अच्छे मुनियोंके समूहसे वेष्टित थे अतः ऐसे जान पडते थे मानो नक्षत्रोंके साथ पृथिवी पर अवतीर्ण हुआ चन्द्रमा ही हो, वे ज्ञानरूपी समुद्रकी तरङ्गोंसे जिसका आभ्यन्तर अवकाश दूर कर दिया है ऐसे मलसे लिप्त हुए बाह्य शरीरमे अनादर प्रकट कर रहे थे, वे अत्यन्त निःसह और आहार ग्रहणका त्याग करनेवाले [पक्षमें मोतियोंके हारसे सहित] अगोंसे मुक्ति कान्ता सम्बन्धी आसक्तिको प्रकट कर रहे थे, उनकी अर्धोन्मीलित दृष्टि नासा-वंशके अग्रभाग पर लग रही थी, वे अपनी आत्माका अपने आपके द्वारा अपने आपमें ही चिन्तन कर रहे थे, दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तपके एक आधार थे, क्षमाके भण्डार थे और गृह परित्यागी थे—राजाने उन मुनिराजके दर्शन बड़ी भक्तिसे किये ॥ ३९–४४ ॥ जिस प्रकार निर्मल किरणोंका धारक चन्द्रमा अतिशय विशाल एवं स्थिर सुमेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा देता है उसी प्रकार उज्ज्वल वस्त्रों-

को धारण करनेवाले राजाने उन वीतराग गुरुदेवकी प्रदक्षिणा दी। अनन्तर पृथिवीमूलमें मस्तक टेक नमस्कार कर जमीन पर आसन ग्रहण किया सो ठीक ही है क्योंकि विनय लक्ष्मीका ही आश्रय नहीं होता किन्तु कल्याणोंका भी होता है ॥ ४५-४६ ॥

अथानन्तर शिष्टाचारको जाननेवाले राजाने मङ्गल कार्यके प्रारम्भमे बजते हुए दुन्दुभिके शब्दको तिरस्कृत करते हुए निम्न प्रकार वचन कहे ॥ ४७ ॥

हे भगवन्! चिन्ता और संतापसे शान्ति प्रदान करनेवाले आपके चरणरूप वृक्षकी छायाको प्राप्तकर मै इस समय संसार-परिभ्रमणके खेदसे मुक्त हो गया हूँ ॥ ४८ ॥ हे नाथ! आपके दर्शन मात्रसे मैंने इस बातका निर्णय कर लिया कि मेरा जो जन्म हुआ था, है और आगे होगा वह सब पुण्यशाली है ॥ ४९ ॥ तप सहित [पक्षमें माघ मास सहित] उस सूर्यसे अथवा दोष सहित [पक्षमे रात्रि सहित] उस चन्द्रमासे क्या लाभ जो कि आपकी तरह दिखते ही आभ्यन्तर अन्धकारको नष्ट नहीं कर सकता ॥ ५० ॥ भगवन्! आप जगन्मित्र हैं—जगत् सूर्य हैं और मैं जलाशय हूँ—तालाब हूँ साथ ही आप दृष्टिगोचर हो रहे हैं फिर भी मेरे पङ्कजात-कमलोंका समूह निमीलित हो रहा है यह भारी आश्चर्यकी बात है, क्या कभी सूर्योदयके रहते कमल निमीलित रहते हैं? हे भगवन्! आप संसारके मित्र हैं, आपको दिखते ही मुझ मूर्खका भी पापोंका समूह नष्ट हो जाता है यह आश्चर्यकी बात है ॥ ५१ ॥ हे नाथ! आपके चरणोंके संसर्गसे पुरुष उत्तम हो जाते हैं यह बात सर्वथा वचनोंके अगोचर है। हे नाथ, युष्मद् शब्दके योगमें उत्तम पुरुष होता है यह बात व्याकरण शास्त्रके सर्वथा विरुद्ध है ॥ ५२ ॥ भगवन्!

आपके दर्शन रूपी रसायनसे मेरी कीर्ति इतनी अधिक पुष्ट हो गई है कि वह तीस आवास [पक्षमें स्वर्ग] की बात तो दूर रहे, अनन्त आवासों [पक्षमें पातालमें] में भी नहीं समाती ॥ ५३ ॥ भगवन ! टिमकार रहित, दोष रहित, व्यपेक्षा रहित, विरूनी रहित तथा सदा उन्निद्र रहने वाला आपका ज्ञान-नेत्र कहीं भी स्खलित नहीं होता ॥ ५४ ॥ हे नाथ ! यद्यपि आपके दर्शन मात्रसे ही मेरा मनोरथ सिद्ध हो गया है साथ ही मैं जो निवेदन करना चाहता हूँ उसे आप जानते है फिर भी अपनी जड़ता प्रकट करनेके लिए मै कुछ कह रहा हूँ ॥५५॥

यह जो मेरी प्राणप्रिया पत्नी है वह सन्तानोत्पादनके योग्य समयमें स्थित होनेपर भी सन्तान रहित है अतः निष्फल क्रियाकी तरह मुझे अत्यन्त दुखी करती है ॥ ५६ ॥ यह पृथिवी यद्यपि मनोवाञ्छित फलको उत्पन्न करनेवाली है फिर भी सन्तान न होनेसे मै इसे केवल अपना भार ही समझता हूँ ॥ ५७ ॥ मुझे मोक्ष पुरुषार्थकी बड़ी इच्छा है परन्तु मोहवश इस समय मेरे पुत्रका अदर्शन मिथ्या दर्शनका काम कर रहा है ॥ ५८ ॥ जिस प्रकार अन्तिम दशा [बत्ती] को प्राप्त हुए दीपकका निर्वाण [बुझना] तब तक अच्छा नहीं समझा जाता जब तक कि वह किसी अन्य दीपकको प्रकाशित नही कर देता इसी प्रकार अन्तिम दशा [अवस्था] को प्राप्त हुए पुरुषका निर्वाण [मोक्ष] तब तक अच्छा नहीं समझा जाता जबतक कि वह किसी अन्य पुत्रको जन्म नहीं दे देता ॥ ५९ ॥ इसलिए हे भगवान् ! मै जानना चाहता हूँ कि रसलीलाके आलवाल स्वरूप इस पत्नीके विषयमें उद्भिन्न हुए मेरे मनोरथ रूप वृक्षका फल कब निष्पन्न होगा ? ॥ ६० ॥

मुनिराज यह सुन राजाके कानोंमें दांतोंकी किरणोंके बहाने अमृतकी धाराको छोड़ते हुएके समान इस प्रकार बोले ॥ ६१ ॥ हे

वस्तुस्वरूपके जानकार ! आप ऐसा चिन्ताजनित खेदके पात्र नहीं हो। आंखोंमें चकाचौंध पैदा करने वाला तेज क्या कभी अन्धकारके द्वारा अभिभूत होता है ॥ ६२ ॥ हे राजन् ! तुम धन्य हो, तुम गुण-रूपी विक्रेय वस्तुओंके बाजार हो, जिस प्रकार कि नदियोंका आश्रय एक समुद्र ही होता है उसी प्रकार समस्त सम्पदाओंके आश्रय एक तुम्हीं हो ॥ ६३ ॥ हे राजन् ! आजसे लेकर तीनों लोकोंमें फैलने-वाली आपकी कीर्तिरूपी गङ्गा नदीके बीच यह चन्द्रमा राजहंसकी शोभाको प्राप्त करेगा ॥ ६४ ॥ केवल सब राजा ही आपसे हीन नहीं हैं किन्तु सब देव भी आपसे हीन हैं वस्तुतः अन्य स्वर उदात्तस्वरके माहात्म्यका उल्लङ्घन नहीं कर सकते ॥ ६५ ॥ मैं क्षुद्र हूँ—यह समझ कर अपने आपका अनादर न करो, तुम शीघ्र ही लोकत्रयके गुरुके गुरु—पिता होने वाले हो ॥ ६६ ॥ हे राजन् ! तुम अपने गुणोंसे मेघके समान समुन्नत हो, संसाररूप दावानलसे पीड़ित हुए ये लोग तुम्हारे पुत्र रूप जलसे शान्तिको प्राप्त होंगे ॥ ६७ ॥ यह जो आपकी सदा-चारिणी सुव्रता पत्नी है यह शीघ्र ही श्रेष्ठ गर्भ धारण कर समुद्रकी बेलाको लज्जित करेगी ॥ ६८ ॥ याद रखिये, यह स्त्रीरत्न संसारका सर्वश्रेष्ठ सर्वस्व है, तीनों लोकोंका आभूषण है, और पाप रूपी विष-को नष्ट करनेवाला है ॥ ६९ ॥ क्षुद्र तेजको उत्पन्न करनेवाली दिशा-ओंकी तरह अन्य स्त्रियोंसे क्या लाभ ? यही एक धन्य है जो कि पूर्व दिशाकी भांति अपनी ज्योतिसे संसारके नेत्रोंको संतुष्ट करेगी ॥७०॥ जिस प्रकार सरसीके बीच चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब अवतीर्ण होता है उसी प्रकार छह माह बाद इस सुव्रताके गर्भमे स्वर्गसे पन्द्रहवें तीर्थ-कर अवतीर्ण होंगे ॥ ७१ ॥ इसलिए आप दोनों अपने आपको कृत-कृत्य समझो क्योंकि संसारी प्राणियोंके ऐसे पुत्रसे बढ़कर अन्य लाभ नहीं होता ॥ ७२ ॥ आजसे लेकर तुम दोनोंका ही जन्म, जीवन अथवा

गार्हस्थ कल्पान्तकाल तक प्रशंसाको प्राप्त होता रहेगा ॥ ७३ ॥ जिस प्रकार कुशल टीकाकार किसी ग्रन्थके कठिन स्थलकी व्याख्या कर शब्द और अर्थको अत्यन्त सरल बना देता है जिससे अत्यन्त गूढ एवं गंभीर भावको सूचित करनेवाले उस अर्थका चिन्तन करते हुए पुरुष चिरकाल तक आनन्दित होते रहते हैं उसी प्रकार उन कुशल मुनिराजने विशाल चिन्ताका भार नष्ट कर उन दोनों दम्पतियोंको अधिक प्रसन्न किया था जिसमे गूढ तत्त्वको सूचित करनेवाले उस भावी पुत्रका चिरकाल तक चिन्तन करते हुए सज्जन पुरुष आनन्दसे रोमाञ्चित हो उठे ॥ ७४ ॥

तदनन्तर मेरे तीर्थंकर पुत्रका जन्म होगा—यह समाचार सुनकर जो अत्यन्त नम्र हो रहा है ऐसे प्रशस्त वचन बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ राजा महासेनने हर्षसे गद्गद हो कर मुनिराजसे पुनः इस प्रकार वचन कहे ॥ ७५ ॥ इस समय यह किस स्वर्गको पवित्र कर रहा है और तीर्थंकर पदकी प्राप्तिमे कारणभूत सम्यग्दर्शन रूपी चिन्तामणि की प्राप्ति इसे किस जन्ममे हुई ?—यह सब कहिये। मै संसार-समुद्रसे पार हुए इस भावी जिनेन्द्र देवके भवान्तर सुनना चाहता हूँ ॥७६॥ इस प्रकार आनन्दसे रोमाञ्चित राजा महासेनके प्रीतिसे भरे हुए एवं पापके आतंकको नष्ट करनेवाले समस्त वचन सुनकर प्रचेतस् मुनिराजने भावी जिनेन्द्रके पूर्वभवका उदार चरित स्पष्ट रूपसे जाननेके लिए अपना अवधिज्ञानरूपी नेत्र खोला ॥ ७७ ॥

इस प्रकार महाकवि हरिचन्द्र द्वारा विरचित धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्यमें तृतीय सर्ग समाप्त हुआ।

चतुर्थ सर्ग

तदनन्तर जिनका अवधिज्ञान रूपी नेत्र खुल रहा है, और जो अपने हाथ पर रखे हुए मुक्ताफलकी तरह समस्त वृत्तान्तको स्पष्ट देख रहे है ऐसे प्रचेतस् मुनिराज भावी तीर्थकरके पूर्व जन्मका वृत्तान्त इस प्रकार कहने लगे मामो वह वृत्तान्त उन्होंने साक्षात् ही देखा हो ॥ १ ॥ हे राजन् ! प्रयोजनकी सिद्धिके लिए जो तुमने इष्ट वार्ता पूछी है मैं उसे कहता हूँ सुनो, क्योंकि जिनेन्द्र भगवान्‌की कथा किसी भी प्रकार क्यों न कही अथवा सुनी जाय चिन्तित पदार्थको पूर्ण करनेके लिए कामधेनुके समान है ॥ २ ॥ धातकीखण्ड इस नामसे प्रसिद्ध बड़े भारी द्वीपमे वह पूर्व मेरु है जो कि आकाशको निराधार देख किसी धर्मात्मा-द्वारा खड़े किये हुए खम्भेकी तरह दिखाई देता है ॥३॥ इस मेरुसे पूर्व विदेह क्षेत्रको सुशोभित करता हुआ सीता नदीके दक्षिण तट पर स्थित वत्स नामका वह रमणीय देश है जो कि एक होकर भी अनेक इन्द्रियोंके हर्षका कारण है ॥ ४ ॥ जिस देशमें खिले हुए कमलोंसे सुशोभित, हरी हरी घाससे सुशोभित धानके खेत ऐसे जान पड़ते हैं मानो निराधार होनेके कारण किसी तरह गिरे हुए सुन्दर ताराओंसे सुशोभित आकाशके खेत हों ॥ ५ ॥ जो देश इक्षुपीडन यन्त्रोंके कर्ण-कमनीय शब्दोंसे ऐसा जान पड़ता है मानो गा ही रहा हो और मन्द मन्द वायुसे हिलते हुए धानके पौधोंसे ऐसा मालूम होता है मानो अपनी सम्पत्तिके उत्कर्षके मदसे नृत्य ही कर रहा हो ॥ ६ ॥ जिस देशमें अग्रभागमें नीरसता धारण करने वाले, मध्यमें गठीले और निष्फल बढ़ने वाले अचेतन इक्षु ही पेले जाने पर

रस छोड़ते हैं वहाँ ऐसे मनुष्य नहीं हैं जो प्रारम्भमें ही नीरस हों हृदयमें गांठदार—कपटी हों और निष्प्रयोजन बढ़ते हों ॥ ७ ॥ जिस देशमे कमलोंसे सुशोभित तालाब ऐसे जान पड़ते थे मानो अपने कुलमें उत्पन्न वैभवशालिनी लक्ष्मीको देखनेके लिए चिरकाल बाद समुद्र ही आये हों और उन्होंने कमलोंके बहाने मानो नेत्र ही खोल रक्खे हों ॥ ८ ॥ जिस देशमें पथिकोंको सर्वत्र फलसे झुके हुए आम, जामुन, जम्बीर, संतरे, लोग और सुपारियोंके वृक्ष मिलते हैं अतः वे व्यर्थ ही सम्बलका बोझ नहीं उठाते ॥ ९ ॥ जिस देशमें मध्याह्नके समय कमलोंकी परागसे पीला-पीला दिखने वाला नदियोंका पानी ऐसा सन्देह उत्पन्न करने लगता है मानो किनारेके समीप जलते हुए सूर्यकान्त मणियोंकी गर्मीसे कहीं तटका सोना ही तो गल-गलकर नहीं भर गया है ॥ १० ॥ जिस देशमे सूर्यकी किरणें ही समय पाकर प्रजा को संताप पहुँचाती थीं, राजाके कर—टेक्स नहीं। इसी प्रकार भोग भङ्ग—फणाका नाश यदि होता था तो सर्पों के ही होता था वहाँ-के मनुष्योंका भोग भङ्ग—विषयका नाश नहीं होता था ॥११॥ जिस देशमे नदियोंके किनारेके वृक्ष ऐसे जान पड़ते हैं मानो वहां वृद्धि पाकर बदला चुकानेकी भावनासे छायाके बहाने जलदेवताओंको फल देनेके लिए ही भीतर प्रवेश कर रहे हों ॥ १२ ॥

उस देशमें विधाताने देवोंकी नगरियोंको बना बनाकर-शिल्प-कलामें जो कुछ चातुर्य सीखा है उसकी अन्तिम सीमाकी तरह विधाताके द्वारा बनाई हुई सुसीमा नामक नगरी है ॥ १३ ॥ वनरूपी वस्त्र उस नगरीके नितम्ब तुल्य भूमिका चुम्बन कर रहे थे, पर्वत आदि उन्नत प्रदेश वनरहित होनेके कारण अनावृत थे और वायुके वेगसे उड़-उड़कर फूलोंका कुछ-कुछ पराग उन पर्वत आदि उन्नत प्रदेशोंपर पड़ रहा था जिससे वह नगरी उस लजीली स्त्री की तरह मालूम होती

थी जिसका कि उत्तरीय वस्त्र ऊपरसे खिसककर नीचे आ गिरा हो, पीन स्तन खुल गये हों और जो वस्त्र द्वारा अपने खुले हुए स्तन आदि को ढँक रही हो ॥१४॥ चूँकि सूर्य अन्धकारको सर्वत्र रोका करता है अतः अन्धकार नीलमणिमय शिखरोंके बहाने उस नगरीके ऊँचे प्राकार पर चढ़कर क्रोधसे सूर्यकी किरणोंके प्रसारको ही मानो रोक रहा है ॥ १५ ॥ जिस नगरीमें रात्रिके समय ऊँचे-ऊँचे महलोंकी छतोंपर बैठी हुई स्त्रियोंके मुख देखकर पूर्णिमाके दिन राहु अपने ग्रसने योग्य चन्द्रमाके विषयमें क्षण भरके लिए भ्रान्त हो जाता है—धोखा खा जाता है ॥ १६ ॥ उस नगरीके लोगोंने कामदेवके प्रति अपनी दृष्टिसे अग्नि छोड़कर उसे शरीर रहित किया है [पक्षमें काम सेवनके लिए मलिनमार्गको छोडकर 'देहि' इस याचना शब्दको नष्ट किया है] और इस तरह वे महेश्वरपना [पक्षमें धनाढ्यपना] धारण करते हैं फिर भी विषादी-विषपान करने वाले [पक्षमे खेद युक्त] नहीं देखे जाते यह आश्चर्य है ॥१७॥ जिस नगरीमें दूर्वाके अंकुरके समान कोमल, ऊँचे-ऊँचे महलोंके अग्रभागमें लगे हुए हरे-हरे मणियोंकी प्रभामें मुँह डालते हुए सूर्यके घोड़े अपने सारथिको व्यर्थ ही खेद युक्त करते हैं ॥ १८ ॥ जब प्राणवल्लभ सँभले हुए केशोंके बीच धीरे-धीरे अपने हाथ चलाता है तब जिस प्रकार पीन स्तनोंसे सुशोभित स्त्री कामसे द्रवीभूत हो जाती है उसी प्रकार जब राजा—चन्द्रमा उस नगरीके सुन्दर झरोखोंके बीच धीरे-धीरे अपनी किरणें चलाता है तब ऊँचे-ऊँचे शिखरोंसे सुशोभित उस नगरीकी चन्द्रकान्तमणि निर्मित महलोंकी पंक्ति भी द्रवीभूत हो जाती है—उससे पानी झरने लगता है ॥ १९ ॥ पृथिवी जिन ग्रहरूपी गेंदोंको पूर्वाचल रूप हाथसे उछालकर अस्ताचल रूप दूसरे हाथसे झेल लिया करती है उन्हें बीचमें ही लेनेके लिए इस नगरीने जिन-मन्दिरोंके बहाने मानो बहुतसे हाथ उठा रक्खे हैं

॥ २० ॥ समुद्रके जितने सार रत्न थे वे सब इस नगरीने ले लिये हैं फिर भी वह तरङ्गरूपी भुजाओंको फैलाकर नृत्य कर रहा है और अपने आपको रत्नाकर कहता हुआ लज्जित नहीं होता इसीलिए वह मुझे जड़ स्वभाव-मूर्ख [पक्षमें जलस्वभाव] मालूम होता है ॥२१॥ एक विचित्र बात सुनो। वहाँ किसी स्त्रीके दांतोंकी कान्ति बहुत ही स्वच्छ है परन्तु ओंठकी लाल-लाल प्रभासे उसमे कुछ-कुछ लाली आ गई। चूँकि वह स्त्री अपने मुँहमे लाली रहने ही न देना चाहती है अतः स्फटिक मणिसे बने हुए मकानकी दीवालमे देख-देखकर दांतोंको बार-बार साफ करती है ॥ २२ ॥ जिस सुसीमा नगरीके नागरिक जन ठीक इन्द्रकी तरह जान पड़ते हैं क्योंकि जिस प्रकार इन्द्र निष्कपट भावसे बृहस्पतिका उपदेश धारण करता है, उसी प्रकार नागरिक जन भी निष्कपट भावसे अपने गुरुओंका उपदेश धारण करते हैं, जिस प्रकार इन्द्र श्रीदानवाराति-लक्ष्मी सहित उपेन्द्रसे सुशोभित है उसी प्रकार नागरिक जन भी श्रीदानवाराति-सम्पत्तिका दान करनेके लिए संकल्पार्थ लिए हुए जलसे सुशोभित हैं और जिस प्रकार इन्द्रके हाथमे वज्र नामक शस्त्र समुल्लसित है उसी प्रकार नागरिक जनोंके हाथोंमे भी वज्र-हीरेकी अंगूठियां समुल्लसित हैं ॥२३॥ जिस नगरीमें यह बड़ा आश्चर्य है कि वहाँकी वेश्याओंमें थोड़ा-सा भी स्नेह-तेल [पक्षमें अनुराग] नहीं है फिर भी वे कामदीपिका-काम सेवनके लिए प्रज्वलित दीपिकाएँ है [पक्षमे कामकी उत्तेजना करने वाली हैं] किन्तु इसमे जरा भी आश्चर्य नहीं है कि वे नकुल प्रसूत-नीच कुलमें उत्पन्न होकर [पक्षमे नेवलोंमें उत्पन्न होकर] भुजङ्ग-विटोंको [पक्षमे सर्पोंको] मोह उत्पन्न करती हैं ॥ २४ ॥ वह नगरी मानो सर्वश्रेष्ठ खजानेकी कलशी है इसीलिए तो विषसे [पक्षमें जलसे] भरी हुई सर्पिणी पातालको भेदन कर परिखाके बहाने इसे निरन्तर घेरे रहती है ॥२५॥

उस नगरीका शासक वह दशरथ राजा था जिसकी कि चरणोंकी चौकी नमस्कार करने वाले समस्त राजाओंके मुकुटोंकी मालाओंकी परागसे पीली-पीली हो रही थी ॥ २६ ॥ इस राजाने अपने क्रोधा-नलसे शत्रु स्त्रियोंके कपोलों पर सुशोभित हास्यरूपी फूलोंसे युक्त पत्र-लताओंको निश्चित ही जला दिया था यदि ऐसा न होता तो भस्मकी तरह उनकी त्वचामें सफेदी कैसे झलक उठती ॥ २७ ॥ जब अन्य राजा भयसे भागकर समुद्र और पर्वतोंमें जा छिपे [पक्षमे समुद्रका गोत्र स्वीकार कर चुके थे] अतः अगम्य भावको प्राप्त हो गये थे [कहीं भाईके भी साथ विवाह होता है ?] तब समुद्रराजकी पुत्री लक्ष्मीने उसी एक दशरथ राजाको अपना पति बनाया था ॥ २८ ॥ वैधव्यसे पीड़ित शत्रु–स्त्रियों द्वारा तोड़े हुए हारोंसे निकल–निकल कर जो मोतियोंके समूह समस्त दिशाओंमे फैल रहे थे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो इस राजाके यश रूप वृक्षके बीज ही हों ॥ २९ ॥ जिस प्रकार जब कोई बलवान् बैल छीनकर समस्त गोमण्डल–गायोंके समूहको अपने आधीन कर लेता है तब भैंसा निराश हो अपनी भैंसोंके साथ ही वनको चला जाता है उसी प्रकार जब इस धर्मात्मा राजाने शत्रुओंसे छीनकर समस्त गोमण्डल–पृथिवीमण्डलको अपने आधीन कर लिया तब शत्रु क्रोधसे लाल-लाल नेत्र करता हुआ अपनी रानियों के साथ वनको चला गया यह उचित ही था ॥ ३० ॥ जब विरूप नेत्रोंको धारण करने वाले महादेवजीने देखा कि लक्ष्मी कमलों जैसे सुन्दर नेत्रों वाले नारायणको छोड़कर कामके समान सुन्दर राजा दशरथके पास चली गई तब यदि पार्वती मुझे छोड़कर उसके पास चली जाय तो आश्चर्य ही क्या ? ऐसा विचार कर ही मानो उन्होंने बड़ी ईर्ष्याके साथ पार्वतीको अपने शरीरार्धमे ही बद्ध कर रक्खा था ॥३१॥ देखो न, इतना बड़ा विद्वान् राजा जरासे दोषोंके समूहसे

डर गया और वे दोष भी उसके पाससे भागकर अन्यत्र चले गये— इस प्रकार विस्तृत यशके छलसे दिशाएँ अब भी मानो इसके विरुद्ध हँस रही हैं ॥ ३२ ॥ इस राजाकी शत्रुस्त्रियोंके नेत्रोंसे कज्जल मिश्रित आँसुओंके बहाने जो भौंरोंकी पङ्क्ति निकलती थी वह मानो स्पष्ट कह रही थी कि इस राजाने उन शत्रुस्त्रियोंके रस-सागरमे लहराने वाले हृदय-कमलको निमीलित कर दिया है ॥ ३३ ॥ प्रहार करनेके लिए ऊपर उठी ही हुई तलवारमे उस राजाका प्रतिबिम्ब पड़ रहा था अतः वह ऐसा जान पड़ता था मानो युद्ध रूप सायंकालके समय विजय-लक्ष्मीके साथ अभिसार करनेके लिए उसने नील वस्त्र ही पहिन रक्खे हों ॥ ३४ ॥ निरन्तर वीर-रसके अभियोगसे खेदको प्राप्त हुई इस युवाकी चञ्चल दृष्टि भ्रुकुटिरूपी लताकी छायामें क्षण भरके लिए ठीक इस तरह विश्रामको प्राप्त हुई थी जिस प्रकार युवा पुरुषके द्वारा निरन्तरके उपभोगसे खेदित विलासिनी किसी छायादार शीतल स्थानमें विश्रामको प्राप्त होती है ॥ ३५ ॥ कस्तूरीके बहाने पृथ्वीने, कपूरके बहाने कीर्तिने और ओठोंकी लाल-लाल कान्तिके बहाने रतिने एक साथ उसका आलिङ्गन किया था-बड़ा सौभाग्यशाली था वह राजा ॥ ३६ ॥ कुमार्गमें स्थापित दण्डसे जिसे स्थिरता प्राप्त हुई है [पक्षमे पृथिवीपर टेकी हुई लाठीसे जिसे बल प्राप्त हुआ है] जो अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त है [पक्षमे-जो अतिशय बूढ़ा है] और मर्यादा की रक्षा करने वाला है [पक्षमें-एक स्थानपर स्थित रहने वाला है] ऐसा इसका क्षात्र धर्म ही इसकी राजलक्ष्मीकी रक्षा करनेके लिए कञ्चुकी हुआ था ॥ ३७ ॥ चूँकि यह राजा सबके लिए इच्छानुसार पदार्थ देता था अतः याचकोंके समूहसे खदेड़ी हुई चिन्ता केवल उस चिन्तामणिके पास पहुँची थी जिसके कि दानके मनोरथ याचक न मिलनेसे व्यर्थ हो रहे थे ॥३८॥ जिनके ललाटका मूलभाग सिन्दूरकी

मुद्रासे लाल-लाल हो रहा है ऐसे राजालोग आज्ञा शिरोधार्यकर दूर-दूरसे इसकी उपासनाके लिए इस प्रकार चले आते थे मानो इसका प्रताप उनके बाल पकड़ उन्हें खींच-खींचकर ही ले आ रहा हो ॥३९॥ इस प्रकार वह राजा विद्वानों और शत्रुओंको कान्तारसमाश्रित—स्त्रियोंके रसको प्राप्त [पक्षमें वनको प्राप्त] तथा हारावसक्त—मणियों-की मालासे युक्त [पक्षमें हा हा कारसे युक्त] करके लीलामें लालसा रखने वाली चपल लोचनाओंके साथ चिरकाल तक क्रीड़ा करता रहा ॥ ४० ॥

तदनन्तर उसने एक दिन पूर्णिमाकी रात्रिको जब कि आकाश मेघ रहित होनेसे बिलकुल साफ था, पतिहीन स्त्रियोंको कष्ट पहुँचानेके पापसे ही मानो राहुके द्वारा ग्रसे जाने वाले चन्द्रमाको देखा ॥४१॥ उसे देखकर राजाके मनमें निम्न प्रकार बितर्क हुए–क्या यह मदिरासे भरा हुआ रात्रिका स्फटिक मणि निर्मित कटोरा है ? या चञ्चल भौंरोंके समूहसे चुम्बित आकाशगङ्गाका खिला हुआ सफ़ेद कमल है ? या ऐरावत हाथीके हाथसे किसी तरह छूटकर गिरा हुआ पङ्क-युक्त मृणालका कन्द है ? या नील मणिमय दर्पणकी आभासे युक्त आकाशमें मूँछ सहित मेरा मुख ही प्रतिबिम्बित हो रहा है ? इस प्रकार क्षणभर बिचार कर उदारहृदय राजाने निश्चय कर लिया कि यह चन्द्रग्रहण है और निश्चयके बाद ही नेत्र बन्दकर मनका खेद प्रकट करता हुआ राजा इस प्रकार चिन्ता करने लगा ॥ ४२–४३–४४ ॥ हाय ! हाय ! अचिन्त्य तेजसे युक्त इस चन्द्रमाके ऊपर यह क्या बड़ा भारी कष्ट आ पड़ा ? अथवा क्या कोई किसी तरह नियतिके नियोगका उल्लंघन कर सकता है ? ॥४५॥ नेत्रानलसे जले हुए अपने बन्धु कामदेवको अमृतनिष्यन्दसे जीवित कर यह चन्द्रमा उस वैरका बदला लेनेके लिए ही मानो क्रोधसे महादेवजीके मस्तक पर अपना

पद्-पैर [स्थान] जमाये हुए हैं ॥ ४६ ॥ यदि यह चन्द्रमा अपनी सुन्दर किरणोंके समूह द्वारा प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त नहीं कराता तो यह समुद्र बड़वानलके जीवित रहते चिरकाल तक अपने जीवन-[जिन्दगी पक्षमें जलसे] युक्त कैसे रहता ? वह तो कभीका सूख जाता ? ॥ ४७ ॥ मैंने अमृतकी खान होकर भी केवल देवोंको ही अजरा-मरता प्राप्त कराई संसारके अन्य प्राणियोंको नहीं अपनी इस अनु-दारतासे लज्जित होता हुआ ही मानो यह चन्द्रमा पूर्ण होकर भी बार-बार अपनी कृशता प्रकट करता रहता है ॥ ४८ ॥ अनिवार्य तेजको धारण करने वाला यह चन्द्रमा सघन अन्धकार रूप चोरोंकी सेनाको हटाकर रतिक्रियामे फाँसीकी तरह बाधा पहुँचानेवाले स्त्रियोंके मानको अपनी किरणोंके अग्रभागसे [पक्षमे हाथके अग्रभागसे] नष्ट करता है ॥ ४९ ॥ जिसके गुण समस्त संसारमे आभूषणकी तरह फैल रहे हैं ऐसा यह चन्द्रमा भी [पक्षमें राजा भी] जब इस आपत्तिको प्राप्त हुआ है तब दूसरा सुखका पात्र कौन हो सकता है ? ॥ ५० ॥ जिस प्रकार अपार समुद्रके बीच चलनेवाले जहाजसे बिछुड़े हुए पक्षियोंको कोई भी शरण नहीं है उसी प्रकार विपत्तियोंके आने पर इस जीवको कोई शरण नहीं है ॥ ५१ ॥ यह लक्ष्मी चिरकाल तक पानीमें रही [पक्षमें क्रोधसे दूर रही] फिर भी कभी मैंने इसका हृदय आर्द्र-गीला [पक्षमें दयासम्पन्न] नहीं देखा अतः विद्वान् मनुष्यमें भी यदि इसका स्नेह स्थिर नहीं रहता तो उचित ही है ॥५२॥ निजका थोड़ासा प्रयोजन होने पर भी मैंने परिवारके निमित्त जो यह लक्ष्मी बढ़ा रखी है सो क्या मैंने अपने आपको गुड़से लपेटकर मकोड़ोंके लिए नहीं सौंप दिया है ? ॥ ५३ ॥ साँपके शरीरकी तरह प्रारम्भमे ही मनोहर दिखने वाले इन भोगोंमें अब मै किसी प्रकार विश्वास नहीं करता क्योंकि मृगतृष्णाको पानी समझ

प्यासा मृग ही प्रतारित होता है, बुद्धिमान् मनुष्य नहीं ॥ ५४ ॥ वह ईर्ष्यालु जरा कहींसे आकर अन्य स्त्रियोंके साथ समागमकी लालसा रखने वाले हमलोगोंके बाल खींच कुछ ही समय बाद पैरकी ऐसी ठोकर देगी कि जिससे सब दाँत झड़ जावेंगे ॥ ५५ ॥ अरे तुम्हारा! शरीर तो बड़े-बड़े बलवानोंसे [पक्षमें बुढ़ापाके कारण पड़ी हुई त्वचाकी सिकुड़नोंसे] घिरा हुआ था फिर वह अनङ्ग क्यों नष्ट हो गया—कैसे भाग गया ?—इस प्रकार यह जरा वृद्ध मानवके कानोंके पास जाकर उठती हुई सफेदीके बहाने मानो उसकी हँसी ही करती है ॥५६॥ भले ही यह मनुष्य शृङ्गारादि रसोंसे परिपूर्ण हो [पक्षमें जलसे भरा हो] पर जिसके बालोंका समूह खिले हुए काशके फूलोंकी तरह सफेद हो चुका है उसे यह युवत स्त्रियाँ हड्डियोंसे भरे हुए चाण्डालके कुएँके पानीकी तरह दूरसे ही छोड़ देती हैं ॥ ५७ ॥ मनुष्यके शरीरमें कुटिल केशरूप लहरोंसे युक्त जो यह सौन्दर्यरूपी सरोवर लबालब भरा होता है उसे बुढ़ापा त्वचाकी सिकुड़नोंके बहाने मानो नहरें खोलकर ही बहा देता है ॥ ५८ ॥ जो बिना पहिने ही शरीरको अलंकृत करने वाला आभूषण था वह मेरा यौवन रूपी रत्न कहा गिर गया ? मानो उसे खोजनके लिए ही वृद्ध मनुष्य अपना पूर्व भाग झुकाकर नीचे-नीचे देखता हुआ पृथिवी पर इधर-उधर चलता है ॥ ५९ ॥इ स प्रकार जरारूपी चंट दूतीको आगे भेज कर आपदाओंके समूह रूप पैनी पैनी डाढोंको धारण करनेवाला यमराज जबतक हठात् मुझे नहीं ग्रस लेता है तबतक मैं परमार्थकी सिद्धिके लिए प्रयत्न करता हूँ ॥ ६० ॥ ऐसा विचार कर वैराग्यवान् राजाने अपने कर्तव्यका निश्चय किया और प्रातःकाल होते ही तपके लिए जानेकी इच्छासे मन्त्री तथा बन्धुजनोंसे पूछा सो ठीक है वह कौन वस्तु है जो विवेकी जनोंको मोह उत्पन्न कर सके ? ॥ ६१ ॥

राजाका एक सुमन्त्र मन्त्री था, जब उसने देखा कि राजा परलोक की सिद्धिके लिए राज्यलक्ष्मीका तृणके समान त्याग कर रहे हैं तब वह विचित्र तत्त्वसे आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले वचन कहने लगा ॥६२॥ हे देव ! आपके द्वारा प्रारम्भ किया हुआ यह कार्य आकाशपुष्पके आभूषणोंके समान निर्मूल जान पड़ता है । क्योंकि जब जीव नामका कोई पदार्थ ही नहीं है तब उसके परलोककी वार्ता कहाँ हो सकती है ॥ ६३ ॥ इस शरीरके सिवाय कोई भी आत्मा भिन्न अवयवोंमें न तो जन्मके पहले प्रवेश करता ही दिखाई देता है और न मरनेके बाद निकलता ही ॥ ६४ ॥ किन्तु जिस प्रकार गुड, अन्नचूर्ण, पानी और आँवलोंके संयोगसे एक उन्माद पैदा करनेवाली शक्ति उत्पन्न हो जाती है उसी प्रकार पृथिवी, अग्नि, जल और वायुके संयोगसे कोई इस शरीर रूपी यन्त्रका संचालक उत्पन्न हो जाता है ॥ ६५ ॥ इसलिए राजन् ! प्रत्यक्ष छोड कर परोक्षके लिए व्यर्थ ही प्रयत्न न करो। भला, ऐसा कौन बुद्धिमान् होगा जो गायके स्तनको छोड़ सींगोंसे दूध दुहेगा ? ॥ ६६ ॥

मन्त्रीके वचन सुन जिस प्रकार सूर्य अन्धकारको नष्ट करता है उसी प्रकार उसके वचनोंको खण्डिन करता हुआ राजा बोला—अये सुमन्त्र ! इस निःसार अर्थका प्रतिपादन करते हुए तुमने अपना नाम भी मानो निरर्थक कर दिया ॥ ६७ ॥ हे मन्त्रिन् ! यह जीव अपने शरीरमें सुखादिकी तरह स्वसंवेदनसे जाना जाता है क्योंकि उसके स्वसंविदित होनेमें कोई भी बाधक कारण नहीं है और चूँकि बुद्धि-पूर्वक व्यापार देखा जाता है अतः जिस प्रकार अपने शरीरमें जीव है उसी प्रकार दूसरेके शरीरमें भी वह अनुमानसे जाना जाता है ॥ ६८ ॥ तत्कालका उत्पन्न हुआ बालक जो माताका स्तन पीता है उसे पूर्वभवका संस्कार छोड़कर अन्य कोई भी सिखाने वाला नहीं है

इसलिए यह जीव नया ही उत्पन्न होता है—ऐसा आत्मज्ञ मनुष्य को नहीं कहना चाहिये ॥ ६९ ॥ चूँकि यह आत्मा अमूर्तिक है और एक ज्ञानके द्वारा ही जाना जा सकता है अतः इसे मूर्तिक दृष्टि नहीं जान पाती। अरे! अन्यकी बात जाने दो, बड़े-बड़े निपुण मनुष्योंके द्वारा भी लाई हुई पैनी तलवार क्या कभी आकाशका भेदन कर सकती है ? ॥ ७० ॥ भूतचतुष्टयके संयोगसे जीव उत्पन्न होता है—यह जो तुमने कहा है उसका वायुसे प्रज्वलित अग्निके द्वारा संतापित जलसे युक्त बटलोईमें खरा व्यभिचार है क्योंकि भूतचतुष्टय के रहते हुए भी उसमें चेतन उत्पन्न नहीं होता॥ ७१ ॥ और गुड़ आदिके सम्बन्धसे होने वाली जिस अचेतन उन्मादिनी शक्तिका तुमने उदाहरण दिया है वह चेतनके विषयमें उदाहरण कैसे हो सकती है ? तुम्हीं कहो ॥ ७२ ॥ इस प्रकार यह जीव अमूर्तिक निर्बाध, कर्ता, भोक्ता, चेतन, कथञ्चित् एक और कथचित् अनेक है तथा विपरीत स्वरूप वाले शरीरसे पृथक् ही है ॥ ७३ ॥ जिस प्रकार अग्निकी शिखाओंका समूह स्वभावसे ऊपरको जाता है परन्तु प्रचण्ड पवन उसे हठात् इधर-उधर ले जाता है इसी प्रकार यह जीव स्वभावसे ऊर्ध्वगति है—ऊपरको जाता है परन्तु पुरातन कर्म इसे हठात् अनेक गतियोंमें ले जाता है ॥७४॥ इसलिए मैं आत्माके इस कर्म कलङ्कको तपश्चरणके द्वारा शीघ्र ही नष्ट करूँगा क्योंकि अमूल्य मणिपर किसी कारण वश लगे हुए पङ्कको जलसे कौन नहीं धो डालता ? ॥ ७५ ॥ इस प्रकार महाराज दशरथने सुमन्त्र मन्त्रीके प्रश्नका निर्बाध उत्तर देकर अतिरथ नामक पुत्रके लिए राज्य दे दिया सो ठीक ही है क्योंकि परमार्थको प्राप्त करनेकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यकी निस्पृह दृष्टि पृथिवीको तृण भी नहीं समझती ॥ ७६ ॥

तदनन्तर जिस प्रकार अस्तोन्मुख सूर्य चकवियोंको रुलाता है

उसी प्रकार रोते हुए पुत्रसे पूछ कर वनकी ओर जाते हुए राजाने अपनी प्रजाको सबसे पहले रुलाया था ॥ ७७ ॥ वह राजा यद्यपि अवरोध—अन्तःपुरको छोड़ चुके थे फिर भी अवरोधसे सहित थे (अवरोध—इन्द्रियदमन अथवा संवरसे सहित थे) और यद्यपि नक्षत्रों—ताराओंने उनका संनिधान छोड़ दिया था फिर भी राजा-चन्द्रमा थे [अनेक क्षत्रिय राजाओंसे युक्त थे] और यद्यपि नगर निवासी लोगोंके हृदयमें स्थित थे तो भी वनमें जा पहुँचे थे । [नगर निवासी लोग अपने मनमें उनका चिन्तन करते थे] सो ठीक ही है क्योंकि राजाओंकी ठीक-ठीक स्थितिको कौन जानता ? ॥७८॥ उन जितेन्द्रिय राजाने सर्वप्रथम श्री विमलवाहन गुरुको नमस्कार किया और फिर उन्हींके पाससे राजाओंके साथ-साथ भयंकर कर्मोंके क्षयकी शिक्षा देने वाली जिन-दीक्षा धारण की ॥७९॥ वह मुनि समुद्रान्त पृथिवीको धारण कर रहे थे [पक्षमें पृथिवी जैसी निश्चल मुद्राको धारण कर रहे थे], युद्धमें स्थित शत्रुओंको नष्ट कर रहे थे [पक्षमें—शरीर स्थित काम क्रोधादि शत्रुओंको नष्ट कर रहे थे], मोतियोंके उत्तम अलंकार धारण किये हुए थे [पक्षमें उत्तम अलंकारोंको छोड़ चुके थे] और प्रजाकी रक्षा कर रहे थे [पक्षमें प्रकृष्ट जाप कर रहे थे] इस प्रकार वनमें भी मानो साम्राज्य धारण किये हुए थे ॥८०॥ उन मुनिराजका विशाल शरीर ध्यानके सम्बन्धसे बिलकुल निश्चल था, शत्रु और मित्रमें उनकी समान वृत्ति थी तथा शरीरमें सर्प लिपट रहे थे अतः वनके एक देशमें स्थित चन्दन वृक्षकी तरह सुशोभित हो रहे थे ॥ ८१ ॥ सूर्य की तपमे अल्प इच्छा है [माघ मासमें कान्ति मन्द पड़ जाती है] परन्तु मुनिराजकी तपमे अधिक इच्छा थी, चन्द्रमा सदोष है [रात्रि सहित है] परन्तु मुनिराज निर्दोष थे और अग्नि मलिनमार्गसे युक्त है [कृष्णवर्त्मा अग्निका नामान्तर है] परन्तु मुनिराज उज्ज्वलमार्गसे

युक्त थे अतः अन्धकारको नष्ट करनेवाले उन गुणसागर मुनिराजकी समानता कोई भी नहीं कर सका था ॥८२॥ तदनन्तर वे धन्य मुनिराज मोक्ष-महलकी पहली नींवके समान बारह प्रकारके कठिन तप तपकर समाधिपूर्वक शरीर छोड़ते हुए सर्वार्थसिद्धि विमानमें जा पहुँचे ॥ ८३ ॥

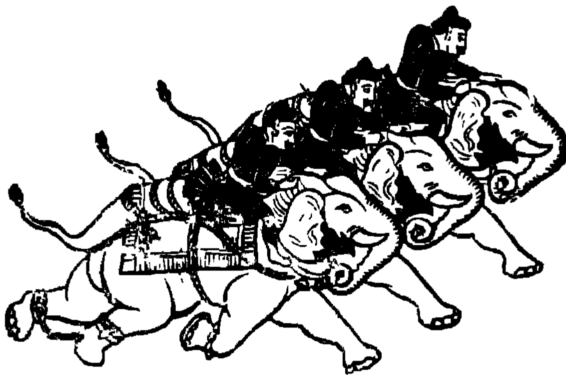
वहाँ वे अपने पुण्यके प्रभावसे तैंतीस सागरकी आयु वाले वह अहमिन्द्र हुए जो कि मोक्षके पहले प्राप्त होनेवाले सर्वोत्कृष्ट सुखोंके मानो मूर्तिक समूह ही हों ॥ ८४ ॥ चूंकि वहाँ सिद्ध परमेष्ठी रूप आभरणोंसे मनोहर मुक्तिरूपी लक्ष्मी निकटस्थ थी इसी लिए मानो उस अहमिन्द्रका मन अन्य स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा करनेमें निस्पृह था ॥८५॥ देदीप्यमान रत्नोंसे खचित उस अहमिन्द्रका सुवर्णमय मुकुट ऐसा जान पड़ता था मानो शरीरमें प्रकाशमान स्वाभाविक तेजके समूहकी लम्बी शिखा ही हो ॥८६॥ अत्यन्त सुन्दर अहमिन्द्रके तीन रेखाओंसे सुशोभित कण्ठमें पड़ी हुई मनोहर हारोंकी माला ऐसी जान पड़ती थी मानो अनुरागसे भरी हुई मुक्तिलक्ष्मीके द्वारा छोड़ी हुई कटाक्षोंकी छटा ही हो ॥ ८७ ॥ उस अहमिन्द्रका तेज हजारों सूर्योंसे अधिक था पर सन्ताप करने वाला नहीं था, और शृङ्गारका साम्राज्य अनुपम था पर मनको विकृत करनेवाला नहीं था ॥ ८८ ॥ उसकी नूतन अवस्था थी, नयनहारी रूप था, विशाल आयु थी, अद्वितीय पद था और सम्यक्त्वसे शुद्ध गुण थे। वस्तुतः उसकी कौन-सी वस्तु तीनों लोकोंमें लोकोत्तर नहीं थी ॥८९॥ जो मूर्ख उस अहमिन्द्रके चन्द्रमाके समान उज्ज्वल समस्त गुणोंको कहना चाहता है वह प्रलय कालके समय पृथिवीको डुबाने वाले समुद्रको मानो अपनी भुजाओंसे तैरना चाहता है ॥ ९० ॥

जिस प्रकार स्वाति नक्षत्रके जलकी बूंद मुक्तारूप होकर सीपके

गर्भमे अवतीर्ण होती है उसी प्रकार यह अहमिन्द्र आजसे छह माह बाद आपकी इस प्रियाके गर्भमें प्रायः मुक्त रूप होता हुआ अवतीर्ण होगा ॥ ९१ ॥ इस प्रकार मुनिराजके द्वारा अच्छी तरह कहे हुए श्री तीर्थंकर भगवान्के पूर्वभवका वृत्तान्त सुनकर राजा महासेन अपने मित्रों सहित रोमाञ्चित हो उठा जिससे ऐसा जान पड़ने लगा मानो खिले हुए कदम्बके फूलोंका समूह ही हो ॥ ९२ ॥ अनन्तर राजाने अपनी रानीके साथ प्रशसनीय विद्याके आधारभूत उन मुनिराजकी योग्य सामग्री द्वारा पूजा की, विधि पूर्वक नमस्कार किया और फिर यथा समय आनेवाले देवों तथा विद्वानोंका सम्मान करनेके लिए वह अतिथि-सत्कारका जानने वाला राजा शीघ्र ही अपने घर वापिस चला गया ॥ ९३ ॥

इस प्रकार महाकवि हरिचन्द्र द्वारा विरचित धर्मशर्माभ्युदय

महाकाव्यमें चतुर्थ सर्ग समाप्त हुआ



पञ्चम सर्ग

राजा महासेन हर्षसे उत्सव करानेके लिए सभामें बैठे ही थे कि उनकी दृष्टि आकाश-तटसे उतरती हुई देवियों पर जा पड़ी ॥ १ ॥ तारकाएँ दिनमें कहाँ चमकतीं ? बिजलियाँ भी मेघरहित आकाशमें नहीं होतीं और अग्निकी ज्वालाएँ भी तो इन्धन रहित स्थानमें नहीं रहतीं फिर यह तेज क्या है—इस प्रकार वे देवियाँ आश्चर्य उत्पन्न कर रही थीं ॥ २ ॥ वे देवियाँ ऊपरसे नीचेकी ओर आ रही थीं, उनका नीचेसे लेकर कन्धे तकका भाग मेघोंसे छिप गया था मेघोंके ऊपर उनके केवल मुख ही प्रकाशमान हो रहे थे जिससे ऐसी जान पड़ती थीं मानो सूर्यको जीतनेकी इच्छासे एकत्रित हुई चन्द्रमाकी सेना ही हो ॥३॥ उन देवियोंके रत्नाभरणोंकी कान्ति सब ओर फैल रही थी जिससे खासा इन्द्रधनुष बन रहा था, उस इन्द्रधनुषके बीच बिजलीके समान कान्तिवाली वे देवियाँ मनुष्योंको सुवर्णमय बाणोंके समूहके समान जान पड़ती थीं ॥४॥ पहले तो वे देवियाँ आकाशकी दीवाल पर कान्तिरूप परदासे ढके हुए अनेक रत्नोंकी शोभा प्रकट कर रही थीं फिर कुछ-कुछ आकारके दिखनेसे तूलिका द्वारा लिखे हुए चित्रका भ्रम करने लगी थीं ॥ ५ ॥ उनके मुखोंके पास सुगन्धिके कारण जो भौंरे मँडरा रहे थे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो मुखोंको चन्द्रमा समझ ग्रसनेके लिए राहुओंका समूह ही आ पहुँचा हो ॥ ६ ॥ उन देवियोंके चरणोंमें पद्मराग मणियोंके नूपुर थे जिनके छलसे ऐसा मालूम होता था मानो सूर्यने अपने प्रभावसे अनेक रूप धारण कर 'आप लोग क्षण भर यहाँ ठहरिये' यह कहते हुए कामवश उनके चरण

ही पकड़ रखे हों ॥ ७ ॥ उनके निर्मल कण्ठोंमें बड़े-बड़े हार लटक रहे थे जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो बहुत समय बाद मिलनेके कारण आकाशगङ्गा ही बड़े गौरवसे उनका आलिङ्गन कर रही हो ॥ ८ ॥ उन देवियोंकी कमर इतनी पतली थी कि दृष्टिगत नहीं होती थी। केवल स्थूल स्तन-मण्डलके सद्भावसे उसका अनुमान होता था। साथ ही उनके नितम्ब भी अत्यन्त स्थूल थे इस प्रकार अपनी अनुपम रूप-सम्पत्तिके द्वारा वे समस्त संसारको तुच्छ कर रही थीं ॥ ९ ॥ पारिजात पुष्पोंके कर्णाभरणके स्पर्शसे ही मानो जिनके आगे मन्द-मन्द वायु चल रही है ऐसी वे देवियाँ राजाके देखते-देखते आकाशसे सभाके समीप आ उतरीं ॥ १० ॥

वहाँ सामने ही लाल कमलके समान कोमल मणियोंके खम्भोंसे सुशोभित चन्द्रकान्त-मणियोंका बना सभामण्डल उन देवियोंने ऐसा देखा मानो प्रतापसे रुका हुआ और आश्चर्यकारी अभ्युदयसे सम्पन्न राजाका निर्मल यश ही हो ॥ ११ ॥ उस सभामण्डपमें सुमेरु पर्वतके समान ऊँचे सुवर्णमय सिंहासन पर बैठे और उदित होते हुए चन्द्रमाके समान सुन्दर राजाको उन देवियोंने बड़े हर्षके साथ देखा। उस समय राजा प्रत्येक क्षण बढ़ते हुए अपने यशरूपी राजहंस पक्षियोंके समूहके समान दिखनेवाले स्त्रियोंके हस्त-संचारसे उच्छलित सफ़ेद चमरोंके समूहसे सुशोभित हो रहा था। पास बैठे हुए दक्षिण देशके बड़े-बड़े कवि हृदयमें चमत्कार पैदा करनेवाली उक्तियाँ सुना रहे थे, उन्हें सुनकर राजा अपना शिर हिला रहा था जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो उन उक्तियोंके रसको भीतर ले जानेके लिए ही हिला रहा हो। उस समय वहाँ जो गीति हो रही थी वह किसी चन्द्रमुखीके समान जान पड़ती थी क्योंकि जिस प्रकार चन्द्रमुखीका स्वर [आवाज] अच्छा होता है उसी प्रकार उस गीतिका स्वर [निषाद गान्धर्व आदि]

भी अच्छा था, जिस प्रकार चन्द्रमुखीका रूप अच्छा होता है उसी प्रकार उस गीतिका रूपक भी [अलंकार विशेष] अच्छा था, जिस प्रकार चन्द्रमुखी राग सहित होती है उसी प्रकार वह गीति भी राग [ध्वनि-विशेष] से सहित थी, जिस प्रकार चन्द्रमुखी पृथक्-पृथक् मूर्च्छना-मोह धारण करती है उसी प्रकार गीति भी पृथक्-पृथक् मूर्च्छना-स्वरोंके चढ़ाव-उतारको धारण कर रही थी और चन्द्रमुखी जिस प्रकार उज्ज्वल होती है उसी प्रकार गीति भी उज्ज्वल थी-निर्दोष थी। राजा अर्धोन्मीलित नेत्र होकर उस गीतिका रसानुभव कर रहा था। राजाकी दोनो बगलोंमें काली-काली कस्तूरी लगी हुई थी और कानोंमें मणिमय कुण्डल देदीप्यमान थे जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो कस्तूरीके छलसे छिपे हुए भयभीत अन्धकारको नष्ट करनेके लिए कुण्डलोंके बहाने सूर्य और चन्द्रमा ही उसके कानोंके पास आये हों। अङ्ग, वङ्ग, मगध, आन्ध्र, नैषध, कीर, केरल, कलिङ्ग और कुन्तल देशके राजा पास बैठकर उसकी उपासना कर रहे थे। क्रोधकी बात जाने दो यदि वह राजा विलाससे भी अपनी भौंह ऊपर उठाता था तो अन्य राजा डर जाते थे ॥ १२-१७ ॥ हमारे कार्यकी चतुराई देखनेके लिए क्या स्वामी—इन्द्र महाराज ही पहलेसे आकर विराजमान हैं ? अथवा आजसे लेकर सज्जनोंकी दरिद्रताको दूर भगानेके लिए कुबेर ही आकर उपस्थित हैं, अथवा हम लोगोंको अकेला सुनकर तंग करनेके लिए राजाके बहाने साक्षात् कामदेव ही यहाँ आ पहुँचे हैं। अन्यथा इनकी लोकोत्तर कान्ति इस पृथिवीको मस्त क्यों करती—इस प्रकार तर्कणा करती हुई वे देवियाँ बड़े आनन्दके साथ राजा महासेनके समीप पहुँचीं और 'चिरञ्जीव रहो, समृद्धिमान रहो तथा सर्वदा शत्रुओंको जीतो' इत्यादि वचन जोर-जोरसे कहने लगीं ॥ १८-२० ॥

राजाने उन देवियोंको यत्नमें तत्पर किंकरोंके द्वारा लाये हुए आसनों पर इस प्रकार बैठाया जिस प्रकार कि शरद् ऋतुके द्वारा खिले हुए कमलों पर सूर्य अपनी किरणोंको बैठाता है ॥ २१ ॥ राजाके देखते ही उन देवियोंके शरीरमें रोमराजि अङ्कुरित हो उठी थी जिससे वे देवियाँ ऐसी जान पडती थीं मानो शरीरमे धँसे हुए कामदेवके बाणोंकी बाहर निकली हुई मूठोंसे ही चिह्नित हो रही हैं ॥ २२ ॥ जिस प्रकार निर्मल आकाशमें चमकती और श्रवण तथा हस्त नक्षत्र-रूप आभूषणोंसे युक्त तारकाएँ चन्द्रमाको सुशोभित करती हैं उसी प्रकार निर्मल वस्त्रोंसे सुशोभित एवं हाथ और कानोंके आभूषणोंसे युक्त देवाङ्गनाएँ कान्तिमान राजाको सुशोभित कर रही थीं ॥ २३ ॥

तदनन्तर दाँतोंकी किरण रूप कुन्द-कुड्मलोंकी मालासे सभाको विभूषित करते हुए राजाने अतिथिसत्कारसे जिनका खेद दूर कर दिया गया है ऐसी उन देवियोसे निम्न प्रकार वचन कहे ॥ २४ ॥

जब कि स्वर्ग अपने श्रेष्ठ गुणसे तीनों लोकोंमें गुरुतर गणनाको धारण करता है तब आप लोग क्या प्रयोजन लेकर भूमिगोचरी मनुष्योंके घर पधारेंगी ? किन्तु वह एक रीति ही है अथवा धृष्टता ही अथवा अधिक वार्तालाप करनेका एक बहाना ही है जो कि आप जैसे निरपेक्ष व्यक्तियोंके पधारने पर भी पूछा जाता है कि आपके पधारनेका क्या प्रयोजन है ? ॥ २५–२६ ॥

राजाके उक्त वचन सुन देवियों द्वारा प्रेरित श्री देवी दाँतोंकी किरण रूप मृणालकी नलीसे कानोंमें अमृत उँडेलती हुई-सी बोली ॥ २७ ॥ हे राजन् ! आप ऐसा न कहिये। आपकी सेवा करना ही हम लोगोंके पृथिवी पर आनेका प्रयोजन है अथवा हम तो हैं ही क्या ? कुछ दिनों बाद साक्षात् इन्द्र महाराज भी साधारण किंकरकी तरह यह कार्य करेंगे ॥ २८ ॥ अतीतकी बात जाने दीजिये, अब भी देव-दानवों

और मनुष्योंके बीच ऐसा कौन है ? जो आपके गुणोंकी समानता प्राप्त कर सके ? फिर आगे चलकर तो आप लोकत्रयके गुरुके गुरु [पिता] होने वाले हैं ॥ २९ ॥ हे राजन् ! मैंने अपने आनेका सूत्रकी तरह संक्षेपसे जो कुछ कारण कहा है उसे अब मैं भाष्यकी तरह विस्तारसे कहती हूँ, सुनिये ॥३०॥ श्री अनन्तनाथका तीर्थ प्रवृत्त होनेके बाद जो छह माह कम चार सागर व्यतीत हुए हैं उनके पल्यका अन्तिम भाग इस भारतवर्षमे अधर्मसे दूषित हो गया था ॥ ३१ ॥ जबसे उस अधर्मरूपी चोरने छल पूर्वक शुद्ध सम्यग्दर्शन रूपी रत्न चुरा लिया है तभीसे इन्द्र भी जिनेन्द्रदेवकी ओर देख रहा है—उनकी प्रतीक्षा कर रहा है और इसी लिए मानो वह तभीसे अनिमेषलोचन हो गया है ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! अब आपकी जो सुव्रता नामकी पत्नी है छह माह बाद उसके गर्भमें श्री धर्मजिनेन्द्र अवतार लेंगे—ऐसा इन्द्रने अवधिज्ञानसे जाना है ॥ ३३ ॥ और जानते ही समस्त देवोंके अधिपति इन्द्र महाराजने हम लगोंको बुलाकर यह आदेश दिया है कि तुम लोग जाओ और श्री जिनेन्द्रकी भावी माताकी आदर पूर्वक चिर काल तक सेवा करो ॥ ३४ ॥ इसलिए हे राजन् ! जिस प्रकार कुमुदिनियोंका समूह चन्द्रिकाका ध्यान करता है उसी प्रकार आया हुआ यह देवियोंका समूह आपकी आज्ञासे अन्तःपुरमें विराजमान आपकी प्रियवल्लभाका ध्यान करना चाहता है ॥ ३५ ॥ इस प्रकार राजाने जब मुनिराजके वचनोंसे मिलते-जुलते श्री देवीके वचन सुने तब उनका आदर पहलेसे दूना हो गया और उन्होंने नगर तथा घर दोनों ही जगह शीघ्र ही उत्सव कराये ॥ ३६ ॥

तदनन्तर जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणोंको चन्द्र-मण्डलमें भेज देता है उसी प्रकार राजाने उन प्रसन्नचित्त देवियोंको कञ्चुकीके साथ शीघ्र ही अन्तःपुरमें भेज दिया ॥ ३७ ॥ वहाँ उन देवियोंने सोनेके

सुन्दर सिंहासनपर बैठी हुई रानी सुव्रताको देखा। वह सुव्रता विद्वानों-के कर्णाभरणकी प्रीतिको पूरा करने वाले गुणोंके समूहसे पूरित थी। शरीरकी सुगन्धिके कारण उसके आस-पास भौंरे मँडरा रहे थे जिससे ऐसी जान पड़ती थी मानों कल्पवृक्षकी मञ्जरी ही हो। क्या ही आश्चर्य था कि वह यद्यपि संभ्रमपूर्वक घुमाये हुए चञ्चल लोचनोंके छोरसे निकली हुई सफ़ेद किरणोंके समूहसे समस्त मकानको सफ़ेद कर रही थी पर पास ही बैठी हुई सपत्नी स्त्रियोंको मलिन कर रही थी। वह ऐसी जान पड़ती थी मानो सौन्दर्य-सम्पदाकी इष्टसिद्धि ही हो, तारुण्यलक्ष्मीकी मानो जान ही हो, कान्तिकी मानो साम्राज्य-पदवी ही हो और विलास तथा वेषकी मानो चेतना ही हो। इसके सिवाय अनेक राजाओंकी रानियोंके समूह उसके चरणोंकी वन्दना कर रहे थे। ॥ ३८-४१ ॥ उन देवियोंने चिरकालसे जो सुन्दरताका अहंकार संचित कर रखा था उसे देवाङ्गनाओंके शरीरकी कान्तिको जीतने वाली राजाकी रानीको देखते ही एक साथ छोड़ दिया ॥ ४२ ॥

इसकी श्री-शोभा [पक्षमें श्री देवी] सब प्रकारका सुख देनेवाली है, भारती-वाणी [पक्षमें सरस्वती देवी] प्रिय वचन बोलनेवाली है, रति-प्रीति [पक्षमें रति देवी] अभेद्य दासीकी तरह सदा साथ रहती है, सौम्यदृष्टि, कर्णमोटिका-कानोंतक मुडी हुई है [पक्षमें चामुण्डा देवी इसपर सदा सौम्य दृष्टि रखती है], सुसज्जित केशोंकी आवलि, कालिका-कृष्णवर्ण है [पक्षमें कालिकादेवी इसके केश सुसज्जित करती है], शीलवृत्ति, अपराजित, अखण्डित है [पक्षमें अपराजिता देवी सदा इसके स्वभावानुकूल प्रवृत्ति करती है] मनःस्थिति, वृषप्रणयिनी-धर्मके प्रेमसे ओत-प्रोत है [पक्षमें इन्द्राणी देवी सदा इसके मनमें है], ह्री-लज्जा, प्रसत्ति-प्रसन्नता, धृति-धीरज, कीर्ति-यश और कान्ति-दीप्ति [पक्षमें ह्री आदि देवियाँ] एक दूसरेकी स्पर्धासे ही मानो इसके

कुलको अलंकृत करनेमें उद्यत हैं। इस प्रकार श्री आदि देवियाँ गुणों-से वशीभूत होकर पहलेसे ही इसकी सेवा कर रही हैं, फिर कहो इस समय इन्द्रकी आज्ञानुसार हम क्या कार्य करें ?—इस प्रकार परस्पर कहकर उन देवियोंने पहले तो त्रिलोकीनाथकी माताको प्रणाम किया, अपना परिचय दिया, इन्द्रका आदेश प्रकट किया और फिर निम्न प्रकार सेवा करना प्रारम्भ किया ॥ ४३–४६ ॥

किसी देवीने चन्द्रकान्त मणिके दण्डसे युक्त नील मणियोंका बना छत्र उस सुलोचना रानीके ऊपर लगाया जो ऐसा जान पड़ता था मानो जिसके बीच आकाशगंगाका पूर उतर रहा हो ऐसा आकाशका मण्डल ही हो ॥ ४७ ॥ किसी देवीने रानीके मस्तक पर फूलोंसे सुशोभित चूड़ाबन्धन किया था जो ऐसा जान पड़ता था मानो त्रिभुवन विजयकी तैयारी करने वाले कामदेवका तूणीर ही हो ॥ ४८ ॥ जिस प्रकार संध्याकी शोभा आकाशमें लालिमा उत्पन्न करती है उसी प्रकार किसी देवीने रानीके शरीरमें अंगराग लगाकर लालिमा उत्पन्न कर दी और जिस प्रकार रात्रि आकाशमे चन्द्रमाको घुमाती है उसी प्रकार कोई देवी चिर काल तक सुन्दर चमर घुमाती रही ॥ ४९ ॥ रानीके मस्तक पर किसी देवीने वह केशोंकी पङ्क्ति सजाई थी जो कि मुख-कमलके समीप सुगन्धके लोभसे एकत्रित हुए भ्रमरसमूहकी शोभाको चुरा रही थी ॥ ५० ॥ किसी देवीने रानीके कपोलों पर कस्तूरी रससे मकरीका चिह्न बना दिया जो ऐसा जान पड़ता था मानो उसके सौन्दर्य-सागरकी गहराई ही कह रहा हो ॥ ५१ ॥ किसी देवीने उस सुवदनाको निर्मल मणियोंके समूहसे ऐसा सजा दिया कि जिससे वह बड़े-बड़े ताराओं और चन्द्रमासे सुन्दर शरद् ऋतुकी रात्रिकी तरह सुशोभित होने लगी ॥ ५२ ॥ कोई मृगनयनी देवी वीणा और बाँसुरी बजाती हुई तभी तक गा सकती थी जब तक कि उसने रानीके द्वारा कही हुई

अमृतवाहिनी वाणी नहीं सुनी थी ॥ ५३ ॥ किसी एक देवीके द्वारा स्थूल नितम्ब-मण्डल पर धारण किया हुआ पटह-रागसे चञ्चल हस्तके अग्रभागसे ताड़ित होता हुआ धृष्ट कामीकी तरह अधिक शब्द कर रहा था ॥ ५४ ॥ किसी एक देवीने रानीके आगे ऐसा नृत्य किया जिसमें भौंहें चल रही थीं, नेत्र नये नये विलासोंसे पूर्ण थे, स्तन काँप रहे थे, हाथ उठ रहे थे, चरणोंका सुन्दर संचार आश्चर्य उत्पन्न कर रहा था और काम स्वयं नृत्य कर रहा था ॥ ५५ ॥ उस समय उन देवियोंने सेवाका वह समस्त कौशल जो कि अत्यन्त इष्ट था, उत्तम था और जिसे वे पहलेसे जानती थीं स्पर्धासे ही मानो प्रकट किया था ॥ ५६ ॥

उस समय वह राजाकी प्रिया किसी उत्तम कविकी वाणीकी तरह जान पड़ती थी क्योंकि जिस प्रकार उत्तम कविकी वाणीमें सब ओरसे विद्वानोंको आनन्दित करने वाले उपमादि अलंकार निहित रहते हैं उसी प्रकार राजाकी प्रियाको भी देवियोंने सब ओरसे कटकादि अलंकार पहिना रक्खे थे, उत्तम कविकी वाणी जिस प्रकार माधुर्यादि गुणोंसे सुशोभित होती है उसी प्रकार राजाकी प्रिया भी दया-दाक्षिण्यादि गुणोंसे सुशोभित थी और उत्तम कविकी वाणी जिस प्रकार शुद्ध विग्रह-प्रकृति प्रत्यय आदिके निर्दोष विभागसे युक्त रहती है उसी प्रकार राजाकी प्रिया भी शुद्ध विग्रह-शुद्ध शरीरसे युक्त थी ॥ ५७ ॥

किसी एक दिन सुखसे सोई हुई रानीने रात्रिके पिछले समय निम्नलिखित स्वप्नोंका समूह देखा जो ऐसा जान पड़ता था मानो स्वर्गसे उतरकर आनेवाले जिनेन्द्र देवके लिए सीढ़ियोंको समूह ही बनाया गया हो ॥ ५८ ॥ सर्व प्रथम उसने वह मदोन्मत्त हाथी देखा, जिसके कि चलते हुए चरणोंके भारसे पृथिवीका भार धारण करने वाले

कच्छपका मजबूत कर्पर भी टूटा जा रहा था और जो ऐसा जान पड़ता था मानो प्रलय कालकी वायुसे चञ्चल हुआ ऊँचा कैलास अथवा विजयार्द्ध पर्वत ही हो ॥ ५९ ॥ तदनन्तर सींगोंके समूहसे ग्रह-मण्डलको कष्ट पहुँचाने एवं शरदृऋतुके मेघके समान सफ़ेद शरीरको धारण करने वाला वह बैल देखा जो कि तीनों लोकोंमे उत्सव करानेवाले मूर्तिमान् धर्मके समान जान पड़ता था ॥ ६० ॥ तदनन्तर जिसने अपनी गर्जनासे दिग्गज-समूहके कपोलमण्डल पर झरते हुए मद-जलके झरने सुखा दिये हैं और जो चन्द्रमण्डलमे स्थित मृगको पाने की इच्छासे ही मानो आकाशमे छलाग भर रहा है ऐसा सिंह देखा ॥६१॥ [तदनन्तर अपनी गर्जनाके रोषसे खण्डित हुए मेघ मण्डलकी बिजलियोंका समूह ही मानो जिसमें आ लगा हो ऐसी, लम्बी और पीली केसरसे सुशोभित ग्रीवाको धारण करनेवाला उछलता हुआ सिंह देखा]—पाठान्तर ॥६२॥ तदनन्तर वह लक्ष्मी देखी जिसका कि शरीर विशाल कान्ति रूप तरङ्गोंकी परम्परासे प्लावित और स्वभावसे ही कोमल था एवं ऐसी जान पड़ती थी मानो तत्काल घूमते हुए मन्दर-गिरि रूप विशाल मन्थन-दण्डसे मथित समुद्रसे अभी-अभी निकली है ॥ ६३ ॥ तदनन्तर बैठे हुए भ्रमरोंके समूहसे सुशोभित खिले हुए फूलोंसे युक्त दो उज्ज्वल मालाएँ देखीं जो ऐसी जान पड़ती थीं मानो वायुके द्वारा आकाशमें दो भागोंमें विभक्त दिग्गजोंके मदसे मलिन आकाशगङ्गाका प्रवाह ही हो ॥ ६४ ॥ तदनन्तर उदित होता हुआ वह चन्द्रमा देखा जो कि ऐसा जान पड़ता था मानो कलङ्कके छलसे महादेवजी द्वारा जलाये हुए कामदेवको अपनी गोदमें रखकर औषधियोंके रसका सेवन कर जीवित ही कर रहा हो—औषधिपति जो ठहरा ॥ ६५ ॥ [तदनन्तर वह चन्द्रमा देखा जिसकी कि चाँदनीके साथ रसक्रीड़ा करनेमें लालसा बढ़ रही थी, जो कामदेवका पुरोहित

था, और स्त्रियोंमें एक नवीन राग सम्बन्धी सम्भ्रमके अद्वैतका प्रति-
पादन कर रहा था–स्त्रियोंमें केवल राग ही राग बढ़ा रहा था]–पाठान्तर
॥६६॥ तत्पश्चात् मैं तो सर्वथा निर्दोष हूँ [पक्षमें रात्रि रहित हूँ], लोग
मेरे विषयमें मलिनाशय क्यों हैं ? इस प्रकार प्रतिज्ञा द्वारा जिसने
शुद्धि प्राप्त की है और उस शुद्धिके उपलक्ष्यमें नक्षत्र रूप सुन्दर चावलोंके
द्वारा जिसने उत्सव मनाया है ऐसा सूर्य देखा ॥ ६७ ॥ तदनन्तर
लक्ष्मीके नयन-युगलकी तरह स्तम्भित, भ्रमित, कुञ्चित, अञ्चित,
स्फारित, उद्वलित, और वेल्लित आदि गति-विशेषोंसे समुद्रमें क्रीडा
करता हुआ मछलियोंका युगल देखा ॥ ६८ ॥ तदनन्तर मोतियोंसे
युक्त सुवर्णमय पूर्ण कलशोंका वह युगल देखा जो कि ऐसा जान
पड़ता था मानो पहले रसातल जाकर उसी समय निकलनेवाले पुण्य
रूपी मत्त हाथीके गण्डस्थलोंका युगल ही हो ॥ ६९ ॥ तदनन्तर वह
निर्मल सरोवर देखा जो कि किसी सत्पुरुषके चरित्रके समान जान
पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार सत्पुरुषका चरित्र लक्ष्मी प्राप्त करने
वाले बड़े-बड़े कवियोंके द्वारा सेवित होता है उसी प्रकार वह सरोवर
भी कमलपुष्प प्राप्त करनेवाले अच्छे-अच्छे जल-पक्षियोंसे सेवित था।
जिस प्रकार सत्पुरुषका चरित्र कुवलय प्रसाधन–महीमण्डलको अलं-
कृत करनेवाला होता है उसी प्रकार वह सरोवर भी कुवलय–प्रसाधन–
नील कमलोंसे सुशोभित था और सत्पुरुषका चरित्र जिस प्रकार
पिघले हुए कपूर रसके समान उज्ज्वल होता है उसी प्रकार वह सरो-
वर भी पिघले हुए कपूर रसके समान उज्ज्वल था ॥ ७० ॥ तदनन्तर
वह समुद्र देखा जो कि श्रेष्ठ राजाके समान जान पड़ता था क्योंकि
जिस प्रकार श्रेष्ठ राजा पीवरोच्चलहरिव्रजोद्धुर–मोटे-मोटे उछलते हुए
घोड़ोंके समूह युक्त होता है उसी प्रकार वह समुद्र भी पीवरोच्चल-
हरिव्रजोद्धुर—मोटी और ऊँची लहरोंके समूहसे युक्त था, जिस प्रकार

श्रेष्ठ राजा सज्जनक्रमकर—सज्जनोंके क्रमको करनेवाला होता है उसी प्रकार वह समुद्र भी सज्जनक्रमकर—सजे हुए नाकुओं और मगरोंसे युक्त था और जिस प्रकार श्रेष्ठ राजा उग्रतरवारिमज्जितक्ष्माभृत्—पैनी तलवारसे शत्रु राजाओंको खण्डित करनेवाला होता है उसी प्रकार वह समुद्र भी उग्रतरवारिमज्जितक्ष्माभृत्—गहरे पानी में पर्वतोंको डुबाने वाला था ॥ ७१ ॥ तदनन्तर चित्र-विचित्र रत्नोंसे जड़ा हुआ सुवर्णका वह ऊँचा और सुन्दर सिंहासन देखा जो कि अपनी-अपनी किरणोंसे सुशोभित ग्रहोंके समूहसे वेष्टित पर्वतकी शिखरके समान जान पड़ता था ॥७२॥ तदनन्तर देवोंका वह विमान देखा जो कि रुनझुन करती हुई नीलमणिमय क्षुद्रघंटिकाओंसे सुशोभित था और उनसे ऐसा जान पड़ता था मानो स्थान न मिलनेसे शब्द करनेवाले दिव्य गन्ध-द्वारा आकर्षित चञ्चल भ्रमरोंके समूहसे ही सहित हो ॥७३॥ [तदनन्तर आकाशमे देवोंका वह विमान देखा जो कि किसी सेनाके समूहके समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार सेनाका समूह मत्तवारणविराजित—मदोन्मत्त हाथियोंसे सुशोभित होता है उसी प्रकार वह देवोंका विमान भी मत्तवारणविराजित—उत्तम छज्जोंसे सुशोभित था, जिस प्रकार सेनाका समूह स्फुरद्वज्रहेतिभरतोरणोल्वण—चमकीले वज्रमय शस्त्रोंके समूहसे होनेवाले युद्ध द्वारा भयकर होता है उसी प्रकार देवोंका विमान भी स्फुरद्वज्रहेतिभरतोरणोल्वण—देदीप्यमान हीरोंकी किरणोंके समूहसे निर्मित तोरण-द्वारसे युक्त था और जिस प्रकार सेनाके समूह लोलकेतु—चञ्चल ध्वजासे सहित होता है उसी प्रकार वह देवोंका विमान भी लोलकेतु—फहराती हुई ध्वजासे सहित था]—पाठान्तर ॥७४॥ तदनन्तर नागेन्द्रका वह भवन देखा जिसमें कि ऊपर उठे हुए नागोंके देदीप्यमान फणारूप वर्तनमे सुशोभित मणिमय दीपकोंके द्वारा संभोगकी इच्छुक

नागकुमारियोंके फूँकनेका उद्योग व्यर्थ कर दिया जाता है ॥ ७५ ॥ तदनन्तर, रे दारिद्र्य ! समस्त पृथिवीको दुखीकर मेरे सामनेसे अब कहाँ जाता है ? इस प्रकार क्रोधके कारण देदीप्यमान किरणोंके बहाने मानो जिसने बड़ा भारी इन्द्रधनुषका मण्डल ही तान रखा था ऐसा चित्र-विचित्र रत्नोंका समूह देखा ॥७६॥ तदनन्तर उस अग्निको देखा जो कि निकलते हुए तिलगोंके बहाने, अहमिन्द्रके विमानसे आनेवाले तीर्थंकरके पुण्य प्रतापसे उनके मार्गमें मानो लाईके समूहकी वर्षा ही कर रही हो ॥ ७७ ॥ यह स्वप्न देखते ही रानी सुव्रताकी आँख खुल गई, उसने शय्या छोड़ी, वस्त्राभूषण सँभाले और फिर पतिके पास जा कर उनसे समस्त स्वप्नोंका समाचार कहा ॥ ७८ ॥

सज्जनोंके बन्धु राजा महासेन उन मनोहर स्वप्नोंका विचार कर दाँतोंके अग्रभागकी किरणोंके बहाने रानीके वक्षःस्थल पर हारकी रचना करते हुए उन स्वप्नोंका पापापहारी फल इस प्रकार कहने लगे ॥ ७९ ॥ [स्वप्न-समूहको सुन प्रीतिसे उत्पन्न हुई रोमराजिसे जिनका शरीर अत्यन्त सुन्दर मालूम हो रहा था ऐसे राजा महासेन दाँतोंकी किरणोंके द्वारा रानीके हृदय पर पड़े हुए हारको दूना करते हुए इस प्रकार बोले]—पाठान्तर ॥८०॥ हे देवी ! एक तुम्हीं धन्य हो जिसने कि ऐसा स्वप्नोंका समूह देखा। हे पुण्य कन्दली, मैं क्रमसे उसका फल कहता हूँ, सुनो ॥ ८१ ॥ तुम इस स्वप्नसमूहके द्वारा गजेन्द्रके समान दानी, वृषभके समान धर्मका भार धारण करनेवाला, सिंहके समान पराक्रमी, लक्ष्मीके स्वरूपके समान सबके द्वारा सेवित, मालाओंके समान प्रसिद्ध कीर्ति रूप सुगन्धिका धारक, चन्द्रमाके समान नयनाह्लादी कान्तिसे युक्त, सूर्यकी तरह संसारके जगानेमें निपुण, मीनयुगलके समान अत्यन्त आनन्दका धारक, कलशयुगलके समान मंगलका पात्र, निर्मल सरोवरकी तरह संतापको नष्ट करनेवाला, समुद्रकी तरह

मर्यादाका पालक, सिंहासनकी तरह उन्नतिको दिखानेवाला, विमानकी तरह देवोंका आगमन करानेवाला, नागेन्द्रके भवनके समान प्रशंसनीय तीर्थसे युक्त, रत्नोंकी राशिके समान उत्तम गुणोंसे सहित और अग्निकी तरह कर्मरूप वनको जलानेवाला, त्रिलोकीनाथ तीर्थकर पुत्र प्राप्त करोगी सो ठीक ही है क्योंकि व्रतविशेषसे शोभायमान जीवोंका स्वप्नसमूह कहीं भी निष्फल नहीं होता ॥ ८२–८६ ॥ इस प्रकार हृदयवल्लभ-द्वारा कर्ण-मार्गसे हृदयमें भेजी हुई नहरके समान स्वप्नोंके उस फलावलीने देवीको आनन्दरूप जलोंसे खूब ही सींचा जिससे वह खेतकी भूमिकी तरह रोमाञ्चरूप अंकुरोंसे सुशोभित हो उठी ॥८७॥

वह अहमिन्द्र नामका श्रीमान् देव अपनी तैंतीस सागर आयुके पूर्ण होने पर सर्वार्थसिद्धिसे च्युत होकर जब कि चन्द्रमा रेवती नक्षत्र पर था तब वैशाख कृष्ण त्रयोदशीके दिन हाथीका आकार रख श्री सुव्रता रानीके गर्भमें अवतीर्ण हुआ ॥ ८८ ॥

आसनोंके कम्पित होनेसे जिन्हें चमत्कार हो रहा है ऐसे इन्द्रादि देव सभी ओरसे तत्काल दौड़े आये। उन्होंने राजा महासेनके घर आ कर गर्भमें जिनेन्द्रदेवको धारण करनेवाली रानी सुव्रताकी स्तोत्रों द्वारा स्तुति की, इष्ट आभूषणोंके समूहसे पूजा की, खूब गाया, भक्ति-पूर्वक नमस्कार किया और नव रसोंके अनुसार नृत्य किया। वह क्या था जिसे उन्होंने न किया हो ? ॥ ८९ ॥

मैं यहाँ किसी तरह भारी उत्सव करनेकी इच्छा करता हूँ कि उसके पहले ही उस उत्सवको इन्द्र द्वारा किया हुआ देख लेता हूँ— इस प्रकार मनमें लज्जित होते हुए राजाकी रत्न और कल्प वृक्षके पुष्पोंकी वर्षाके बहाने आकाश मानो हँसी ही कर रहा था ॥ ९० ॥

इस प्रकार महाकवि श्री हरिचन्द्र द्वारा विरचित धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्यमें पञ्चम सर्ग समाप्त हुआ।

षष्ठ सर्ग

उस समय गर्भको धारण करने वाली रानी सुव्रता चतुर एवं गम्भीर अर्थको धारण करने वाली वाणीकी तरह अथवा गुप्त मणियोंके समूहको धारण करने वाली समुद्रकी बेलाकी तरह अथवा मेरु पर्वतसे छिपे हुए चन्द्रमाको धारण करने वाली प्राची दिशाके समान सुशोभित हो रही थी ॥१॥ जिस प्रकार किसी दरिद्र कुलकी मूलगृहिणी भाग्यवश सुवर्णका कलश पाकर कोई इसे ले न जावे इस आशङ्कासे निरन्तर उसे देखती रहती है इसी प्रकार राजा महासेनकी प्रसन्न दृष्टि उस गर्भवती सुव्रताको एकान्तमे बड़े आदरके साथ प्रति क्षण देखती रहती थी ॥ २ ॥ उस देवीका शरीर कुछ ही दिनोंमे कपूरके स्वत्वका लेप लगाये हुएके समान सफेद हो गया था जिससे ऐसी जान पड़ती थी मानो शरीरके भीतर स्थित श्री तीर्थकर भगवानके बाहर निकलने वाले यशसे ही मानो आलिङ्गित्त हो रहा हो ॥ ३ ॥ यह सुव्रता तृष्णारूप समुद्रके द्वितीय तटको प्राप्त हुए बन्धनहीन पुत्रको उत्पन्न करेगी—यह सूचित करनेके लिए ही मानो उसने पिजड़ोंमें बन्द क्रीड़ापक्षियोंकी मुक्तिको छोड़कर अन्य वस्तुओंमे इच्छा नहीं की थी—उसकी यही एक इच्छा रहती थी कि पिजड़ोमे बन्द समस्त तोता मैना आदि पक्षी छोड़ दिये जावें ॥ ४ ॥ इस सुव्रताका उदर ज्यों-ज्यों वृद्धिको प्राप्त होता जाता था त्यों-त्यों उसका स्तनमण्डल कृष्ण मुख होता जाता था सो ठीक ही है क्योंकि अत्यन्त कठोर प्रकृतिको धारण करने वाले जड़ पुरुष मध्यस्थ [राग-द्वेषसे रहित, प्रकृतमे बीचमे रहने वाले] पुरुषका भी अभ्युदय नहीं सह सकते ॥ ५ ॥ स्फटिक मणिके समान कान्तिवाला उस सुव्रताका कपोलफलक

कामदेवके दर्पणके समान मालूम होता था। रात्रिके समय उसमें प्रतिबिम्बित चन्द्रमाको यदि लोग देख पाते थे तो महादेवजीके कण्ठके समान कठोर कान्तिवाले कलङ्कके द्वारा ही देख पाते थे ॥ ६॥ उस सुव्रताका मध्यदेश गर्भस्थित एक बली [बलवान] के द्वारा तीन बलियोंको [पक्षमें नाभिके नीचे स्थित तीन रेखाओंको] नष्ट कर वृद्धिको प्राप्त हो रहा था अतः उसके स्तन-कलश हर्षसे ही मानो अत्यन्त स्थूल हो गये थे ॥७॥ जलभृत् सरोवरके समान प्रेमसे ओत-प्रोत हृदयमें भैंसेके सींगके समान काले-काले चूचकोंसे युक्त उस सुव्रताके दोनों स्तन ऐसे जान पड़ते थे मानो जिन्होंने कीचड़युक्त मृणाल उखाड़ा है ऐसे राजहंस ही हों अथवा जिनके अग्र भागपर भ्रमर बैठे हैं ऐसे सफेद कमलोंके कुड्मल ही हों ॥ ८ ॥

गर्भमें रहने पर भी जिनका शरीर मलसे कलङ्कित नहीं है ऐसे वह त्रिभुवनगुरु मति श्रुत और अवधि इन तीन ज्ञानोंको धारण कर रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि सूर्य उत्तुङ्ग उदयाचलके वनमें छिपा रह कर भी क्या कभी अपना तेज छोड़ता है ? ॥ ९ ॥

राजा कुलकी रीतिका ख्याल कर योग्य समय जिस पुंसवन आदि कार्यके करनेकी इच्छा करते थे इन्द्र उस कार्यको स्वर्गकी स्पर्धासे पहले ही आकर कर देता था और राजा इन्द्रके इस कार्यको बड़े आश्चर्यसे देखता था ॥ १० ॥

तरुण चन्द्रमाके समान गौर वर्णको धारण करने वाली रानी सुव्रता गर्भके भारसे समस्त शरीरमें खेदका अनुभव कर निश्चल-शरीर हो रही थी जिससे स्फटिक मणिकी पुतलीकी तरह जान पड़ती थी, दृष्टिके सामने आते ही वह अपने स्वामीका मन आनन्दित कर देती थी ॥ ११ ॥

बड़े आश्चर्यकी बात है कि कुबेर नामक अनोखे मेघने न तो वज्र ही गिराया था और न जोरकी गर्जना ही की थी—चुप चाप जिनेन्द्र भगवान्‌के जन्मसे पन्द्रह माह पूर्व तक राजमन्दिरमें रत्नवृष्टि करता रहा था ॥ १२ ॥

तदनन्तर जिस प्रकार प्राची दिशा समस्त लोकको आनन्दित करने वाले सूर्यको उत्पन्न करती है उसी प्रकार मृगनयनी सुव्रताने जब कि चन्द्रमा पुष्य नक्षत्र पर था तब माघ मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशी तिथि पाकर समस्त लोकको आनन्दित और नीतिका विस्तार करने वाले पुत्रको उत्पन्न किया ॥ १३ ॥ जिस प्रकार महादेवजीके मस्तक पर कामदेवका गर्व जीतने वाले नेत्रानलसे चन्द्रमाकी कला सुशोभित होती थी उसी तरह शय्या पर पास ही पड़े हुए संतप्त सुवर्णके समान कान्ति वाले उस बालकसे वह कृशोदरी माता सुशोभित हो रही थी ॥ १४ ॥ पुण्यकी दूकानके समान एक हजार आठ लक्षणोंको धारण करने वाले उस बालकने दिखते ही स्वर्गके विना ही किन चकोर-लोचनाओंको भारी उत्सवसे निमेषरहित नहीं कर दिया था ॥ १५ ॥ भवनवासी देवोंके भवनोंमें विना बजाये ही असख्यात शङ्खोंका समूह बज उठा जो उस निर्मल पुण्य समूहके समान जान पड़ता था जो कि पहले चिरकालसे नीचे जा रहा था परन्तु अब जिनेन्द्र भगवान्‌के जन्मका हस्तावलम्बन पाकर आनन्दसे ही मानो चिल्ला पड़ा हो ॥ १६ ॥ व्यन्तरोंके भवनोंमें जोर-जोरसे बजती हुई सैकड़ों भेरियोंके शब्दने आकाशको व्याप्त कर लिया था वह मानो इस बातकी घोषणा ही कर रहा था कि रे रे जन्म बुढ़ापा मरण आदि शत्रुओ ! अब तुम लोग शीघ्र ही शान्त हो जाओ क्योंकि जिनेन्द्र भगवान् अवतीर्ण हो चुके हैं ॥ १७ ॥ ज्योतिषी देवोंके विमानोंमें जो हठीले हजारों सिंहोंका नाद हो रहा था उसने न केवल हाथियोंके

गण्ड मण्डलसे मयूरकी ग्रीवा और कज्जलकी कान्तिको चुरानेवाला काला कालम मद दूर किया था किन्तु समस्त संसारका बढ़ा हुआ मद-अहङ्कार दूर कर दिया था ॥ १८ ॥ जिनेन्द्र भगवान्के जन्मके समय कल्पवासी देवोंके घर बजते हुए बहुत भारी घंटाओंके उन शब्दोंने समस्त संसारको भर दिया था जो कि तत्काल नृत्य करनेमें उत्सुक मोक्ष-लक्ष्मीके हिलते हुए हाथोंके मणिमय कङ्कणोंके शब्दके समान मनोहर थे ॥ १९ ॥ उस बालकके सहसा प्रकट हुए तेजसे प्रसूति-गृहका समस्त अन्धकार नष्ट हो चुका था अतः उस समय किसी स्त्रीने केवल मङ्गलके लिए जो सात दीपक जलाये थे वे सेवाके लिए आये हुए सप्तर्षि ताराओंके समान जान पड़ते थे ॥ २० ॥

सर्व प्रथम पुत्र-जन्मका समाचार देनेवाले नौकरको आनन्दके भारसे भरे हुए राजाने केवल राजाओंके मुकुटों पर पड़ी हुई मणि-मालाके समान सुशोभित आज्ञासे ही अपने समान नहीं किया था किन्तु लक्ष्मीके द्वारा भी उसे अपने समान किया था ॥ २१ ॥ उस समय सुगन्धित जलसे धूलिरहित किये हुए राजमार्गमें आकाशसे बड़ी-बड़ी किरणोंको धारण करनेवाले वे मणि बरसे थे जो कि तत्काल बोये हुए पुण्यरूप वृक्षके बीजसमुदायके निकलते हुए अंकुरोंके समूहकी आकृतिका अनुकरण कर रहे थे ॥ २२ ॥ फहराई हुई पता-काओंके वस्त्रोंसे जिसका समस्त आकाश व्याप्त हो रहा है, ऐसे उस नगरमें सूर्य अपने पाद-पैर [पक्षमें किरण] नहीं रख रहा था मानो उसे इस बातका भय लग रहा था कि कहीं ऊपरसे पड़ते हुए देव-पुष्पोंके रस प्रवाहके समूहसे पङ्किल मार्गमें रिपट कर गिर न जाऊँ ॥ २३ ॥ मन्दार मालाओंके मधुकणोंका भार धारण करने वाला मन्द वायु और भी अधिक मन्द हो गया था मानो चिरकाल बाद बन्धन से मुक्त अतएव हर्षातिरेकसे उछलते हुए शत्रुरूप कैदियोंको कुछ-कुछ

धारण ही कर रहा हो ॥ २४ ॥ उस समय घर-घर तुरही बाजोंके शब्द हो रहे थे, घर-घर लयसे सुशोभित नृत्य हो रहे थे, और घर-घर सुन्दर गीत हो रहे थे और घर-घर उत्तमोत्तम नये-नये तोरण बाँधे जा रहे थे। अधिक क्या कहा जाय ? तीनों लोक एक कुटुम्बकी तरह अनेक उत्सवोंके क्रीड़ापात्र हो रहे थे ॥ २५ ॥ उस समय आकाश स्वच्छ हो गया था, पृथिवी कण्टकरहित हो गई थी, सूर्य भक्तिसे ही मानो सेवनीय किरणोंसे युक्त हो गया था और देशके लोग नीरोग हो गये थे। वह क्या था जो सुखका निमित्त न हुआ हो ॥ २६ ॥ उस समय दिशाएं [पक्षमे स्त्रियां] रज [धूली पक्षमें ऋतुधर्म] का अभाव होनेसे अत्यन्त निर्मल हो गई थीं जिससे ऐसी जान पड़ती थीं मानो अत्यन्त सुशोभित पुण्यरूपी तीर्थ [सरोवरके घाटमे] मे नहाकर आने वाले अपने-अपने पतियों [दिक्पालों पक्षमे पतियो] के समागमके योग्य ही हो गई हों ॥ २७ ॥ उधर जब तक खजानेके रक्षक लोग रत्नों द्वारा चौक पूरने, पताकाए फहराने तथा तोरण आदि के बाँधनेमें उलझे रहे इधर तब तक खजानोंने देखा कि अब कोई पहरेदार नहीं है इस लिए उलटफेरसे फैलनेवाली रत्नोंकी किरणोंके बहाने पहरेदारोंकी मूर्खता पर हँसते हुए खजानोंने भागना शुरू कर दिया ॥ २८ ॥ अपने गौरवरूप समुद्रके जलके भीतर जिन्होंने सबकी महिमा तिरोहित कर ली है ऐसे जिनेन्द्र देवके उत्पन्न हो चुकने पर अब और किसकी राज्यमहिमा स्थिर रह सकती है ? इस प्रकार प्रभुकी प्रभाव-शक्तिसे आहत होकर ही मानो इन्द्रका आसन कम्पित हो उठा ॥ २९ ॥ जब इन्द्रने जाना कि हमारे एक हजार नेत्र आसन के कम्पित होनेका कारण देखनेके लिए असमर्थ हैं तब उसने बड़े आश्चर्यसे उत्सुकचित्त होकर अपना अवधिज्ञानरूप एक नेत्र खोला ॥ ३० ॥ इन्द्रने उस अवधिज्ञानरूप नेत्रके द्वारा जिनेन्द्र भगवान्‌का

जन्म जान कर शीघ्र ही सिंहासन छोड़ दिया और उस दिशामें सात क़दम जाकर प्रभुको नमस्कार किया तथा अभिषेक करनेके लिए उसी क्षण बड़े हर्षसे प्रस्थानभेरी बजवा दी ॥ ३१ ॥ उस भेरीका शब्द चिरकालसे सोनेवाले धर्मको जगाते हुएकी तरह विमानोंके प्रत्येक विवरमें व्याप्त हो गया और स्वयं सम्पन्न होकर भी पारितोषिक मांगनेके लिए ही मानो समस्त सुरों तथा असुरोंके भवनोंमें जा पहुँचा ॥ ३२ ॥ जिनके दिव्य शरीर सोलह प्रकारके आभूषणोंसे सुशोभित हैं ऐसे दशों दिक्पाल अपनी-अपनी सवारियों पर बैठ अपने-अपने परिवारके साथ ऐसे चले मानो हृदयमें लगे हुए जिनेन्द्र भगवान्के गुणोंका समूह उन्हें बलपूर्वक खींच ही रहा हो ॥ ३३ ॥ तदनन्तर जिसके दाँतों पर विद्यमान सरोवरोंके कमलोंकी पंक्तिपर सुन्दर देवाङ्गनाओंका समूह नृत्य कर रहा है ऐसे ऐरावत हाथी पर सौधर्मेन्द्र आरूढ़ हुआ। वह सौधर्मेन्द्र अपने विकसित नेत्रोंकी चित्र-विचित्र कान्तिके समूहसे उस हाथी पर चित्र खींचता हुआ-सा जान पडता था ॥ ३४ ॥ चञ्चल कानोंकी फटकारसे जिसके कपोलों पर बैठे हुए भ्रमर इधर-उधर उड़ रहे हैं ऐसा ऐरावत हाथी ऐसा जान पड़ता था मानो चूँकि वह जिनेन्द्रभगवान्की यात्राके लिए जा रहा था अतः पद-पद पर टूटते हुए पापोंके अंशोंसे ही मानो छूट रहा हो ॥ ३५ ॥ कल्प वृक्षके पुष्पोंके बड़े-बड़े पात्र हाथमें लिये हुए अनेक किंकरोंके समूह इन्द्रके साथ चल रहे थे जिनसे वह ऐसा जान पड़ता था मानो विरहजन्य दुःखको सहनेके लिए असमर्थ हुए क्रीड़ा वन ही उसके पीछे लग गये हों ॥३६॥ परस्परके आघातसे जिनके मणिमय आभूषणोंके अग्रभाग खनक रहे हैं तथा साथ ही जिनके उन्नत स्तनकलश शब्द कर रहे हैं ऐसी देवाङ्गनाएँ बड़े हर्षसे इस प्रकार जा रही थीं मानो प्रारब्ध नृत्यके अनुकूल कांसेकी झांझे ही बजाती

आती हों ॥३७॥ उस समय देवोंके झुण्डके झुण्ड चारों ओरसे आकर इकट्ठे हो रहे थे। उनमें कोई गा रहा था, कोई नृत्य कर रहा था, कोई नमस्कार कर रहा था और कोई चुपचाप पीछे चल रहा था, खास बात यह थी कि हजारों नेत्रोंवाला इन्द्र पृथक्-पृथक् विशेष भावोंको धारण करने वाले अपने नेत्रोंसे उन सबको एक साथ देखता जाता था ॥ ३८ ॥ यद्यपि भय उत्पन्न करने वाले लाखों तुरही बज रहे थे फिर भी चन्द्रमाका हरिण उत्कटरागरूपी रसके समुद्रमें निमग्न हू हू हा हा आदि किन्नरोंके द्वारा पल्लवित गीतमें इतना अधिक आसक्त था कि उसने चन्द्रमाको कुछ भी बाधा नहीं पहुँचाई थी ॥ ३९ ॥ यमराजका वाहन क्रूर भैंसा तथा सूर्यके वाहन घोड़े एवं ज्योतिषी देवोंके वाहन सिंह तथा पवनकुमारका वाहन हरिण—ये सब परस्परका वैरभाव छोड़कर साथ-साथ जा रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि जिन मार्गमे लीन हुए कौन मनुष्य परस्परका वैरभाव नहीं छोड़ते ? ॥४०॥ पुष्पों, फलों, पल्लवों, मणिमय आभूषणों और विविध प्रकारके अच्छे-अच्छे वस्त्रोंके समूहसे जिनेन्द्रदेवके चरणोंकी पूजा करनेके लिए आकाशमें उतरते हुए वे देव कल्पवृक्षके समान सुशोभित हो रहे थे॥४१॥ नृत्य करनेवाले देवोंके कठोर वक्षःस्थल परस्पर एक दूसरेके संमुख चलनेसे जब कभी इतने जोरसे टकरा जाते थे कि उससे हारोंके बड़े-बड़े मणि चूर चूर हो आकाशसे नीचे गिरने लगते थे और ऐसे मालूम होते थे मानो हस्तिसमूहके चरणोंके संचारसे चूर-चूर हुए नक्षत्रोंके समूह ही गिर रहे हों ॥ ४२ ॥ सूर्यके समीप चलने वाले देवोंके हाथी अपने सतप्त गण्डस्थल पर सूँडसे निकले हुए जल समूह के जो छींटे दे रहे थे उन्होंने क्षणभरके लिए कानोंके पास लटकते हुए चामरोंकी सुन्दर शोभा धारण की थी ॥ ४३ ॥ आकाशगङ्गाके किनारे हरे रंगके पत्ते पर यह लाल कमल फूला हुआ है यह समझ-

कर ऐरावत हाथीने पहले तो बिना विचारे सूर्यका बिम्ब खींच लिया पर जब उष्ण लगा तब जल्दीसे छोड़कर सूँडको फड़फड़ाने लगा। यह देख आकाशमें किसे हँसी न आ गई थी ? ॥ ४४ ॥ आकाशमें चलनेवाले देव-हस्तियोंके सूत्कारसे निकले हुए सूँडके जलके छींटे देवोंने दूरसे ऐसे देखे थे मानो परस्पर शरीरके सम्बन्धसे टूटते हुए आभूषणोंके मणियोंके समूह हों ॥ ४५ ॥ कुछ और नीचे आकर देवोंने विष-जल [पक्षमें गरल] से लबालब भरी एवं स्फटिक मणियोंसे जड़ी हुई वह आकाशगङ्गा देखी जो कि विष्णुके तृतीय चरणरूप सर्पके द्वारा छोड़ी हुई कांचुलीके समान अथवा स्वर्ग रूप नगरके गो-पुरकी देहलीके समान जान पड़ती थी ॥ ४६ ॥ जिनेन्द्र भगवान्का अभिषेक करनेके लिए आकाशमें आनेवाले देवोंके विमानोंकी शिखरों पर फहराने वाली सफ़ेद-सफ़ेद ध्वजाओंकी पङ्क्ति ऐसी जान पड़ती थी मानो अपना अवसर जान आनन्दसे सैकड़ोंरूप धारणकर आकाशगङ्गा ही आ रही हो ॥ ४७ ॥ त्रिभुवनके शासक श्री जिनेन्द्रदेवके उत्पन्न होने पर आकाशमे इधर-उधर घूमते हुए देवोंके हाथियोंने उन काले-काले मेघोंके समूहको खण्डित किया था-तोड़ डाला था जो कि स्वामीके न होनेसे चन्द्रलोककी प्रतोलीमें लगाये हुए लोहेके किवाड़ोंकी तरह जान पड़ते थे ॥ ४८ ॥ तेज वायु द्वारा हिलनेवाले नील अधोवस्त्रके छिद्रोंके बीचसे जिसका उत्तम ऊरुदण्ड प्रकाशमान हो रहा है ऐसी रम्भा नामक अप्सरा उस रम्भा-कदलीके समान सबका मन हरण कर रही थी जिसके कि बाहरकी मलिन कान्तिके दूर होनेसे भीतरकी सुन्दर शोभा प्रकट हो रही है ॥ ४९ ॥ इन्द्रकी राजधानीसे लेकर जिनेन्द्र भगवान्के नगर तक आकाशमें आने वाली देवोंकी पङ्क्ति ऐसी जान पड़ती थी मानो जिनेन्द्र भगवान्के शासनकालमे स्वर्ग जानेके लिए इच्छुक मनुष्योंके पुण्यसे बनी हुई

नसैनी ही हो ॥ ५० ॥ चञ्चल मेघरूपी बड़ी-बड़ी लहरोंके बीच जिसमे मकर, मीन और कर्क राशियाँ [पक्षमें जलजन्तु विशेष] अनायास सुशोभित हो रही हैं ऐसे आकाशरूप महासागरसे वे देव लोग जहाजोंके तुल्य विमानोंके द्वारा शीघ्र ही पार हो गये ॥ ५१ ॥

यद्यपि वह नगर प्रत्येक दरवाजे पर आकाशसे पड़े हुए रत्नोंके समूहसे ऐसा जान पड़ता था मानो अगस्त्यमुनि द्वारा क्रीड़ावश पिये हुए समुद्रका भूतल ही हो फिर भी इन्द्रने जगत्को विभूषित करने वाले एक जिनेन्द्र भगवान्रूप मणिके जन्मसे ही उस नगरका रत्नपुर यह सार्थक नाम माना था ॥ ५२ ॥ इन्द्रने हाथ जोड़कर नगरकी तरह श्री जिनेन्द्रदेवके अत्यन्त सुन्दर एवं त्रिलोकपूज्य भवनकी तीन प्रदक्षिणाएँ दीं और फिर समस्त संसारके अधिपति श्री जिनेन्द्रदेवकी इच्छासे लक्ष्मीके समान सुशोभित इन्द्राणीको भीतर भेजा ॥५३॥

इस प्रकार महाकवि श्री हरिचन्द्र द्वारा विरचित धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्यमें छठवां सर्ग समाप्त हुआ ।



सप्तम सर्ग

अनन्तर इन्द्राणीने प्रसूतिगृहके भीतर प्रवेश किया और सुव्रताकी गोदमें मायामय बालक छोड़कर जिन-बालकको इस प्रकार उठा लिया जिस प्रकार कि पूर्व समुद्रकी लहरीके बीच प्रतिबिम्बको छोड़कर नवीन उदित हुए चन्द्रमाको आकाश उठा लेता है ॥ १ ॥ उस समय चूँकि जिन-बालकरूपी चन्द्रमा इन्द्राणीके हस्ततलकी मित्रताको पाकर प्रकाशमान हो रहे थे इस लिए इन्द्रके दोनों हस्तकमल कुड्मलताको प्राप्त हो गये थे ॥ २ ॥ इन्द्र हर्षाश्रुओंसे भरे हुए अपने हजार नेत्रोंके द्वारा भगवानके एक हजार आठ लक्षणोंको बड़ी कठिनाईसे देख सका था ॥ ३ ॥ उस समय दो नेत्रोंके द्वारा जिनेन्द्र भगवान्का अनुपम रूप देखनेके लिए असमर्थ होता हुआ सुर और असुरोंका समूह हजार नेत्रोंवाले इन्द्र होनेकी इच्छा कर रहा था ॥ ४ ॥ जो बालक होने पर भी अपने विशाल गुणोंकी अपेक्षा समस्त संसारसे वृद्ध थे ऐसे जिनेन्द्रदेवको इन्द्राणीने नमस्कार करने वाले इन्द्रके लिए बड़े आदरके साथ सौंप दिया ॥५॥ इन्द्रने जिन-बालकको ऐरावत हाथीके मस्तक पर रखा और अन्य समस्त देवोंने अपनी हस्ताञ्जलि अपने मस्तक पर रक्खी— हाथ जोड़ मस्तकसे लगाये ॥ ६ ॥

सुवर्णके समान सुन्दर शरीरको धारण करने वाले जिनेन्द्र भगवान् देदीप्यमान प्रभामण्डलके बीच ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो निर्जल मेघसे उन्नत उदयाचलकी शिखर पर नवीन उगा हुआ चन्द्रमा ही हो ॥ ७ ॥ उनके चरणयुगलके नखरूपी चन्द्रमाकी कान्ति ऐरावत हाथीके मस्तक पर पड़ रही थी जो ऐसी जान पड़ती थी मानो उनके

आक्रमणके भारसे मस्तक फट गया हो और उससे मोतियोंका समूह उछल रहा हो ॥८॥ तदनन्तर हाथी पर आरूढ़ हुआ सौधर्मेन्द्र सुमेरु-पर्वतकी शिखर पर अभिषेक करनेके लिए उन तीर्थंकरको अपने दोनों हाथोंसे पकड़े हुए सेनाके साथ आकाशमार्गसे चला ॥ ९ ॥

उस समय इतने अधिक बाजे बज रहे थे कि इन्द्र-द्वारा की हुई जिनेन्द्रदेवकी स्तुति देवोंके सुननेमे नहीं आ रही थी, हाँ, इतना अवश्य था कि उसके प्रारम्भमें जो ओष्ठरूपी प्रवाल चलते थे उनकी लीलासे उसका कुछ बोध अवश्य हो जाता था ॥ १० ॥ उस समय देवोंने सुवर्णके अखण्ड कलशोंसे युक्त जो सफेद छत्रोंके समूह तान रक्खे थे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो प्रभुका अभिषेक करनेके लिए अपने शिरों पर सोनेके कलश रखकर शेषनाग ही आया हो ॥११॥ प्रभुके समीप ही देव-समूहके द्वारा ढोली हुई सफेद चमरोंकी पङ्क्ति ऐसी जान पडती थी मानो रागसे उत्कण्ठित मुक्तिरूप लक्ष्मीके द्वारा छोड़ी कटाक्षोंकी परम्परा ही हो ॥ १२ ॥ उस समय जलते हुए अगुरु-चन्दनके धुएँकी रेखाओंसे व्याप्त आकाश ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो उसमें जिनेन्द्र भगवान्के जन्माभिषेक सम्बन्धी उत्सवके लिए समस्त नाग ही आये हों ॥ १३ ॥ चन्द्रमाके समान उज्ज्वल पताकाएँ ही जिसमें निर्मल तरङ्ग हैं और सफेद छत्र ही जिसमें फेन का समूह है ऐसा जिनेन्द्र भगवान्के पीछे-पीछे जाता हुआ सुर और असुरोंका समूह ऐसा जान पड़ता था मानो अभिषेक करनेके लिए क्षीरसमुद्र ही पीछे-पीछे चल रहा हो ॥ १४ ॥ प्रभुकी सुवर्णोज्ज्वल प्रभासे ऐरावत हाथी पीला-पीला हो गया था जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो प्रभुको आता हुआ देख सुमेरु पर्वत ही भक्तिसे सामने आ गया हो ॥ १५ ॥ अमृतके प्रवाहके समान सुन्दर गीतोंसे लहराते हुए आकाशरूपी महासागरमें देवाङ्गनाएँ भुजाओंके संचारसे

उल्लासित नृत्यलीलाके छलसे ऐसी मालूम होती थीं मानो तैर ही रही हों ॥१६॥ जिस प्रकार तरुण पुरुष वृद्धा स्त्रीकी सफ़ेद वेणीको भले ही वह हाव-भाव क्यों न दिखला रही हो दूरसे ही छोड़ देता है उसी प्रकार उस इन्द्रने अतिशय विशाल एवं पक्षियोंका संचार दिखलाने वाले आकाशकी सफ़ेद वेणीके समान पड़ती हुई आकाशगङ्गाको दूरसे ही छोड़ दिया था ॥ १७ ॥ जाते-जाते भीतर छिपे हुए सूर्यकी कान्तिसे चित्र-विचित्र दिखने वाला एक मेघका टुकड़ा भगवान्के ऊपर आ पहुँचा जो ऐसा जान पड़ता था मानो सुवर्णकलशासे सहित मयूरपिच्छका छत्र ही हो ॥ १८ ॥ उस समय प्रयाणके वेगसे उत्पन्न वायुसे खिंचे हुए मेघ विमानोंके पीछे-पीछे जा रहे थे जो ऐसे जान पड़ते थे मानो उन विमानोंकी अग्रवेदीमें लगे हुए मणिमण्डलकी किरणोंसे उत्पन्न इन्द्रधनुषको ग्रहण करनेकी इच्छासे ही जा रहे हों ॥ १९ ॥

तदनन्तर इन्द्रने मेघोंसे सहित वह सुमेरु पर्वत देखा जो कि समुद्रके बीच शेषनागरूप मृणाल दण्डसे सुशोभित पृथिवी-मण्डल रूपी कमलकी उस कर्णिकाके समान जान पड़ता था जिस पर कि काले काले भौंरे मँडरा रहे हैं ॥ २० ॥ सुमेरुपर्वत क्या था ? मैंने अनन्तलोक-पाताललोक [पक्षमें अनन्त जीवोंके लोक] को तो नीचे कर दिया फिर यह त्रिदशालय-स्वर्ग [पक्षमें तीस जीवोंका घर] लक्ष्मीद्वारा मुझसे उच्च-उत्कृष्ट [पक्षमें ऊपर] क्यों है ? इस प्रकार स्वर्गको देखनेके लिए पृथिवीके द्वारा उठाया हुआ मानो मस्तक ही था । उस सुमेरु पर्वत पर जो लाल-लाल कमल थे वे मानो क्रोधसे लाल-लाल हुए नेत्र ही थे ॥ २१ ॥ उस सुमेरु पर्वतका सुवर्णमय शरीर चारों ओरसे चमचमा रहा था और दिन तथा रात्रि उसकी प्रदक्षिणा दे रहे थे इससे ऐसा जान पड़ता था मानो नवीन दम्पतिके द्वारा परिक्रम्य-

माण अग्नि-समूहकी शोभाका अनुकरण ही कर रहा हो ॥ २२ ॥ उस पर्वतके दोनों किनारे सूर्य और चन्द्रमासे सुशोभित थे, साथ ही उसका सुवर्णमय शरीर भीतर लगे हुए इन्द्रनील मणियोंकी कान्तिसे समुद्भासित था अतः वह सुमेरु पर्वत चक्र और शङ्ख लिये तथा पीत वस्त्र पहिने हुए नारायणकी शोभा धारण कर रहा था ॥ २३ ॥ उसका अग्र भाग मेघकी वायुसे उड़ी हुई स्थलकमलोंकी परागसे कुछ-कुछ ऊँचा उठ रहा था जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो आने वाले जिनेन्द्र भगवान्‌को दूरसे देखनेके लिए वह बार-बार अपनी गर्दन ही ऊपर उठा रहा हो ॥ २४ ॥ बड़ेबड़े इन्द्रधनुषोंसे चित्र-विचित्र मेघ दिग्दिगन्तसे आकर उस पर्वत पर छा जाते थे जिससे ऐसा जान पड़ता था कि मानो चूँकि यह पर्वतोंका राजा है अतः रत्नसमूहकी भेंट लिये हुए पर्वत ही इसकी उपासना कर रहे हो ॥ २५ ॥ उसका सुवर्णमय आधा शरीर सफ़ेद-सफेद बादलोंसे रुक गया था, उसके शिखर पर [पक्षमें शिरपर] पाण्डुक शिला रूप अर्ध चन्द्रमा सुशोभित था और पास ही जो नक्षत्रोंकी पङ्क्ति थी वह मुण्डमालाकी तरह जान पड़ती थी अतः वह ऐसा मालूम होता था मानो उसने अर्धनारीश्वर–महादेवजीकी ही शोभा धारण कर रखी हो ॥ २६ ॥ ये घूमते हुए ग्रह [पक्षमें चोर] मेरे विस्तृत स्थलोंसे सुवर्णकी कोटियों उत्तम कान्तिके समूहको [पक्षमें करोड़ोंका सुवर्ण] ले जावेंगे—इस भयसे ही मानो वह पर्वत उनका प्रसार रोकनेके लिए धनुष युक्त मेघोंको धारण कर रहा था ॥ २७ ॥ जो उत्तम नितम्ब–मध्यभाग [पक्षमे जघन] से युक्त हैं, जिनपर छाये हुए ऊँचे मेघोंके अग्रभाग सूर्यकी किरणोंके द्वारा स्पष्ट हो रहे हैं [पक्षमें जिनके उन्नत स्तन देदीप्यमान हाथसे स्पष्ट हो रहे हैं] और जो निकलते हुए स्वेद-जलके समान नदियोंके प्रवाहसे सदा आर्द्र रहती हैं—ऐसी तटी-

रूपी स्त्रियोंका वह पर्वत सदा आलिङ्गन करता था ॥ २८ ॥ चूँकि वह पर्वत महीधरों—राजाओं [पक्षमें पर्वतों] का इन्द्र था अतः असह्य शस्त्रोंके समूहको धारण करनेवाले [पक्षमें दूसरोंके असह्य किरणोंके समूहसे युक्त], शत्रुओंको नष्ट करनेसे सुवर्ण-खण्डोंका पुरस्कार प्राप्त करनेवाले [पक्षमें वायुके वेगवश सुवर्णका अंश प्राप्त करनेवाले] एवं शिविरोंमें [पक्षमें शिखरों पर] घूमने वाले तेजस्वी सैनिक [पक्षमें ज्योतिष्क देवोंका समूह] उसकी सेवा कर रहे थे यह उचित ही था ॥ २९ ॥ वह पर्वत मानो कामका आतङ्क धारण कर रहा था अतः जिसमें वायुके द्वारा वंश शब्द कर रहे हैं, जिनमें ताडके अनेक वृक्ष लग रहे हैं, और जिसमें आम्र-वृक्षोंके समीप मदन तथा इला-यचीके वृक्ष सुशोभित हैं ऐसे वनका एवं जिसमें देव लोग बांसुरी बजा रहे हैं, जो तालसे सहित है, रससे अलस है और कामवर्धक गीतबन्ध विशेषसे युक्त है ऐसे देवाङ्गनाओंके गानका आश्रय लिये हुए था ॥ ३० ॥ उस पर्वतके तटोंसे ऊपरकी ओर अनेक वर्णोंके मणियोंकी किरणें निकल रही थीं जिससे अच्छे-अच्छे बुद्धिमानोंको भी संशय हो जाता था कि कहीं ऊपर अपना कलापका भार फैलाये हुए मयूर तो नहीं बैठा है वह पर्वत अपने इन ऊँचे-ऊँचे तटोंसे बिलावके बच्चोंको सदा धोखा दिया करता था ॥ ३१ ॥ वह सुमेरु पर्वत सम्मुख आने वाले ऐरावत हाथीके आगे उसके प्रतिपक्षीकी शोभा धारण कर रहा था क्योंकि जिस प्रकार ऐरावत हाथी विशाल-दन्त—बड़े-बड़े दाँतोंसे युक्त था उसी प्रकार वह पर्वत भी विशालदन्त बड़े-बड़े चार गजदन्त पर्वतोंसे युक्त था, जिस प्रकार ऐरावत हाथी घनदानवारि—अत्यधिक मद जलसे सहित था उसी प्रकार वह पर्वत भी घनदानवारि—बहुत भारी देवोंसे युक्त था और जिस प्रकार ऐरावत हाथी अपने उत्कट कराग्रदण्ड—शुण्डाग्रदण्डको फैलाये हुए

था उसी प्रकार वह पर्वत भी अपने उत्कट कराग्र-किरणाग्रदण्डको फैलाये हुए था ॥ ३२ ॥ वह पर्वत चन्दन-वृक्षोंकी जिस पङ्क्तिको धारण कर रहा था वह ठीक प्रौढ़ वेश्याके समान जान पड़ती थी क्योंकि जिस प्रकार प्रौढ़ वेश्या अधिश्रियं-अधिक सम्पत्तिवाले पुरुष का भले ही वह नीरद—दन्तरहित-वृद्ध क्यों न हो आश्रय करती है उसी प्रकार वह चन्दन-वृक्षोंकी पङ्क्ति भी अधिश्रियं-अतिशय शोभा-संपन्न नीरद—मेघका आश्रय करती थी-अत्यन्त ऊँची थी और जिस प्रकार प्रौढ़ वेश्या अतिनिष्कलाभान—जिनसे धन-लाभकी आशा नहीं रह गई है ऐसे नवीन भुजङ्गान-प्रेमियोंको शिखिनाम्—शिखण्डियों-हिजड़ोंके शब्दों-द्वारा दूर कर देती है उसी प्रकार वह चन्दन-वृक्षोंकी पङ्क्ति भी अति निष्कलाभान—अतिशय कृष्ण नवीन भुजङ्गान्-सर्पोंको शिखिनाम्-मयूरोंके शब्दों-द्वारा दूर कर रही थी ॥३३॥ वह पर्वत अपनी मेखला पर बिजलीसे सुशोभित जिन मेघोंको धारण कर रहा था वे ऐसे जान पड़ते थे मानो मूर्ख सिंहोंने हाथीके भ्रमसे अपने नखोंके द्वारा उनका विदारण ही किया हो और बिजलीके बहाने उनमें खूनकी धारा ही बह रही हो ॥ ३४ ॥ वह पर्वत उत्त-मोत्तम मणियोंकी किरणोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो जिनेन्द्र भगवान्का आगमन होनेवाला है अतः हर्षसे रोमाञ्चित ही हो रहा हो और वायुसे हिलते हुए बड़े-बड़े ताड़ वृक्षोंसे ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो भुजाएँ उठा कर नृत्यकी लीला ही प्रकट कर रहा हो ॥३५॥ यह पर्वत जिनेन्द्र भगवान्के अकृत्रिम चैत्यालयोंसे पवित्र किया गया है—यह विचार प्रयत्नपूर्वक नमस्कार करनेवाले इन्द्रने जो इसे बड़ी भारी प्रतिष्ठा दी थी उससे ही मानो वह पर्वत अपना शिर-शिखर ऊँचा उठाये था ॥ ३६ ॥ जिसकी सेनाका ध्वजाग्र अत्यन्त निश्चल है ऐसा इन्द्र मार्ग तय कर इतने अधिक वेगसे उस सुमेरु

पर्वत पर जा पहुँचा मानो उत्सुक होनेसे वह स्वयं ही सामने आ गया हो ॥ ३७ ॥ उस समय वह पर्वत आकाश-मार्गसे समीप आये हुए निष्पाप देवोंको अपने शिरपर [शिखर पर] धारण कर रहा था जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो सदासे विबुधों—देवों [पक्षमे विद्वानों] की जो संगति करता आया है उसका फल ही प्रकट कर रहा हो ॥३८॥ जिसके गलेमें सुवर्णकी सुन्दर मालाएं पड़ी है और जिसके झरते हुए मदसे सुमेरु पर्वतका शिखर धुल रहा है ऐसा ऐरावत हाथी उस पर्वत पर इस प्रकार सुशोभित हो रहा था मानो बिजलीके संचारसे श्रेष्ठ बरसता हुआ शरद्ऋतुका बादल ही हो ॥ ३९ ॥ जिन ऐरावत तथा वामन आदि हाथियोंके द्वारा तीनो लोक धारण किये जाते हैं उन हाथियोंको भी यह पर्वत अपनी शिखर पर बड़ी दृढ़ताके साथ अनायास ही धारण कर रहा था इसलिए इसने अपना धराधर नाम छोड़ दिया था—अब वह 'धराधरधर' हो गया था ॥ ४० ॥

हाथियोंका समूह बड़े पराक्रमके साथ इधर-उधर घूम रहा था फिर भी वह पर्वत रञ्च मात्र भी चञ्चल नहीं हुआ था सो ठीक ही है क्योंकि इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि जिनेन्द्र भगवान्की दृढ़ भक्ति ने ही इस पर्वतको महाचल—अत्यन्त अचल [पक्षमें सबसे बड़ा पर्वत] बनाया था ॥ ४१ ॥ देवोंके मदोन्मत्त हाथी नेत्र बन्दकर धीरे-धीरे मद झरा रहे थे। उनका वह काला-काला मद ऐसा जान पड़ता था मानो मातङ्गके भीतर स्थित मणियोंकी प्रभाके द्वारा गण्डस्थलसे बाहर निकाला हुआ अन्तरङ्गका अन्धकार ही हो ॥ ४२ ॥ हाथियोंने अपने मद-जलकी धारासे जिसका शिखर तर कर दिया है ऐसा वह सुवर्णगिरि यद्यपि पहलेका देखा हुआ था फिर भी उस समय सुर और असुरोंको कज्जलगिरिकी शङ्का उत्पन्न कर रहा था ॥ ४३ ॥

पर्वतकी शिलाओं पर हाथियोंका मद फैला था और घोड़े हिन-

हिनाकर उन पर अपनी टापें पटक रहे थे जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो हाथियोंके द्वारा मदरूपी अञ्जनसे लिखी हुई जिनेन्द्र देवकी कीर्तिगाथाको घोड़े ऊपर उठाई हुई टाप रूपी टाकियोंके द्वारा खोद ही रहे हों ॥ ४४ ॥ लगाम खींचनेसे जिनके मुख कुछ-कुछ ऊपर उठे हुए हैं ऐसे घोड़े अपने शरीरका पिछला भाग अगले भागमें प्रविष्ट कराते हुए कभी ऊँची छलांग भरने लगते थे और कभी तिरछा चलने लगते थे जिससे ऐसे जान पड़ते थे मानो भगवानके आगे आनन्दसे नृत्य ही कर रहे हों ॥४५॥ पाच प्रकारकी चालोंको सीखने वाले जो घोडे नव प्रकारकी वीथिकाओंमें चलते समय खेद उत्पन्न करते थे वे ही घोडे इस सुमेरु पर्वत पर ऊँचे-नीचे प्रदेशोंको अपने चरणों-द्वारा पाकर आकाशमें इतने वेगसे जा रहे थे मानो दूसरे ही हो ॥ ४६ ॥ घोड़ोंके अगले खुरोंके कठोर प्रहारसे जो अग्निके तिलगे उछट रहे थे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो खुरोंके आघातने पृथिवीका भेदन कर शेषनागका मस्तक भी विदीर्ण कर दिया हो और उससे रत्नोंके समूह ही बाहर निकल रहे हो ॥ ४७ ॥

देवोंके रथोंने सुवर्णमय भूमिके प्रदेशोंको चारों ओरसे इस प्रकार चूर्ण कर दिया था कि जिसमें सूर्यके रथके मार्गमें अरुणको भी भ्रम होने लगा था ॥ ४८ ॥

महेश नामक देवकी सवारीका बैल चमरी मृगके नितम्ब सूँघ मदसे शिर ऊँचा उठा तथा नाकके नथुनोंको फुला कर जब उसके पीछे-पीछे जाने लगा तब महेश उसे बड़ी कठिनाईसे रोक सका ॥४९॥ नदी-तटके कमलोंसे सुवासित पवन कामी पुरुषोंके समान देवाङ्गनाओंके केश खींचते एवं उनके स्तन, ऊरु, जङ्घा और जघनका स्पर्श करते हुए धीरे-धीरे चल रहे थे ॥ ५० ॥

तदनन्तर इन्द्र फूलोंसे सुन्दर उस विशाल पाण्डुक वनमें पहुँचा जो कि ऐसा जान पड़ता था मानो वियोग न सह सकनेके कारण स्वर्गसे अवतीर्ण हुआ उसका वन ही हो ॥ ५१ ॥

तदनन्तर देवोंके हाथियों परसे बड़ी-बड़ी झूलें उतार कर नीचे रखी जाने लगीं जिससे ऐसा जान पडता था कि चूँकि हाथी जिनेन्द्र देवके अनुचर थे अतः मानो चिरकालके लिए समस्त कर्माचरणोंसे ही मुक्त हो गये हों ॥ ५२ ॥ जिस प्रकार अतिशय कामी मनुष्य निषेध करने पर भी काम-शान्तिकी इच्छा करता हुआ रजस्वला स्त्रियोंका भी उपभोग कर बैठता है उसी प्रकार वह देवोंके मत्त हाथियोंका समूह वारितः—जलसे [पक्षमें निषेध करने पर भी] इच्छानुसार थकावट दूर होनेकी इच्छा करता हुआ रजस्वला—धूलि युक्त नदियोंमे जा घुसा सो ठीक ही है क्योंकि मदान्ध जीवको विवेक कहाँ होता है ? ॥ ५३ ॥ चूँकि नदीका पानी जगली हाथीके मदसे युक्त था अतः सेनाके हाथीने प्याससे पीड़ित होने पर भी वह पानी नहीं पिया सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुषोंको अपने जीवनकी अपेक्षा अभिमान ही अधिक प्रिय होता है ॥५४॥ एक हाथीने अपनी सूंडसे कमलका फूल ऊपर उठाया, उठाते ही उसके भीतर छिपे हुए भ्रमरोंके समूह बाहर उड पड़े उनसे ऐसा जान पड़ता था मानो वह हाथी प्रतिकूल जाती हुई नदी रूप स्त्रीके बाल पकड़ जबर्दस्ती उसका उपभोग ही कर रहा हो ॥ ५५ ॥ किसी गजेन्द्रने विशाल शैवालरूप वस्त्रको दूर कर ज्यों ही वन-नदीके मध्यभागका स्पर्श किया त्यों ही स्त्रीकी जघनस्थलीके समान उसकी तटाग्रभूमि जलसे आप्लुत हो गई ॥ ५६ ॥ कोई एक हाथी अपनी सूंड ऊपर उठा पानीमें गोता लगाना चाहता था, अतः उसके कपोलके भौंरे उड़ कर आकाशमें वलयाकार भ्रमण करने लगे जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो दण्डसहित नील छत्र

ही हो ॥ ५७ ॥ पक्षियोंके संचारसे युक्त [पक्षमें हाव-भावसे युक्त] एवं विशाल जलको धारण करने वाली [पक्षमें स्थूल स्तनोंको धारण करने वाली] नदीका [पक्षमें स्त्रीका] समागम पाकर हाथी डूब गया सो ठीक ही है क्योंकि स्त्रीलम्पटी पुरुषोंका महान उदय कैसे हो सकता है ? ॥ ५८ ॥ कोई एक हाथी जब नदीसे बाहर निकला तब उसके शरीर पर कमलिनीके लाल-लाल पत्ते चिपके हुए थे जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो संभोग कालमें दिये हुए नखक्षत ही धारण कर रहा हो। वह हाथी रस-जल [पक्षमें संभोग जन्य आनन्द] ग्रहण कर नदीके जल रूप तल्पसे किसी तरह नीचे उतरा था ॥ ५९ ॥ इस वनमें जहाँ-तहाँ सप्तपर्णके वृक्ष थे। उनके फूलोंसे हाथियोंको शत्रु गजकी भ्रान्ति हो गई जिससे वे इतने अधिक बिगड़ उठे कि उन्होंने अंकुशों की मारकी भी परवाह न की। नीतिके जानकार महावत ऐसे हाथियों को शान्तिसे समझाकर ही धीरे-धीरे बांधनेके स्थान पर ले गये ॥६०॥ जिनके साथ उत्तम नीतिका व्यवहार किया गया है ऐसे कितने ही बड़े-बड़े हाथियोंने अपना शरीर बांधनेके लिए स्वयं ही रस्सी उठाकर महावतके लिए दे दी सो ठीक ही है क्योंकि मूर्ख लोग आत्महितमें प्रवृत्ति किस प्रकार कर सकते हैं ? ॥ ६१ ॥

लगाम और पलान दूर कर जो मुखमें लगी हुई चमड़ेकी मजबूत रस्सीसे बांधे गये हैं ऐसे घोड़े चूँकि किन्नरी देवियोंके शब्द सुननेमें दत्तकर्ण थे अतः पृथिवी पर लोटानेके लिए देवों-द्वारा बड़ी कठिनाईसे ले जाये गये थे ॥ ६२ ॥ जब घोड़ा इधर-उधर लोट रहा था तब उसके मुखसे कुछ फेनके टुकड़े निकल कर पृथिवीपर गिर गये थे जो ऐसे जान पड़ते थे मानो उसके शरीरके संसर्गसे पृथिवी रूप स्त्रीके हारके मोती ही टूट-टूट कर बिखर गये हों ॥६३॥ जिस प्रकार प्रातःकालके समय आकाशकी ओर जानेवाले सूर्यके हरे-हरे घोड़े

समुद्रके मध्यसे निकलते हैं उसी प्रकार शरीर पर लगे हुए शैवाल-दलसे हरे-हरे दिखने वाले घोड़े पानी चीर कर नदीके बाहर निकले ॥६४॥

चूँकि यह वन झरते हुए झरनोंके जलसे सुन्दर तथा बहुत भारी कल्पवृक्षसे युक्त था अतः स्थल जल और शाखाओं पर चलने वाले वाहनोंको इन्द्रने उनकी इच्छानुसार यथायोग्य स्थान पर ही ठहराया था ॥ ६५ ॥

उस वनकी प्रथम भूमिमें जिन-बालकका मुख देखनेके लिए कौतुक वश समस्त देवोंका समूह उमड़ रहा था अतः पास ही खड़े हुए काले-काले यमराजने दृष्टि-दोषको दूर करने वाले कज्जलके चिह्नकी शोभा धारण की थी ॥ ६६ ॥ तदनन्तर महादेवजीके जटाजूटके अग्रभागके समान पीली कान्तिको धारण करनेवाले उस सुवर्णाचलकी शिखर पर इन्द्रने चन्द्रमाकी कलाके समान चमचमाती हुई वह पाण्डुक शिला देखी जो कि ऐसी जान पड़ती थी मानो चूर्णकुन्तलोंके समान सुशोभित वृक्षोंसे श्यामवर्ण पृथिवी-देवीके शिर पर लीलावश लगाये हुए केतकीके पत्रकी शोभा ही प्रकट कर रही हो ॥ ६७ ॥ जिस प्रकार अर्हद्भक्त व्रती शुक्लध्यानके द्वारा संसारकी व्यथाको पारकर त्रिभुवन-की शिखर पर स्थित सिद्ध-शिलाको पाकर सुखी हो जाता है उसी प्रकार वह इन्द्र शुक्ल ऐरावत हाथीके द्वारा मार्ग पार कर इस सुमेरु-पर्वतकी शिखर पर स्थित अर्धचन्द्राकार पाण्डुक शिलाको पाकर बहुत ही संतुष्ट हुआ ॥ ६८ ॥

इस प्रकार महाकवि श्री हरिचन्द्र द्वारा विरचित धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्यमें सप्तम सर्ग समाप्त हुआ ।



अष्टम सर्ग

तदनन्तर इन्द्रने बड़ी शीघ्रताके साथ हिमालयके समान उत्तुङ्ग ऐरावत हाथीके मस्तकसे अष्टापदकी तरह श्री जिनेन्द्रदेवको उतारकर बड़े ही उत्साहके साथ इस पाण्डुक शिलापर रखे तथा विस्तृत एवं देदीप्यमान मणिमय सिंहासनपर विराजमान किया ॥१॥ यदि बाल मृणालके समान कोमल शरीरको धारण करनेवाला शेषनाग किसी तरह उस पाण्डुक शिलाका वेष रख इन मदनविजयी जिनेन्द्रदेवको धारण नहीं करता तो वह अन्य प्रकारसे समस्त पृथ्वीका भार उठाने की कीर्ति कैसे प्राप्त कर सकता था जब कि वह उसे अत्यन्त दुर्लभ थी ॥ २ ॥ क्या यह विशाल पुण्य है ? अथवा यश है ? अथवा अपने अवसरपर उपस्थित हुई क्षीरसमुद्रकी लहरें हैं ?—इस प्रकार जिनके विषयमें देवोंको सन्देह उत्पन्न हो रहा है ऐसी पाण्डुक शिलाकी जो सफ़ेद-सफ़ेद किरणें भगवान्के शिरपर पड़ रही थीं उनसे वह बहुत ही अधिक सुशोभित हो रहे थे ॥ ३ ॥

देवोंने वहाँ भगवानकी वह अभिषेक-विधि प्रारम्भ की जो कि उनके प्रभावके अनुकूल थी, वैभवके अनुरूप थी, अपनी भक्तिके योग्य थी, देश-कालके अनुरूप थी, स्वयं पूर्ण थी, अनुपम और निर्दोष थी ॥ ४ ॥ हे मेघकुमारो ! इधर वायुकुमारने कचड़ेका समूह दूर कर दिया है अतः आप लोग अच्छी तरह सुगन्धित जलकी वर्षा करो, और उसके बाद ही दिक्कुमारी देवियाँ मणियों एव मोतियोंके चूर्ण की रङ्गावलीसे शीघ्र ही चौक बनावें। इधर यह ऐशानेन्द्र स्वयं छत्र धारण कर रहा है, उसके साथकी देवियाँ मङ्गलद्रव्य उठावें और

ये सनत्कुमारस्वर्गके देव भगवान्के समीप बड़े-बड़े चञ्चल चमर लेकर खड़े हों। इधर ये देवियां अन्नपात्रोंको नैवेद्य, फल, फूल, माला, चन्दन धूप एवं अक्षत आदिसे सजाकर ठीक करें और इधर चूँकि समुद्रसे जल आने वाला है अतः व्यन्तर आदि देव उत्तम नगाडे एवं मृदङ्ग आदिको ठीक करें। हे वाणि! अपनी वीणा ठीक करो, उदास क्यों बैठी हो? हे तुम्बुरो! तुमसे और क्या कहूं? तुम तालमे बहुत निपुण हो और हे रङ्गाचार्य भरत! तुम रङ्गभूमिका विस्तार कर निष्कपट रम्भाको नृत्यके लिए शीघ्र प्रेरित क्यों नहीं करते'? इस प्रकार धारण की हुई सुवर्णकी छड़ीसे जिसका बलशाली भुजदण्ड और भी अधिक तेजस्वी हो गया है ऐसा द्वारपाल कुबेर इन्द्रकी आज्ञासे जिनेन्द्रदेवके जन्माभिषेकका कार्य योग्यतानुसार देवोंको सौंपता हुआ देव-समूहसे कह रहा था ॥५-९॥ उस समय अत्यधिक चन्दनसे मिली कपूर-परागके समूहकी सुगन्धिसे अन्धे भ्रमरोंकी पङ्क्तियां जहा-तहा ऐसी मालूम होती थी मानो जिनेन्द्र भगवान्का अभिषेक करनेकी इच्छा करनेवाले देवोंकी टूटती हुई बेड़ियोंके कड़े ही हों ॥ १० ॥

यह अतिशय विशाल [पक्षमें अत्यन्त बूढ़ा] एवं नदियोंका स्वामी [पक्षमे नीचे जाने वालोंमें श्रेष्ठ] समुद्र इस पर्वत पर कैसे चढ सकता है? यह विचार उसे उठाकर सुमेरु पर्वतपर ले जानेके लिए ही मानो देवोंने सुवर्णके कलश धारण करनेवाली पङ्क्ति बनाना शुरू की थीं ॥ ११ ॥ देवोंने अपने आगे वह क्षीरसमुद्र देखा जो कि ठीक उस वृद्ध व्यापारीकी तरह जान पड़ता था जो कि कापते हुए तरङ्ग रूप हाथोंसे नये-नये मणि, मोती, शङ्ख, सीप तथा मूंगा आदि दिखला रहा था, स्थूल पेट होनेसे जो व्याकुल था [पक्षमे जलयुक्त होनेसे पक्षियों द्वारा व्याप्त था] और इसी कारण जिसकी कोख

खुल गई थी [पक्षमें जिसका जल छलक-छलक कर किनारेसे बाहर जा रहा था] ॥ १२ ॥ देवोंने उस समुद्रको विजयाभिलाषी राजा की तरह माना था क्योंकि जिस प्रकार विजयाभिलाषी राजा हजारों वाहिनियों—सेनाओंसे युक्त होता है उसी प्रकार वह समुद्र भी हजारों वाहिनियों—नदियोंसे युक्त था, जिस प्रकार विजयाभिलापी राजा पृथुलहरिसमूह—स्थूलकाय घोड़ोंके द्वारा दिङ्मण्डलको व्याप्त करता है उसी प्रकार वह समुद्र भी पृथु लहरि समूह—बड़ी-बड़ी लहरोंके समूहसे दिङ्मण्डलको व्याप्त कर रहा था और जिस प्रकार विजयाभिलाषी राजा अकलुषतरवारिक्रोडमज्जनमहीध्र—अपनी उज्ज्वल तलवारके मध्यसे अनेक राजाओंका खण्डन करने वाला होता है उसी प्रकार वह समुद्र भी अकलुषतरवारिक्रोडमज्जनमहीध्र—अत्यन्त निर्मल जलके मध्यमें अनेक पर्वतोंको डुबाने वाला था ॥ १३ ॥ देव लोग निर्मल मोतियोंकी मालाओंसे युक्त जिन बड़े-बडे सुवर्ण-कलशों को लिये थे वे ऐसे जान पडते थे मानो शेषनागसे सहित मन्दरगिरि ही हो। उन कलशोंको लेकर जब देव समुद्रके पास पहुँचे तब उन्हें देख चञ्चल तरङ्गोंके बहाने समुद्र इस भयसे ही मानो काप उठा कि अब हमारा फिरसे भारी मन्थन होने वाला है ॥ १४ ॥

वचन वैखरोंके भाण्डार पालक नामक कौतुकी देवने जब देखा कि इन सब देवोंकी दृष्टि समुद्र पर ही लग रही है तब वह आदेशके बिना ही निम्नलिखित आनन्ददायी वचन बोलने लगा सो ठीक ही है क्योंकि अवसर पर अधिक बोलना किसे अच्छा नही लगता ? ॥ १५ ॥ निश्चित ही यह समुद्र जिनेन्द्र भगवान्के अभिषेकका समय जानकर उछलती हुई तरङ्गोंके छलसे आकाशमें छलांग भरता है परन्तु स्थूलताके कारण ऊपर चढ़नेमें असमर्थ हो पुनः नीचे गिर पड़ता है बेचारा क्या करे ? ॥ १६ ॥ मेरा तो ऐसा ख्याल है कि

चूँकि इस क्षीरसमुद्रने बड़वानलकी तीव्र पीड़ाको शान्त करनेके लिए रात्रिके समय चन्द्रमाकी किरणोंका खूब पान किया था इसलिए ही मानो यह मनुष्योंके हृदयको हरनेवाला हार और बर्फके समान सफेद हो गया है ॥ १७ ॥ ऐरावत हाथी, उच्चैःश्रवा घोड़ा, लक्ष्मी, अमृत तथा कौस्तुभ आदि मेरे कौन-कौनसे पदार्थ इन धूर्तोंने नहीं छीन लिये ? इस प्रकार तरङ्ग रूप हाथोंके द्वारा पृथिवीको पीटता हुआ यह समुद्र पागलकी भाँति पक्षियोंके शब्दके बहाने मानो रो ही रहा है ॥१८॥ शङ्खो द्वारा चित्र-विचित्र कान्तिको धारण करने वाली ये समुद्रके जलकी तरङ्गे वायुके वेगवश बहुत दूर उछल कर जो पुनः नीचे पड रही है वे ऐसी जान पड़ती है मानो आकाशमें फैले ताराओं को मोती समझ उनका संग्रह करनेके लिए ही उछल रही हों और लौटते समय तैरते हुए शङ्खोंके बहाने मानो ताराओंके समूहको लेकर ही लौट रही हों ॥ १९ ॥ अत्यन्त सघन वृक्षों और बड़-बड़े पर्वतोंसे युक्त [पक्षमे तरुण पुरुष एवं गुरुजनोंसे युक्त] किसी भी देशके द्वारा जिनका प्रचार नही रोका जा सका ऐसी समस्त नदियां [पक्षमे स्त्रियां] अपने आप इसके पास चली आ रही हैं अतः इस समुद्रका यह अनुपम सौभाग्य ही समझना चाहिए ॥ २० ॥ इधर देखो, यह बिजली सहित तमालके समान काला-काला मेघ जल लेने के लिए समुद्रके ऊपर आ लगा है जो ऐसा जान पड़ता है मानो चन्द्रमाकी किरणोंके समान सुन्दर शेषनागके पृष्ठ पर इच्छा करने वाले लक्ष्मी द्वारा आलिंगित कृष्ण ही हों ॥ २१ ॥ चूंकि यह समुद्र पृथिवीके हर्षसे विद्वेष रखने वाला है [पक्षमें खिले हुए कुमुदोंकी परागसे युक्त है] अतः संभव है कि कभी हमारी मातारूप समस्त पृथिवीको डुबा देगा इसलिए जलका वेग रोकनेके लिए ही मानो वृक्ष कतार बाँध कर इसका किनारा कभी नहीं छोड़ते ॥ २२ ॥ इस

समुद्रके किनारेके वनमें किन्नरी देवियां संभोगके बाद अपने उन्नत स्तन-कलशोंको रोमाञ्चित करती हुई चञ्चल हाथियोंके बच्चोंकी क्रीड़ासे खण्डित कवाकचीनी और इलायचीकी सुगन्धिसे एकत्रित भ्रमरोंकी गुंजारसे भरी वायुका सेवन करती हैं ॥२३॥ इधर, इस समुद्रकी लहरें अशोक-लताओंके पल्लवोंके समान सुन्दर मूंगाकी लताओंसे व्याप्त हैं अतः ऐसा जान पड़ता है मानो अतिशय तृष्णाके संयोगसे बढ़ी बड़वानलकी ज्वालाओंके समूहसे इसका शरीर जल ही रहा हो ॥२४॥ इधर मिली हुई नदीरूपी प्रौढ़ प्रियाके तटरूपी जघन प्रदेशके साथ इस समुद्रका बार-बार सम्बन्ध हो रहा है जिससे ऐसा जान पड़ता है मानो समीप ही शब्द करनेवाले जल-पक्षियोंके शब्दके छलसे संभोगकालमें होने वाले मनोहर शब्दका अभ्यास ही कर रहा हो ॥ २५ ॥ पालकके ऐसा कहने पर देवसमूह और समुद्रके बीच कुछ भी अन्तर नहीं रह गया था क्योंकि जिस प्रकार देवसमूह समस्त संसारके द्वारा अधृष्य—सम्माननीय था उसी प्रकार वह समुद्र भी समस्त संसारके द्वारा अधृष्य—अनाक्रमणीय था, जिस प्रकार देव-समूह मुख्यगाम्भीर्य—धीरताको प्राप्त था उसी प्रकार वह समुद्र भी मुख्यगाम्भीर्य—अधिक गहराईको प्राप्त था, जिस प्रकार समुद्र बहुल-हरियुत—बहुत तरङ्गोंसे युक्त था उसी प्रकार देवसमूह भी बहुलहरियुत अधिक इन्द्रोंके सहित था, और जिस प्रकार देवसमूह शोभायमान कङ्कणों—हस्ताभरणोंसे सहित था उसी प्रकार वह समुद्र भी शोभायमान कङ्कणों—जलकणोंसे सहित था ॥२६॥

देवोंके समूहने सुवर्णके बड़े-बड़े असंख्यात कलशोंके द्वारा जो क्षीरसमुद्रका जल उलीच डाला था उसने नष्ट होने वाले वरुणके नगरकी स्त्रियोंको चुल्लूमें समुद्र धारण करनेवाले अगस्त्य महर्षिकी याद दिला दी थी ॥ २७ ॥ जो सुवर्ण-कलश जिनेन्द्र भगवान्के

अभिषेकके लिए भरे हुए जलसे पूर्ण थे वे शीघ्र ही ऊपर आकाशमे जा रहे थे और जो खाली थे वे पत्थरकी तरह नीचे गिर रहे थे। इससे जिनेन्द्र भगवानके मार्गानुसरणका फल स्पष्ट प्रकट हो रहा था ॥ २८ ॥ उस समय क्षीरसमुद्रसे जल ले जानेवाले देवोंके समूह ने परस्पर मिली हुई भुजाओंकी लीलाके द्वारा प्रारम्भ किये मणिमय घटोंके आदान-प्रदानसे एक नूतन जलघटी यन्त्र बनाया था ॥ २९ ॥ जब पर्वतकी गुफाओंमे व्याप्त होने वाला भेरीका उच्च शब्द घन सुषिर और तत नामक बाजोंके शब्दको दबा रहा था, एवं नये-नये नृत्योंके प्रारम्भमें बजने वाली किङ्किणियोंसे युक्त देवाङ्गनाओंके मङ्गल-गानका शब्द जब सब ओर फैल रहा था तब इन्द्रोंने दर्शन-मात्रसे ही पापरूप शत्रुको जीतकर अपने गुणोंकी गरिमासे अनायास सिंहासन पर आरूढ होने वाले जिनेन्द्रदेवका सुवर्णमय कलशोंके जल से मानो त्रिलोकका राज्य देनेके लिए सर्वप्रथम ही अभिषेक किया ॥३०–३१॥ अत्यन्त सफेद कुन्दके समान उज्ज्वल पाण्डुक-शिला पर कुछ-कुछ हिलते हुए लाल मनोहर एव चिकने हाथ रूप पल्लवों से युक्त जिन-बालक ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो देवोंके द्वारा अमृतके समान मधुर जलसे सींचे गये पुण्य रूप लताके नवीन अङ्कुर ही हो ॥ ३२ ॥ यद्यपि उस समय जिनेन्द्रदेव बालक ही थे और जिस जलसे उनका अभिषेक हो रहा था वह मेरु पर्वतको सफ़ेदीके कारण मानो हिमालय बना रहा था और उस समस्त पृथिवीको एक साथ नहलानेमे समर्थ था फिर भी उसके द्वारा वे रञ्चमात्र भी क्षोभको प्राप्त नहीं हुए सो ठीक ही है क्योंकि जिनेन्द्रदेव का स्वाभाविक धैर्य अनिवार्य एव आश्चर्यकारी होता ही है ॥ ३३ ॥ चूँकि अमृत-प्रवाहका तिरस्कार करने वाले अर्हन्त भगवान्के स्नान जलसे देवोंने बड़ी भक्ति और श्रद्धाके साथ अपना-अपना शरीर

प्रक्षालित किया था इसीलिए संसारमें जराके सर्व साधारण होनेपर भी उन्होंने वह निर्जरपना प्राप्त किया था जो कि उन्हें अन्यथा दुर्लभ ही था ॥ ३४ ॥

तीर्थंकर भगवानके सुवर्णके समान चमकीले कपोलो पर, नृत्य करने वाली देवाङ्गनाओंके कटाक्षोंकी जो प्रभा पड रही थी उसे अभिषेकका बाकी बचा जल समझकर पोंछती हुई इन्द्राणीने किसका मुख हास्यसे युक्त न किया था ? ॥ ३५ ॥ वज्रकी सूचीसे छिदे दोनों कानोंमे स्थित निर्मल मणिमय कुण्डलोंसे वह ज्ञानके समुद्र जिन बालक ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो तत्त्व विद्याका कुछ रहस्य सीखनेके लिए बृहस्पति और शुक्र ही उनके समीप आये हो ॥३६॥ उस समय उनके वक्षःस्थलपर तीन लड़का मोतियोंका बड़ा भारी हार पहिनाया गया था उसके बहाने ऐसा मालूम होता था मानो प्रेमसे भरी पृथिवी, लक्ष्मी और शक्ति रूप तीन स्त्रियोंने शीघ्रताके साथ अपनी-अपनी वरणमालाएँ पहिनाकर उन्हीं एकको अपना पति चुना हो ॥३७॥ उनके मुख रूपी चन्द्रमाके समीप झरती अमृत-धाराका आकार प्रकट करनेवाली अनुपम मणियोंकी माला ऐसी जान पडती थी मानो अपनी निर्मल कान्तिके द्वारा चन्द्रमाको जीत कर कैद की हुई उनकी तारा रूप स्त्रियोंका समूह ही हो ॥ ३८ ॥ जिनके मणिमय कड़ोंके अग्रभागमे खचित रत्न ग्रहोंके समान सुशोभित है, जो सुवर्णकी चुस्त करधनीके मण्डलसे रमणीय है एव देवोंने आभूषण पहिनाकर जिन्हे अलकृत किया है ऐसे सुवर्णके समान पीतवर्णको धारण करनेवाले वे जिनेन्द्र ऐसे जान पड़ते थे मानो सुमेरुकी शिखरपर स्थित दूसरा ही सुमेरु हो ॥ ३९ ॥ निश्चित ही यह जिनेन्द्र इस भरतक्षेत्रमे धर्म तीर्थके नायक होंगे—यह विचार इन्द्रने उन्हे धर्मनाथ नामसे सम्बोधित किया सो ठीक ही है

क्योंकि बुद्धिके विकास रूप दर्पणमें समस्त पदार्थोंको देखने वाले इन्द्र किसी भी तरह मिथ्या वचन नहीं कहते ॥ ४० ॥

जब मृदङ्गकी कोमल ध्वनिके विच्छेद होने पर बढ़नेवाली कर्ण-कमनीय बांसुरी आदि बाजोंकी सुमधुर ध्वनिसे सुशोभित नृत्य हो रहा था, जब गन्धर्वोंका अमृतमय सगीत जम रहा था और जब नृत्य गीत तथा वादित्रकी सुन्दर व्यवस्था थी तब इन्द्रने आनन्दसे विवश हो भगवान धर्मनाथके आगे ऐसा नृत्य किया कि जिसमे सुंदर चारीके प्रयोगसे कच्छपका पीठ दलमला गया, घुमाई हुई भुजाओंसे दूर-दूरके तारे टूट-टूट कर गिरने लगे एव आवर्ताकार भ्रमणसे जिसमें लिङ्गाकार प्रकट हो गया ॥ ४१–४२ ॥

इस प्रकार अभिषेककी क्रिया द्वारा समस्त इन्द्र अपनी अनुपम भक्ति और शक्ति प्रकट करते हुए वास्तविक स्तुतियोंसे स्तुति करने योग्य श्री जिनेन्द्रकी इस प्रकार स्तुति करने लगे। स्तुति करते समय सब इन्द्रोंने हाथ जोड़ कर अपने मस्तकमे लगा रक्खे थे ॥४३॥ हे जिनेन्द्र ! जब कि चन्द्रमा मलिन पक्ष [कृष्ण पक्ष] को उत्तर पक्षमे [आगामी पक्षमे] रख कर उदित होता है तब आप समस्त मलिन पक्षको [दूषित सिद्धान्तको] पूर्व पक्षमे [शङ्का पक्षमे] स्थापित कर उदित हुए है, इसी प्रकार जब कि चन्द्रमा एक कला-रूपमे उदित होता है तब आप उदित होते ही सम्पूर्णमूर्त्ति है इस-लिए एक कलाका धारी प्रतिपदाका चन्द्रमा कान्तिके द्वारा जो आपके साथ ईर्षा करता है, वह व्यर्थ ही है ॥ ४४ ॥ हे वरद ! निर्मल ज्ञानके धारक मुनि भी आपकी स्तुति नहीं कर सकते यही कारण है कि हमलोगोंकी वाणी अनल्प आनन्द समूहके बहाने कुण्ठित सी होकर कण्ठरूप कन्दराके भीतर ही मानो ठिठक जाती है ॥४५॥ हे जिनेन्द्र !

कैसा अनोखा कौतुक है ? कि यद्यपि जनता अपने-अपने कार्यमें लीन है फिर भी ज्यों हीं आप चुम्बकके पत्थरकी तरह उसके चित्त का स्पर्श करते हैं त्यों ही उसके पूर्व जन्मसम्बन्धी पापरूपी लोहेकी मजबूत सांकलें तड़तड़ कर एक दम टूट जाती हैं ॥४६॥ हे निष्पाप ! आपके अपरिमित गुण-समूहका प्रमाण जाननेकी जिस किसीकी इच्छा हो वह पहले आकाश कितने अंगुल है यह नाप कर सरलतासे संख्याका अभ्यास कर ले ॥ ४७ ॥ हे मुनिनायक ! आप मनुष्य हैं यह समझ देवोंके बीच यदि कोई आपका अनादर करता है तो वह अद्वितीय मूर्ख है। सर्वज्ञ, निष्कलङ्क, संसारकी शङ्कासे रहित और भयभीत जनको शरण देने वाला आपके सिवाय इस त्रिभुवनमें दूसरा है कौन ? ॥४८॥ भगवन् ! इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं कि आपने अपने जन्मके पूर्व ही लोगोंको पुण्यात्मा बना दिया। क्या वर्षाकाल अपने आनेके पूर्व ग्रीष्म कालमें ही पहाड़ों पर वनोंको लहलहाते पल्लवोंसे युक्त नहीं कर देता ॥ ४९ ॥ हे जिन ! जो आपके [सम्यग्दर्शन रूप] धर्मको प्राप्त हुआ है उसे वह स्वर्ग कितना दूर है जो कि साधारण मनुष्यके द्वारा भी प्राप्त किया जा सकता है। हां, यदि आपके चारित्रको प्राप्त कर सका तो यह निश्चित है कि वह संसाररूप अटवीके दुर्लभ तीरको प्राप्त कर लेगा। [हे जिन ! जो आपके बैल पर सवार हुआ है उसे वह स्वर्ग कितना दूर है जो कि एक ही योजन चलने पर प्राप्त हो सकता है। हां, यदि यह जन आपके घोड़े पर सवार हो सका तो इस संसार रूप अटवी से अवश्य पार हो जावेगा] ॥५०॥ हे नाथ ! जिस प्रकार मरुस्थलमें प्याससे पीड़ित मनुष्योंके द्वारा दिखा स्वच्छ जलभृत-सरोवर उन्हें आनन्द देने वाला होता है, अथवा सूर्यकी किरणोंसे संतप्त मनुष्यों द्वारा दिखा छायादार सघन वृक्ष जिस प्रकार उन्हें सुख पहुँचानेवाला होता है अथवा चिरकालके दरिद्र मनुष्यों-द्वारा दिखा खजाना जिस प्रकार उन्हें आनन्ददायी होता है उसी प्रकार सौभाग्य वश हम भय-

भीत मनुष्योंके द्वारा दिखे हुए आप हम लोगोंगो आनन्द दे रहे हैं ।।५१।। हे जिनेन्द्र ! आपका चन्द्रोज्ज्वल यश इस पृथिवी और आकाश के बीच अपने गुणोंकी अधिकताके कारण बड़ी संकीर्णतासे रह रहा है। आप ही कहिये, घटके भीतर रखा हुआ दीपक समस्त मन्दिरको प्रकाशित करनेकी अपनी विशाल शक्ति कैसे प्रकट कर सकता है ? ।।५२।। हे क्षीणदोष ! गुण-समूहको ऊँचा उठाने वाले आपने ही तो इन गुणविरोधी दोषोंको कुपित कर दिया है। यदि ऐसा नहीं है तो आपकी बात जाने दो आपके अनुगामी किसी एक जनमें भी इन दोषोंके प्रेमका थोड़ा भी अंश क्यों नहीं देखा जाता ? ।। ५३ ।। सर्वथा एकान्तवाद रूप सघन अन्धकारके द्वारा जिसके समस्त पदार्थ आच्छादित हैं ऐसे इस संसाररूप घरमें केवलज्ञानरूप प्रकाशको करनेवाले आप ही एक ऐसे दीपक हैं जिसमें कि कामदेव पतंग-सुलभ लीलाको प्राप्त होगा—पतंगकी तरह नष्ट होगा ।।५४।। हे जिन ! यदि आपके वचनोंका आस्वादन कर लिया तो अमृत व्यर्थ है, यदि आपसे प्रार्थना कर ली तो कल्पवृक्षकी क्या आवश्यकता ? यदि आपका ज्ञान संसारको अन्धकारहीन करता है तो सूर्य और चंद्रमा से क्या लाभ ? ।।५५।। पूर्वकृत कर्मोंके उदयसे प्राप्त हुआ दुःख भी अर्हन्त देवकी भक्तिके प्रभाव वश शीघ्र ही अपनी शक्तिका विपर्यय कर लेता है—सुखरूप बदल जाता है। सूर्यकी तीक्ष्ण किरणोंसे भयंकर ग्रीष्म-ऋतु क्या जलके समीपस्थ वृक्षकी छायामें बैठे हुए मनुष्यके आगे शिशिर-ऋतु नहीं बन जाती ? ।। ५६ ।। इस प्रकार इन्द्रोंने जन्माभिषेकके समय सुमेरु पर्वत पर त्रिभुवनपति श्रीजिनेन्द्र देवकी भक्ति वश आराधना कर उन्हें पुनः माताकी गोदमे सौंपा और आप उनके निर्मल गुणोंकी चर्चासे रोमाञ्चित होते हुए अपने-अपने स्थान पर गये ।।५७।।

इस प्रकार महाकवि श्री हरिश्चन्द्र विरचित धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्यमें अष्टम सर्ग समाप्त हुआ।



नवम सर्ग

इस प्रकार देवोंके द्वारा अभिषिक्त [पक्षमें सींचा हुआ] घुँघुराले बालोंसे शोभित [पक्षमें मूल और क्यारीसे युक्त] सुवर्ण जैसी सुन्दर और नूतन कान्तिको धारण करने वाला [पक्षमें अद्भुत नूतन छायाको धारण करनेवाला] वह पुत्र रूपी वृक्ष [पक्षमे नन्दन बनका वृक्ष] पिताके लिए [पक्षमे बोने वालेके लिए] अतिशय सुखकर हुआ था ॥ १ ॥ इसमे क्या आश्चर्य था कि जिनेन्द्र रूपी चन्द्रमा ज्यों-ज्यों अविनाशी वृद्धिको प्राप्त होते जाते थे त्यों-त्यों आनन्द रूपी समुद्र सीमाका उल्लंघन कर समस्त संसारको भरता जाता था ॥२॥ 'संसार-समुद्रको तरनेवाले ऐसे विवेकी स्वामीको हम लोग पुनः कहां पा सकती हैं ?' यह सोचकर ही मानो बाल्यकालीन शरीर-संस्कारकी विशेष क्रियाएँ शीघ्रताके साथ उनकी सेवा कर रही थीं ॥ ३ ॥ जिस प्रकार ग्रहोंका मण्डल सदा ध्रुवताराका अनुसरण करता है उसी प्रकार तीनों लोकोंमें जो भी प्रभापूर्ण मनुष्य थे वे सब प्रभासे परिपूर्ण उसी एक बालकका अनुसरण करते थे ॥ ४ ॥ इन्द्र दिनकी तीनों संध्याओंमे उत्तमोत्तम मणिमय आभूषणोंसे एक उन्हीं प्रभुकी उपासना करता था सो ठीक ही है क्योंकि दुर्लभ सम्पदाको पाकर ऐसा कौन बुद्धिमान है जो कल्याणके कार्यमें प्रमाद करता हो ॥ ५ ॥ यद्यपि उस समय भगवान् बालक ही थे फिर भी मुक्ति रूपी लक्ष्मीने उत्कण्ठासे प्रेरित हो उनके कपोलोका निःसन्देह जमकर चुम्बन कर लिया था इसीलिए तो मणिमय कर्णाभरणकी किरणोंके बहाने उनके कपोलों पर मुक्ति-लक्ष्मीके पानका लालरस

लग गया था ॥६॥ जिस प्रकार सूर्य पूर्व दिशाकी गोदसे उठकर उदयाचलका आलम्बन पा पक्षियोंको चहचहाता और पृथिवीपर पद [किरण] रखता हुआ धीरे-धीरे चलता है उसी प्रकार वह बालक भी माताकी गोदसे उठकर पिताका आलम्बन पा किङ्किणी रूप पक्षियोंको वाचालित करता और पृथिवी पर पैर रखता हुआ धीमे-धीमे चलता था ॥ ७ ॥ चरणोंके द्वारा आक्रान्त पृथिवीपर चलते हुए वे भगवान् नखोंसे निकलनेवाली किरणोंके समूहसे ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो शेषनागको बाधा होने पर उसके कुटुम्बके लोग दौड़ आकर उनके चरणोंकी सेवा ही कर रहे हों ॥ ८ ॥ वह बाल जिनेन्द्र कुछ-कुछ कँपते हुए अपने अगले पैरको बहुत देर बाद धीरेसे पृथिवी पर रखकर चलते थे जिससे ऐसे जान पड़ते थे मानो सबका भार धारण करने वाली पृथिवीमें हमारे पैरका भार धारण करनेकी सामर्थ्य है या नहीं—यही देख रहे हों ॥९ ॥ पुत्रके शरीरका समागम पाकर राजा आनन्दसे अपने नेत्र बन्द कर लेते थे और उससे ऐसे जान पड़ते थे मानो गाढ़ आलिङ्गन करनेसे इसका शरीर हमारे भीतर कितना प्रविष्ट हुआ ? यही देखना चाहते हों ॥ १० ॥ उस पुत्रको गोदमें रख आलिङ्गन करते हुए राजा हर्षातिरेकसे जब लोचन बन्द कर लेते थे तब ऐसे मालूम होते थे मानो स्पर्शजन्य सुखको शरीर रूप घरके भीतर रख दोनों किवाड़ ही बन्द कर रहे हों ॥११॥ जिनकी अन्तरात्मामें तीनों लोक प्रतिबिम्बित हो रहे हैं ऐसे जिन-बालक अपने हाथों द्वारा धूलि-समूहको बिखेरनेवाले अन्य बालकोंके साथ ज्यों-ज्यों क्रीड़ा करते थे त्यों-त्यों दर्पणकी तरह वे निर्मल ही होते जाते थे—यह एक आश्चर्यकी बात थी ॥ १२ ॥

मयूरको अपना कलाप सुसज्जित करनेकी शिक्षा कौन देता ? अथवा हंसको लीलापूर्ण गति कौन सिखाता ? इसी प्रकार स्वा-

भाविक ज्ञानके भाण्डार स्वरूप उन जगद्गुरुको शिक्षा देनेके लिए कौन गुरु था ? वह स्वतः स्वयं बुद्ध थे ॥ १३ ॥ शस्त्र, शास्त्र और कलाके विषयमें विद्वानोंका जो चिरसंचित अहंकार था वह ज्ञानके बाजार रूप जिनेन्द्र देवके सामने आने पर स्वेदजलके बहाने उनके शरीरसे निकल जाता था ॥ १४ ॥

जब उन जिनेन्द्रने क्रम-क्रमसे बाल्य अवस्था व्यतीत कर समस्त अवयवोंमें बढ़नेवाली उन्नति धारण की तब वे सोलहों कलाओंसे युक्त चन्द्रमाकी शोभा पुष्ट करने लगे—पूर्ण चन्द्रमाके समान सुशोभित हो उठे ॥१५॥ जिस प्रकार मध्याह्नमें सूर्यका और भारी साकल्यसे महायज्ञकी अग्निका तेज बढ़ जाता है उसी प्रकार बाल्यावस्थाके व्यतीत होनेसे भगवानका स्वाभाविक तेज कुछ अपूर्व ही हो गया था ॥ १६ ॥ पर्वतको उठानेवाला रावण उसीके लिए आनन्ददायी हो सकता है जिसने कि पृथिवीका भार धारण करनेवाला शेषनाग नहीं देखा और जिसने तीनों जगत्का भार धारण करनेवाले उन धर्मनाथ जिनेन्द्रको देख लिया था उसे वह दोनों ही आश्चर्यकारी नहीं थे ॥१७॥ चक्र, कमल और शङ्ख आदि चिह्नोंके देखनेसे उत्पन्न अपने पतिके निवास-गृहकी शंकामें ही मानो लक्ष्मी नूतन पल्लवके समान लाल लाल दिखने वाले उनके चरण-कमलोंके युगलको नहीं छोड़ रही थी ॥१८॥ जिनके मध्यमें पादांगुष्ठके नखोंसे उठनेवाली किरणोंरूपी श्रेष्ठ छड़ी विद्यमान है ऐसी उनकी दोनों जंघाएं सुवर्ण-निर्मित खम्भोंसे सुशोभित नूतन धर्म लक्ष्मीके झूलाकी हँसी उड़ा रही थीं ॥ १९ ॥ उनकी दोनों जाँघें ऐसी जान पड़ती थीं मानो जिनका वेग और बल कोई नहीं रोक सका ऐसे तीनों लोकोंके नेत्र और मन रूपी हाथीको बाँधनेके लिए ब्रह्माने दो खम्भे ही बनाये हों ॥ २० ॥ सिंहके समान अत्यन्त उन्नत और विशाल नितम्बबिम्ब [पक्षमें

पर्वतका कटक] को धारण करनेवाले उन जिनेन्द्र देवके द्वारा दर्शन मात्रसे ही मनुष्योंके पापरूपी मदोन्मत्त हाथियोंकी घटा विघटा दी जाती थी ।। २१ ।। ऐसा जान पड़ता है कि दानसे उत्कट धर्मरूपी हाथी सतृप्त होकर पहले ही श्रीजिनेन्द्रकी नाभिरूप जलाशयमें जा घुसा था । यदि ऐसा न होता तो उस समय प्रकट होनेवाली रोम-राजिके बहाने तट पर उसके मद-जलकी धारा क्यों होती ? ।।२२।। यहां पर अन्तःपुरकी श्रेष्ठ सुन्दरी लक्ष्मी अपने गुण-रूपी कञ्चुकियोंके साथ फिर चिरकाल तक निवास करेगी—इस प्रकार ब्रह्मा उन दयालु भगवान्के हितकारी विचारको मानो पहलेसे ही जानता था इसीलिए तो उसने उसका वक्षःस्थल खासा चौड़ा बनाया था ।।२३।। यद्यपि भगवान्की भुजा एक ही शिर [कन्धा] धारण करती थी फिर भी चूंकि उसने तीनों लोकोंका भार अनायास धारण कर लिया था अतः केवल पृथिवीका भार धारण करनेके लिए जिसके हजार शिर व्यापृत हैं ऐसे शेषनागको उसने दूरसे ही अधस्कृत—तिरस्कृत [पक्षमें नीचे] कर दिया था ।। २४ ।। जो अपनी तीन रेखाओंके द्वारा मानो यही प्रकट कर रहा है कि मेरी सौन्दर्य-सम्पति तीनों लोकोंमें अधिक है ऐसे भगवान्के कण्ठको देख बेचारा शङ्ख लज्जासे ही मानो जीर्ण-शीर्ण हो समुद्रमे जा डूबा ।। २५ ।। यह निश्चित था कि भगवान्का मुखचन्द्र सर्वथा निरुपम है फिर भी चन्द्रमा उसकी बराबरी रूप भयंकर पाप कर बैठा । यही कारण है कि वह अब भी उदित होते समय तो सुवर्ण-जैसी कान्ति वाला होता है पर कुछ समयके बाद ही उस भयकर पापके कारण कोढ़से सफेद हो जाता है ।। २६ ।। यमुना-जलके तरङ्गोंके समान टेढ़े-मेढ़े सचिक्कण काले केश भगवान्के मस्तक पर ऐसे सुशोभित होते थे मानो श्रेष्ठ सुगन्धिसे युक्त मुख-रूप प्रफुल्लित कमल पर चुपचाप बैठे हुए भ्रमरोंके समूह ही हों ।।२७।।

वह धर्मनाथ पराक्रम और सौकुमार्य दोनोंके आधार थे मानो ब्रह्माने वज्र और कमल दोनोंका सार लेकर ही उनकी रचना की हो। इन्हें सर्व प्रकारसे योग्य देख पिता महासेनकी न केवल पृथिवीका ही कर [टैक्स] ग्रहण करानेकी इच्छा हुई किन्तु स्त्रीका भी ॥ २८ ॥ नय और शीलसे सुशोभित नवयौवनसम्पन्न पुत्रको राजाने युवराज पद पर नियुक्त किया पर उन्होंने यह नही समझा कि यह तो पहलेसे ही त्रिभुवनकी राज्य-सम्पदाके भाण्डार हैं ॥ २९ ॥ चूंकि युवराज धर्मनाथने अपने गुणोंके द्वारा ही बांध कर अन्य समस्त राजाओंको अपनी आज्ञाके आधीन कर लिया अतः राजा महासेन केवल अन्तःपुरकी श्रेष्ठ सुन्दरियोंके साथ क्रीड़ामें तत्पर रहने लगे ॥३०॥

एक दिन पुत्री शृङ्गारवतीके स्वयवरमे कुमार धर्मनाथको बुलानेके लिए विदर्भदेशके राजा प्रतापराजके द्वारा भेजा हुआ दूत महाराज महासेनके घर आया ॥ ३१ ॥ द्वारपालने राजाको उसकी खबर दी। अनन्तर सभागृहके भीतर प्रवेश कर उसने नमस्कार किया और भौंहोंके भेदसे अवसर पा कानोमे अमृत भरानेवाला सदेश कहा ॥ ३२ ॥ साथ ही महाराज महासेनके समीप बैठे आकारसे कामदेवको जीतनेवाले कुमार धर्मनाथको देख उस दूतने जगत्के मनको लूटनेमे निपुण चित्रपट यह विचार कर दिखलाया कि यह इनके सौन्दर्यके अनुकूल होगा ॥ ३३ ॥ उस चित्रपट पर नेत्रोंके लिए अमृतके धारागृहके समान कन्याका अद्भुत प्रतिबिम्ब देख यथार्थ में यह कन्या क्या ऐसी होगी ? इस प्रकार राजा महासेन विचार ही कर रहे थे कि उनकी दृष्टि अचानक सामने लिखे हुए इस श्लोक पर पड़ी ॥ ३४ ॥ इस मृगनयनीका वास्तविक स्वरूप लिखनेके लिए अन्य मनुष्य कैसे समर्थ हो सकता है ? जिसका कि प्रतिरूप बनानेमें ब्रह्मा भी जड़ है। एक बार जो वह इसे बना सका था वह केवल

युक्ताक्षर न्यायसे ही बना सका था ॥ ३५ ॥ यह श्लोक देख राजाका मन बहुत ही विस्मित हुआ, वह कभी धर्मनाथके शरीरकी ओर देखते थे और कभी चित्रलिखित कन्याकी ओर। अन्तमें उस कन्याके सौन्दर्यरूप मदिराके पानसे कुछ-कुछ शिर हिलाते हुए इस प्रकार सोचने लगे ॥ ३६ ॥ जो स्वप्रविज्ञानका अविषय है, जहाँ कवियों के भी वचन नहीं पहुँच पाते और मनकी प्रवृत्ति भी जिसके साथ सम्बन्ध नहीं रख सकती वह पदार्थ भी भाग्यके द्वारा अनायास सिद्ध हो जाता है ॥ ३७ ॥ जगत्के नेत्रोंको प्यारा यह युवराज कहाँ ? और तर्कका अविषय यह कन्यारत्न कहाँ ? अतः असंभव कार्योंके करनेमें सामर्थ्य रखनेवाले विधाताको सर्वथा नमस्कार हो ॥ ३८ ॥ स्वयंवरमें वरकी इच्छा करनेवाली यह कन्या निश्चयसे इनको छोड़-कर दूसरेकी इच्छा नहीं करेगी, क्योंकि कौमुदी सदा आनन्द देने-वाले चन्द्रमाको छोड़कर क्या कभी अन्यका अनुसरण करती है ? कभी नहीं ॥ ३९ ॥ कन्यामें बुद्धिमान पुरुष यद्यपि कुल, शील और वयका विचार करते हैं किन्तु उन सबमें वे सम्बंधको पुष्ट करनेवाला प्रेम ही विशेष मानते हैं ॥ ४० ॥ चूँकि यह युवराज इस कन्याके प्रत्येक अंगका सौन्दर्य देखनेमें उत्सुक है अतः मालूम होता है कि यह इसे चाहता है। यही क्यों ? रागसे भरी हुई दृष्टिसे भी तो यह उस हाथीकी तरह जान पड़ता है जो कि भीतर रुके हुए मदके गर्वसे उत्तेजित हो रहा है ॥४१॥ ऐसा विचार कर राजाने कर्तव्यका निर्णय किया और विवाहके योग्य पुत्रको सेनासहित बड़े आदरके साथ विदर्भराजके द्वारा पालित नगरीकी ओर भेजा ॥ ४२ ॥ इस प्रकार राजा महासेन और दूतने जिन्हें प्रेरणा दी है तथा शृङ्गारवतीके रूप और कामने जिन्हें शीघ्रता प्रदान की है ऐसे धर्मनाथ युवराज सेना और हर्षसे युक्त हो विदर्भ देशकी ओर चले ॥ ४३ ॥

उस समय वह धर्मनाथ हाथों और केशोंसे विभूषित शोभाको धारण कर रहे थे, और सुवर्णके श्रेष्ठ कड़े उनके हाथोंमें चमक रहे थे अतः स्त्रियोंके हितको पूर्ण करनेमे समर्थ सुन्दर वेष धारण कर रहे थे। [पक्षमें वह धर्मनाथ तलवारसे विभूषित शोभाको धारण कर रहे थे और जहाँ-तहाँ ब्राह्मणादि वर्णोंसे युक्त पड़ाव डालते थे अतः शत्रुओंके मनोरथको पूर्ण करनेमें असमर्थ भयंकर सेना साथ लिये थे] ॥ ४४ ॥ चूँकि वह धर्मनाथ दानभोगवान्—दान और भोगोंसे युक्त थे [पक्षमे सदानभोगवान्—सर्वदा आकाशगामी देवोंसे युक्त थे] और गुरु—पिता [पक्षमें बृहस्पति] की आज्ञासे गजेन्द्र [पक्षमें ऐरावत] पर आरूढ हो मार्गमें जा रहे थे अतः हजार नेत्रोंसे रहित इन्द्रकी सुन्दर शोभाका अनुकरण कर रहे थे ॥ ४५ ॥ उस समय प्रस्थानको सूचित करनेवाला भेरीका वह भारी शब्द सब ओर बढ़ रहा था जो कि पृथिवीको मानो कँपा रहा था, आकाशको मानो खण्डित कर रहा था, दिशाओंको मानो निगल रहा था, पर्वतोंको मानो विचलित कर रहा था और संसारको मानो खींच रहा था ॥४६॥ उसी समय आकाशमें शङ्खका शब्द गूँजा जो प्रारम्भ किये जाने वाले मंगलरूप शास्त्रके ओंकारके समान जान पड़ता था और आकाशसे पुष्प-वर्षा हुई जिसके कि छलसे ऐसा जान पड़ा मानो कान्ता शृङ्गारवतीने प्रभुके गलेमें वरमाला ही डाली हो ॥ ४७ ॥ जिस प्रकार विज्ञ पुरुष द्वारा उच्चरित और जस् आदि विभक्तियोंको धारण करनेवाले एवं उपमा आदि अलंकारोंसे युक्त निर्दोष शब्द चित्तमे चमत्कार उत्पन्न करनेवाले अर्थके पीछे जाते हैं उसी प्रकार राजाके द्वारा प्रेरित अनेक प्रतापी राजा अच्छे-अच्छे आभूषण धारण कर साध्यकी सिद्धिके लिए युवराज धर्मनाथके पीछे-पीछे गये ॥ ४८ ॥ नदी-पर्वत अथवा दोनों ही मार्गोंमे चलनेवाले जो भद्र मन्द अथवा मृग जातिके

हाथी थे वे सब एकत्रित हो युवराजके आगे ऐरावतके वंशज-से हो रहे थे ।। ४९ ।। चित्र-विचित्र क़दम भरनेवाले काम्बोज, बानायुज, बाह्लिक और पारसीक देशके जो घोड़े थे वे मार्गमें नृत्य-निपुण नटोंकी तरह प्रभुकी दृष्टिरूपी नर्तकीको नचा रहे थे ।। ५० ।। उस समय वह धर्मनाथ ठीक रामचन्द्रके समान जान पड़ते थे। क्योंकि जिस प्रकार रामचन्द्रजी अतिशय सुन्दरी सीताको नेत्रोंके द्वारा दर्शनीय सुनकर बड़ी उत्सुकताके साथ सुधामलङ्कामयमान हो रहे थे—उत्तमोत्तम महलोंसे युक्त लङ्का नगरी को जा रहे थे उसी प्रकार वह धर्मनाथ भी सुधाम् सुन्दरीम् नेत्रपेयां निशम्य अलंकामयमान थे—सुन्दरी-शृङ्गारवती रूपी अमृतको नेत्रोंके द्वारा पान करनेके योग्य सुनकर बड़ी उत्सुकताके साथ उसकी इच्छा कर रहे थे, जिस प्रकार रामचन्द्र हरिसेना—वानरोंकी सेनासे युक्त होकर दक्षिण दिशाकी ओर जा रहे थे उसी प्रकार धर्मनाथ भी हरिसेना—घोड़ों की सेनासे युक्त होकर दक्षिण दिशाकी ओर जा रहे थे और जिस प्रकार रामचन्द्र अस्तदूषण थे—दूषण नामक राक्षसको नष्ट कर चुके थे उसी प्रकार धर्मनाथ भी अस्तदूषण थे—मद मात्सर्य आदि दूषणोंको नष्ट कर चुके थे ।।५१।। निश्चित था कि कल्पवृक्ष, चिन्तामणि और कामधेनु दानरूप समुद्रके तट पर ही डूब गये थे, यदि ऐसा न होता तो याचकजन धनके लिए स्तोत्रों द्वारा इन्हीं एकके यशकी क्यों स्तुति करते ? ।।५२।। रत्नमयी पृथिवीमें जिनके सुन्दर शरीरोंका प्रतिबिम्ब पड़ रहा है ऐसे भगवान् धर्मनाथके सैनिक उस समय ऐसे जान पड़ते थे मानो अपनी सेवाका अवसर जान कर रसातलसे भवनवासी देव ही निकल रहे हों ।। ५३ ।। नगरकी स्त्रियाँ ऊपर उठाई भुजाओंके अग्रभागसे गिराये हुए जिन लाजोंसे उन धर्मनाथकी पूजा कर रही थीं वे ऐसे जान पड़ते थे मानो सौन्दर्य-

रूप सरोवरकी तरङ्गोंके जलकणोंका समूह ही हों अथवा कामदेव रूपी उन्नत वृक्षके फूल ही हों ॥ ५४ ॥ जीव, नन्द, जय—इस प्रकार वृद्धा स्त्रियों द्वारा जिन्हें उच्चस्वरसे आशीर्वाद दिया जा रहा है ऐसे श्रेष्ठ युवराज धर्मनाथ शीघ्र ही नगरके द्वार तक पहुँचे मानो अपनी सिद्धिके द्वार तक ही पहुँचे हों ॥ ५५ ॥ जो आगे और पीछे चार अङ्गोंके द्वारा विस्तृत है तथा मध्यमें मार्गकी संकीर्णतासे कृश है ऐसी उस सेनाको प्रियाकी तरह देखकर धर्मनाथ अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥५६॥ मकानोंकी तरह उत्तम कलशोंसे सुशोभित [पक्षमे उत्तम गण्डस्थलोंसे युक्त], बनी हुई नाना प्रकारकी वलभियों-अट्टालिकाओंसे प्रसिद्ध [पक्षमें नाना प्रकारके बलसे भयंकरता धारण करने वाले] और उत्तुङ्ग प्राकारसे युक्त [पक्षमे सागौनके वृक्षके समान ऊँचे] हाथियोंसे वह सेना ऐसी जान पड़ती थी मानो वियोगसे दुखी हो नगरीसे बाहर जानेवाले युवराजके पीछे-पीछे ही जा रही हो ॥ ५७ ॥ जब कि युवराजका मुखचन्द्र अतिशय आनन्ददायी था और वह नगर कानन—कुत्सित मुखको धारण करनेवाला था [पक्षमे कानन—वनको शोभा धारण करने वाला था]। युवराज सत्पुरुषोंके आश्रय थे परन्तु वह नगर सदनाश्रय था—सत्पुरुषोंका आश्रय नही था [पक्षमे सदनों-भवनोंका आश्रय था] इस प्रकार वेगपूर्वक मार्गमे जानेवाले धर्मनाथ और उस रत्नसंचय नगरमें बड़ा अन्तर था—क्षेत्रकृत और गुणकृत—दोनों ही प्रकारका अन्तर था ॥ ५८ ॥ उस समय सैनिकोंके चलने पर तत्काल गिरनेके कारण लाल-लाल दिखनेवाली हाथियोंकी मदस्रुति ऐसी जान पड़ती थी मानो निरन्तर धूल उड़ती रहनेसे पृथिवी समाप्त हो चुकी हो और शेषनागके फणाके मणियोंकी किरणोंका समूह ही प्रकट हो रहा हो ॥ ५९ ॥ यदि भारसे झुकी हुई इस पृथिवीका हाथी

दानरूप जलसे अभिषेक न करते तो समस्त पृथिवीके कम्पित होनेसे समस्त समुद्र क्षुभित हो उठते और सारे संसारमे उपद्रव मच जाता ॥ ६० ॥ खुरोंके द्वारा प्रायः पृथिवी तलका स्पर्श न कर घोड़े आकाशमे चलनेका जो अभ्यास कर रहे थे उससे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो मत्त मातङ्गों—हाथियों [पक्षमे चाण्डालों] की सेनाके भारसे पृथिवीको अस्पृश्य ही समझ रहे हों ॥ ६१ ॥ लीलापूर्वक गमन करते समय ज्यों-ज्यों घोडे नखके अग्रभागसे पृथिवीको खुरचते थे त्यों-त्यों उड़ती हुई धूलिके बहाने उसके रोमाञ्च निकल रहे थे ॥ ६२ ॥ भीतर पड़ी लोहेकी लगामके कारण निकलते हुए लार रूप जलसे जिनके मुख फेनिल हो रहे हैं ऐसे पवनके समान वेगशाली घोडे ऐसे जा रहे थे मानो शत्रुओंके यशका पान ही कर रहे हों ॥ ६३ ॥ जिसके दोनों ओर बड़-बड़ चञ्चल चमर ढोले जा रहे हैं ऐसी छलांग भरनेको उद्यत घोड़ोंकी पङ्क्ति इस प्रकार जान पडती थी मानो आकाशमार्गमे गमन करनेका ध्यान आनेसे उसके पङ्ख ही निकल आये हों ॥ ६४ ॥ उन चलते हुए वीर घोड़ोंके समीप जो मयूरपत्र-निर्मित छत्रोंका समूह था वह किसी समुद्रकी तरङ्गों द्वारा उछाले हुए शैवाल-समूहकी शोभाको प्राप्त हो रहा था ॥ ६५ ॥ जब बलपूर्वक समागम करनेसे निकले हुए रज—आर्तवसे स्त्रियोंके अम्बर—वस्त्र अदर्शनीय हो जाते हैं तब जिस प्रकार पुरुष अनुराग युक्त होनेपर भी दोषोंके भयसे उनकी ओर कर—हाथ नहीं फैलाता है उसी प्रकार जब युवराज धर्मनाथका बल—सेनाके संसर्गसे उड़नेवाली रज—धूलिसे अम्बर—आकाश अदर्शनीय हो गया तब सूर्यने स्वयं रक्त—लालवर्ण होने पर भी दोषा—रात्रिके भयसे दिशाओंकी ओर अपने कर—किरण नहीं फैलाये ॥ ६६ ॥ सिन्धु, गङ्गा एवं विजयार्धके मध्यवर्ती समस्त देशों तथा सिंहलद्वीपसे

सम्मुख आने वाली सेना रूपी नदियोंसे भरा हुआ वह श्रीधर्मनाथका सेना रूपी समुद्र अत्यन्त दुर्धर हो गया था। उसका ध्यान आते ही राजाओं और पर्वतोंके वज्रमय पंजर भयसे चञ्चल हो उठते थे ॥ ६७ ॥

लोग अपने आगे वह गङ्गा नदी देख बहुत प्रसन्न हुए जो कि संताप दूर करनेके लिए त्रिभुवनमे विहार करनेके खेदसे ही मानो सफ़ेद-सफ़ेद हो रही है और स्वामी धर्मनाथकी कीर्त्तिकी सहेलीकी तरह जान पडती है ॥६८॥ जिस गङ्गा नदीके जलका प्रवाह पृथिवीमें भी अत्यन्त दुस्तर आवर्तों और तरङ्गोंसे कुटिल होकर चलता है मानो महादेवजीके जटाजूटरूप गुफाओंमे संचार करते रहनेके कारण उसे वैसा संस्कार ही पड़ गया है ॥६९॥ वह गङ्गा निकटवर्ती वनों की वायुसे उठती हुई तरङ्गों द्वारा फैलाये हुए फेनसे चिह्नित है अतः हिमालय रूपी नागराजके द्वारा छोड़ी हुई लम्बी काँचुलीके समान जान पड़ती है ॥७०॥ जो गङ्गानदी दूधके समान सफेद कान्तिवाली है जिससे ऐसी जान पड़ती है मानो विष्णुके चरण-नखोंकी किरणों से ही व्याप्त है अथवा महादेवजीके मस्तक पर चन्द्रमाकी किरणोंसे ही लालित है अथवा हिमालयकी ऊँची-ऊँची बर्फकी चट्टानोंसे ही मिश्रित है ॥७१॥ जो गङ्गानदी ऐसी सुशोभित होती है मानो रत्नोंके समूहसे खचित पृथिवीकी करधनी ही हो, अथवा आकाशसे गिरी निर्मल मोतियोंकी माला ही हो, अथवा शब्दसहित खींची हुई ऐरावत हाथीकी चांदीकी साकल ही हो ॥७२॥ जिस गङ्गानदीके जलका सफेद प्रवाह ऐसा जान पड़ता है मानो सूर्यके संतापसे रात-दिन जलनेवाली औषधियोंकी अग्निसे तपे हुए हिमगिरिके स्वेदका विशाल प्रवाह ही हो ॥ ७३ ॥ तीनों जगत्मे व्याप्त रहनेवाली जिस तृष्णा रूप नदीके तटमें ही साधारण मनुष्योंकी बात जाने दो, सार्वभौम—

चक्रवर्ती भी निश्चित डूब जाते हैं उस तृष्णा नदीको जिस प्रकार संतोषी मनुष्य अतिशय विस्तृत बुद्धिके द्वारा पार कर लेता है उसी प्रकार तीनों जगत्मे विहार करनेवाली जिस गङ्गा नदीके तटमें ही साधारण जीवोंकी बात जाने दो सार्वभौम—दिग्गज भी डूब जाता है उस गङ्गाको भी धर्मनाथने काष्ठ-निर्मित नौकाके द्वारा पार कर लिया था ।।७४।। लीलापूर्वक तैरते हुए ऊँचे-ऊँचे हस्तिसमूहके कपोल-प्रदेशसे निर्गत मद-जलसे गङ्गाका पानी कज्जलके समान काला कर दिया गया था अतः वह यमुनाके जलका संदेह उत्पन्न कर रहा था ।।७५।। उस विशाल गङ्गाको कितने ही सैनिकोंने भुजाओंसे, कितने ही सैनिकोंने हाथीरूप पुलोंसे और कितने ही सैनिकोंने नौकाओंसे पार किया । इस प्रकार सभी सैनिकोंने इच्छानुसार प्रतिज्ञाकी तरह शीघ्र ही गङ्गाको पार किया ।। ७६ ।। चूंकि धर्मनाथकी सेना उत्साह-शील एवं असंख्यात मार्गोंसे गमन करनेवाली थी और गङ्गा नदी जडात्मक—आलस्य पूर्ण [पक्षमे जलपूर्ण] एवं तीन मार्गोंसे ही गमन करने वाली थी अतः सेनाके द्वारा गङ्गानदी पीछे क्यों न छोड़ दी जाती—पराजित क्यों न की जाती ? ।।७७।। इस प्रकार श्री धर्मनाथ तीर्थंकर ऊँचे-ऊँचे हाथियोंके द्वारा पर्वतोंको, कपड़ेके तम्बुओंसे समस्त नगरियोंको, फहराती हुई पताकाओंसे बड़े-बड़े वनों और सेनाओंके द्वारा नदियोंको विडम्बित करते हुए आगे बढ़े ।।७८।।

जो बड़े-बड़े पर्वत मार्गको मिथ्या कर रहे थे एव अपनी शिखरों के विस्तारसे दिशाओं और आकाशका दर्शन रोक रहे थे उन ऊँचे-ऊँचे गिरिराजोंको खण्डित कर उत्तम सेनासे युक्त धर्मनाथ जिनेन्द्र अपना मार्ग सरल करते हुए आगे-आगे जा रहे थे [जो स्वयं प्रमाण ज्ञानसे हीन होकर जैनदर्शनको मिथ्या बतला रहे थे और अपने मायाचारसे दिगम्बर सिद्धान्तको रोक रहे थे उन समस्त प्रकाण्ड

विद्वानोंको परास्त कर उत्तम गुणस्थानोंके बलसे युक्त श्री धर्मनाथ जिनेन्द्र अपना मार्ग सरल करते हुए आगे जा रहे थे] ॥७९॥ इस प्रकार श्री धर्मनाथ स्वामी अत्यन्त उन्नत स्तनोंके शिखररूप आभूषणोंसे युक्त स्त्रियोंके समान सुशोभित, अत्यन्त उन्नत प्राकार रूप आभूषणोंसे युक्त नगरियोंका आश्रय लेते, पर्वतों पर, वनमें खड़े हुए शत्रुओंके समान सुशोभित स्त्रियोंकी आसक्तिको प्राप्त किन्नरोंको देखते और मगर-मच्छसे सहित नदियोंके प्रवाहके समान कर-टैक्ससे युक्त देशोंका उल्लङ्घन करते हुए उस विन्ध्य गिरिकी भूमिमें जा पहुँचे जो कि किसी प्रेमवती स्त्रीकी तरह मदन-काम [पक्षमें मदनवृक्ष] से युक्त थी ॥८०॥

इस प्रकार महाकवि श्री हरिचन्द्र विरचित धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्यमें नवम सर्ग समाप्त हुआ ।



दशम सर्ग

तदनन्तर श्रीधर्मनाथ स्वामीने वह विन्ध्यपर्वत देखा जो कि ऊपरसे रथके मार्गकी याचना करनेके लिए ही मानो चरणोंमे झुके हुए सूर्यके द्वारा सेवित हो रहा था ॥१॥ उस पर्वतका ऊर्ध्वभाग ऊँची उठी शिखरोंकी परम्परासे व्याप्त था और अधोभाग बड़ी-बड़ी गुफाओंसे। अतः ऐसा जान पड़ता था मानो विधाताने आधा भाग पृथिवीका और आधा भाग आकाशका लेकर ही उसे बनाया हो ॥ २ ॥ वह पर्वत बड़ी-बड़ी नदियोंको जन्म देने वाला था एवं दान और भोगसहित देव स्वर्गसे आकर सदा उस पर्वत पर विहार किया करते थे ॥ ३ ॥ रात्रिके समय उस पर्वतकी शिखरों पर जो नक्षत्रों का समूह लग जाता है उसके छलसे ऐसा जान पड़ता है मानो उस पर्वतने अपनी वृद्धिको रोकने वाले अगस्त्य महर्षिका मार्ग खोजनेके लिए उत्सुक हो हजार नेत्र ही खोल रक्खे हों ॥४॥ वह पर्वत यद्यपि बड़े-बड़े प्रस्थों-मापक पदार्थोंसे सहित था फिर भी प्रमाणरहित था [पक्षमें बहुत ऊँचा था], बड़े-बड़े पादों—चरणोंसे सहित था फिर भी नहीं चलनेवालोंमें श्रेष्ठ था [पक्षमे श्रेष्ठ पर्वत था], वनोंसे सहित था फिर भी आश्रित पुरुषोंके लिए अवन था, वन नहीं था [पक्षमें उनका रक्षक था] ॥ ५ ॥ वह पर्वत कामदेवकी निवास-भूमि है, वहां आमोंका सुन्दर वन देख रससे अलसाई देवाङ्गना मान छोड़ कर आनेवाले पतिके साथ सहसा रमणकी इच्छा करने लगती थी ॥ ६ ॥ वह पर्वत कहीं सिंहोंके द्वारा उकेरी हुई हाथियोंके चर्मसे सहित था, कहीं गुहाओंसे युक्त था, कहीं शिवा-शृगालियोंको आनन्द

दे रहा था और कहीं साँपों पर प्रहार करनेमें उत्कट नीलकण्ठोंसे संयुक्त था इस प्रकार रुद्रपना प्रकट कर रहा था क्योंकि रुद्र भी तो हाथियोंका चर्म ओढ़ते हैं, गुह-कार्तिकेयसे सहित हैं, शिवा—पार्वतीके लिए आनन्द देने वाले हैं और सर्पोंके प्रहारसे उत्कट नीलकण्ठ-कृष्णकण्ठ वाले हैं ॥७॥ अनन्त आकाशमें विहार करनेसे थके हुए सूर्यके घोड़े जिस पर्वतके नागकेशर, नारंगी, लौंग, जामुन और जिमरियोंके क्रीडावनोंसे सुशोभित शिखरों पर सदा आश्रय लेते हैं ॥८॥ जिस पर्वतकी शिखर पर लतागृहोंसे सुशोभित पृथिवी में स्थित हस्तिनी सहित हाथीको देखकर औरकी तो बात क्या, मुनि-राज भी कामके खेदसे अपनी प्रियाका स्मरण करने लगते हैं ॥९॥ मेघमण्डलमे घिरे हुए उस पर्वतके मध्य भागसे वप्रक्रीड़ाके प्रहारके समय हाथियोंके दाँतोंका प्रबल आघात पा चमकती हुई बिजलियोंके बड़े-बड़े खण्ड गिरने लगते थे जो ऐसे जान पड़ते थे मानो पक्षच्छेद के समय उत्पन्न घावोंके मध्य उलझे हुए वज्रके टुकड़े ही हों ॥१०॥ यदि मेरे, लवण-समुद्रको आनन्द देने वाली नर्मदाके समान दूसरी सन्तान होती तो मै कृतकृत्य हो जाती—ऐसा विचार कर ही मानो जिस पर्वतकी चन्द्रकान्तमणिमय दीवाल रात्रिके समय सैकड़ों सोमोद्भव—चन्द्रमासे उत्पन्न होनेवाली [पक्षमे नर्मदाओंको] नदि-योंको उत्पन्न करती है ॥११॥ जिस पर्वत पर मृगोंकी पङ्क्ति पानी पीनेके लिए सरोवरके समीप पहुँचती थी परन्तु वहां कमलोंमें स्थित भ्रमर-समूहके सुन्दर शब्द सुननेमें इतनी आसक्त हो जाती थी कि बड़ी-बड़ी तरङ्गोंसे ताड़ित जल किनारे पर आकर वापिस चला जाता था पर वह उसे पीती नहीं थी ॥ १२ ॥ उस पर्वतकी शिखरके अग्र-भागमें जो मेघमालाएं छाई थीं, गर्भका पानी बरस जानेसे वे दुर्बल पड़ गई थीं और उनका स्वाभाविक इन्द्रधनुष यद्यपि नष्ट हो गया

था तो भी वह पर्वत अपने अनेक देदीप्यमान मणियोंकी किरणोंके समूहसे इन्द्रधनुषकी शोभा प्रतिदिन पूर्ण करता रहता था ॥१३॥ वह विशाल पर्वत दिखते ही भगवान् धर्मनाथके लिए आनन्ददायी हो गया सो ठीक ही है क्योंकि अभीष्ट सिद्धिके लिए सुन्दरताका स्वरूप किसी दूसरे गुणकी अपेक्षा नहीं रखता ॥१४॥

तदनन्तर वह मित्र प्रभाकर जो कि सभाओंमे हृदयगत अन्धकारको नष्ट करनेके लिए साक्षात् प्रभाकर–सूर्य था, जगच्चन्द्र भगवान् धर्मनाथको पर्वतकी शोभामें व्यापृत नेत्र देख बड़े उल्लासके साथ इस प्रकार बोला ॥ १५ ॥ जिसके मध्यभाग पूर्वापर समुद्रके तटकी तरङ्गोंके समूहसे स्पष्ट हैं ऐसा यह पर्वत आपके सैनिकोंसे आक्रान्त हो ऐसा जान पड़ता है मानो नमस्कार करता हुआ अन्य राजा ही हो ॥ १६ ॥ यह पर्वत आपके आगे ठीक इन्द्रकी शोभा धारण कर रहा है क्योंकि जिस प्रकार इन्द्र समस्त देवाङ्गनाओंके नेत्रोंको प्रिय होता है उसी प्रकार यह पर्वत भी समस्त देवाङ्गनाओंके नेत्रोंको प्रिय है—आनन्द देने वाला है। जिस प्रकार इन्द्र मदोन्मत्त एवं अतिशय सुदर भ्रमरोंके समान कान्तिवाले हजार नेत्र धारण करता है उसी प्रकार यह पर्वत भी मदोन्मत्त एवं अत्यन्त सुन्दर भ्रमरोंसे सुशोभित सहस्राक्ष—हजारों बहेड़के वृक्ष धारण कर रहा है और जिसप्रकार इन्द्र आपके स्तवनकी भक्तिसे अपने देदीप्यमान हस्त मुकुलित कर लेता है उसी प्रकार यह पर्वत भी आपकी भक्तिसे भास्वत्कर—सूर्यकी किरणोंको मुकुलित कर रहा है ॥ १७ ॥ अनेक प्रकारकी अतुच्छ कान्तिको धारण करनेवाली कौन-सी देवी इस पर्वतके उन वनाकीर्ण तटोंका आश्रय नहीं लेती जो कि अनेक धातुओंकी कान्तिसे देदीप्यमान हैं और अगस्त्य ऋषि द्वारा सूर्यमण्डलसे बलपूर्वक लौटाई गई हैं ॥१८॥ जरा इधर देखिए, इस उज्ज्वल रत्नोंकी

दीवालमें अपना प्रतिबिम्ब देख यह हाथी क्रोधपूर्वक यह समझ कर बड़े जोरसे प्रहार कर रहा है कि यहां हमारा शत्रु–दूसरा हाथी है। और इस प्रहारसे जब इसके दांत टूट जाते हैं तब उसी प्रतिबिम्बको अपनी प्रिया समझ बड़े संतोषके साथ लीलापूर्वक उसका स्पर्श करने लगता है ॥ १९ ॥ मद-जलकी धारा बहाते हुए हाथी दौड़-दौड़ कर इस पर्वतके समीप जा रहे हैं जो ऐसे जान पड़ते हैं मानो आपकी तुरहीके शब्दसे विशाल जड़ टूट जानेसे इस पर्वतके शिखर ही लुढ़क रहे हों ॥ २० ॥ हे नाथ! यहां नये प्रेमसे बँधी शिखर पर घूमती कामकी तीव्र बाधा वश पतिका स्मरण करती एवं नेत्रोंसे क्षण एकमें आसू नाँखती हुई कौन-सी स्त्री दशमी–मृत्युदशाको नहीं प्राप्त होती? ॥ २१ ॥ जिस प्रकार कामबाणोंके समूहसे चिह्नित शरीर वाला मनुष्य उठे हुए स्थूल स्तनोंसे सुन्दर एवं सरस चन्दनकी सुगंधि से सुशोभित सौभाग्यशाली स्त्रियोंका आलिङ्गन करता है उसी प्रकार यह पर्वत भी चूंकि मदनबाणों—कामबाणोंके समूहसे [पक्षमे मेनार और बाण वृक्षोंके समूहसे] चिह्नित था अतः उठे हुए विशाल पयोधरों–स्तनों [पक्षमे मेघों] से सुन्दर एवं सरस चन्दनकी सुगन्धिसे सुशोभित मनोहर नदियोंका आलिङ्गन कर रहा था ॥२२॥ यह गेरूके रङ्गसे रँगी हुई पर्वतकी गुफासे बहने वाली नदी ऐसी जान पड़ती है मानो वज्रके प्रहारसे खण्डित विशाल पक्षोंके मूलसे बहती हुई नवीन रुधिरकी नदी ही हो ॥२३॥ अपने रत्नोंकी कान्तिके द्वारा मेरु पर्वत की शिखरमे लगे हुए बड़े-बड़े मणियोंकी दीप्तिको जीतने वाले इस पर्वतके द्वारा वह स्त्री कभी भी धारण नहीं की जाती जो कि स्त्रियोंके बीच मन्द रससे अनुगत—नीरस होती है ॥२४॥ चूंकि सूर्यके घोड़े इसके लतागृहोंकी लताओंके पत्तोंको समीपस्थ होनेके कारण शीघ्र ही खण्डित कर देते हैं अत. यह शिखरोंसे ऊपर उठते हुए उन्नत

मेघोंसे ऐसा जान पड़ता है मनो फिरसे सूर्यका मार्ग रोकनेके लिए अगस्त महर्षिके समक्ष की हुई प्रतिज्ञाका उल्लंघन ही कर रहा हो ? ॥ २५ ॥ जिस प्रकार महादेवजीके मस्तकसे निकली हुई अग्निने पुष्परूप बाणोंसे सुन्दर मदन—कामको क्षणभरमें जला दिया था उसी प्रकार सूर्यके द्वारा संतापित सूर्यकान्त मणिसे निकली हुई अग्निने पुष्पोंके रहनेसे सुन्दर दिखनेवाले मदन—मैनार वृक्षको मूल सहित क्षणभरमे जला दिया है ॥२६॥ इधर यह पर्वत इन ऊँची और मनोहर वृक्षोंकी श्रेणियोंमे मनको हरण कर रहा है अतः देवाङ्गनाए कोयलकी कूकके बाद ही अत्यन्त उत्कण्ठित हो अपने पतियोंके साथ रमण करने लगती हैं ॥२७॥ मार्गमें आगे चल अधिक विस्तार धारण करनेवाली, कुटिलता प्रदर्शित करनेवाली एवं विषम विषसे भरी यह नर्मदा नदी सर्पिणीकी तरह इस पर्वतरूपी वामीसे निकल रही है ॥२८॥ जिसमे कमल वनके नये नये फूल खिल रहे हैं ऐसा इस पर्वत पर स्थित नर्मदाका यह निर्मल नीर ऐसा जान पड़ता है मानो पर्वतकी सैकड़ों शिखरोंमे खण्डित हो नक्षत्रोंसे देदीप्यमान आकाशका खण्ड ही आ पड़ा हो ॥ २९ ॥ इधर ये भीलोंकी स्त्रियां स्त्रियोंके स्नेह तथा अनुग्रहकी भूमि और हाथियोंसे युक्त आपको आनन्दसे चाह भी रही हैं और उधर भयसे वन, शिखर तथा ग्रहोंकी बहुत भारी दीप्तिसे युक्त पर्वत पर चढ़ भी रही हैं ॥ ३० ॥ इस पर्वत पर जब कि वृक्षोंके निकटवर्ती लतागृहोंकी वेदिकारूप पाठशालाओंमे कोयलरूप अध्यापक विना किसी थकावटके निरन्तर समीचीन सूत्रोंका उच्चारण करते रहते हैं तब ऐसा स्त्रीयुक्त कौन पुरुष होगा ? जो कि कामशास्त्रका अध्ययन न करता हो ॥ ३१ ॥ पृथिवी अपने स्थल-कमलरूप नेत्रोंके द्वारा जिन्हें बड़े भयसे देख रही है और और जिनके सींगों पर बहुत भारी कीचड लग रहा है ऐसा यह

जगली भैसाओंका समूह इधर आगे ऐसा क्रीड़ा कर रहा है मानो पर्वतके उन बच्चोंका समूह ही हो जिनकी कि शिखरों पर मेघ रूप कीचड़ लग रहा है ॥३२॥ खड्ग, चक्र और बाणोंके द्वारा उत्कृष्ट युद्ध करनेवाले आपके सैनिक पुरुषोंने समान रूपसे सबको बहुत भारी अभय दिया है यही कारण है कि सिहादि दुष्ट जीवोंका समूह नष्ट हो जाने पर यहाँ सूकर और वानर भी निर्भय हो भ्रमण कर रहे हैं ॥३३॥ यह छलरहित है, सीधा है और पुरुषोंमे श्रेष्ठ है—ऐसा जानकर मैंने जिस सतरा, देवदारु और नागकेशरके वृक्षका सरस जलसे [पक्षमे दूधसे] पालन-पोषण किया था वह भी अपने अंकुरोंके अग्र-भाग रूप हाथोंके द्वारा हमारा गुप्त खजाना बतला रहा है—क्या यह उचित है ?—ऐसा सोचता हुआ ही मानो यह पर्वत व्याकुल—व्यग्र हो [पक्षमे पक्षियोंसे युक्त हो] रो रहा है ॥३४॥ यह चन्दन-वृक्षोंकी पक्ति, वृद्धावस्थाके कारण जिनके शिर सफेद हो रहे हैं ऐसे कञ्चु-कियोंकी तरह अनेक खिले हुए वृक्षोंसे घिरी है, साथ ही यह पर्वत प्रेमीकी तरह इसे अपनी गोदमे धारण किये है फिर भी यह चूंकि भुजङ्गों—विटोंका [पक्षमे सर्पोंका] स्पर्श कर बैठती है इसलिए कहना पड़ता है कि हम स्त्रियोंके अतिशय दुरूह—मायापूर्ण चरित्र को दूरसे ही नमस्कार करते है ॥३५॥ शोभासम्पन्न लजीली नवीन उत्कृष्ट स्त्री इस पर्वत पर कामदेवसे तभी तक व्याप्त नही होती जब तक कि वह कोयलके नवीन शब्दके आधीन नहीं हो पाती—कोयल का शब्द सुनते ही अच्छी-अच्छी लज्जावती स्त्रिया कामसे पीड़ित हो जाती है ॥३६॥ इधर कुपित सिह-समूहके नखाघात-द्वारा हाथि-योंके गण्डस्थलसे निकाल-निकालकर जो मोती जहा तहा बिखेरे गये हैं वे ऐसे जान पड़ते है मानो वृक्षोंमे उलझ कर गिरे हुए नक्षत्रोंका समूह ही हो ॥३७॥ इधर इस गुफामें रात्रिके समय जब प्रेमीजन नीवी

की नवीन गाँठ खोल लजीली स्त्रियोंके वस्त्र छीन लेते हैं तब रत्नमय दीपकों पर उनके हस्तकमलके आघात व्यर्थ हो जाते हैं—लज्जावश वे दीपक बुझाना चाहती हैं पर बुझा नहीं पाती ॥३८॥ जो नवीन धनवान् मदशाली नायक ससारमें अन्यत्र कामयुक्त न हुआ हो वह सज्जनोत्तम होने पर भी इस वनमें स्त्रियोंके नेत्रोंके विलाससे शीघ्र ही कामयुक्त हो जाता है ॥ ३९ ॥ हे जिनेन्द्र ! जन्म-मरण रूप भयंकर तन्तुओंके जालको नष्ट कर आप जैसे अभयदायी सार्थवाहको पा मोक्ष-नगरके अतिशय कठिन मार्गमें प्रस्थान करनेके लिए उद्यत मनुष्योंकी यह प्रथम भूमि है ॥ ४० ॥ इधर इस वनमें ये वानर सूर्य-सारथिके दण्डाग्रसे रोक जाने पर भी नवीन उदित सूर्यको अत्यन्त पक्व अनारका फल समझ ग्रहण करनेकी इच्छासे झपट रहे हैं ॥४१॥ इधर पास ही कमल वनसे संकीर्ण पर्वतके मध्यभागमें हरिणोंको खदेड़ कर हाथरूप टाँकीके द्वारा गण्डस्थल विदारण करनेवाले सिंहने हाथियोंको मानो रत्नोंकी खान ही बना दिया है ॥४२॥ अरे ! इधर यह आकाश कहाँ ? दिशाए कहा ? सूर्य, चन्द्रमा कहाँ और ये अत्यन्त चञ्चल कान्तिको धारण करने वाले तारा कहाँ ? मै तो ऐसा समझता हूँ मानो इस पर्वतरूपी राक्षसने सबको निगल कर अपने आपको ही खूब मोटा बना लिया है ॥४३॥ इधर ये हरिण लालमणि-समूहकी कान्तिको दावानल समझ दूरसे ही छोड़ रहे हैं और इधर ये शृगाल उसे छल-छलाते खूनका झरना समझ बडे प्रेमसे चाट रहे हैं ॥ ४४ ॥ चूकि यहां रस-हीन वियोगिनी स्त्री पतिद्वारा पूर्वमें प्राप्त हुए संभोगका आँख बन्द कर स्मरण करने लगती है अतः क्षण भरमे मूर्छारूप भयंकर अन्धकारको प्राप्त हो जाती है ॥ ४५ ॥ इधर यह पर्वत सुवर्णकी ऊँची-ऊँची शिखरोंसे युक्त है, इधर चादीका है, इधर साक्षात् स्फटिककी उत्तमोत्तम शिलाओंका ढेर है, इधर इस

वनमें सुवर्णमय है, और इधर रत्नोंके द्वारा चित्र-विचित्र कूटोंसे युक्त है—इस प्रकार यह पर्वत एक होने पर भी मानो अनेक पर्वतोंसे युक्त है ॥४६॥ यह पर्वत इस भारतवर्षमें पूर्व तथा पश्चिम दिशाका विभाग करनेके लिए प्रमाण-दण्डका काम करता है और उत्तर तथा दक्षिण दिशाके बीच स्थूल एव अलङ्घ्य सीमाकी भाँति स्थित है ॥४७॥ यह जो आपकी नई-नई भेरी बज रही है वह यहाँ छिपे हुए शत्रुओंका विनाश सूचित करती और इधर जब किन्नरेन्द्र उच्चस्वरसे आपका निर्मल यश गाने लगता है तब हरिणोंका कल्याण दूर हो जाता है ॥४८॥ यह पर्वत चञ्चल वायुके द्वारा कम्पित चम्पेके सुन्दर-सुन्दर फूलोंसे अर्घ और झरनोंके जलसे पादोदक देकर मणिमय शिलाओं का आसन बिछा रहा है—इस प्रकार यह आपके पधारने पर मानो समस्त अतिथि सत्कार ही कर रहा है ॥ ४९ ॥ बड़े-बड़े हाथियोंकी चिग्घाड़ोंकी जो प्रतिध्वनि गुफाओंके मुखसे निकल रही है उससे ऐसा जान पड़ता है मानो यह पर्वत आपके सैनिकोंके समर्दसे समुत्पन्न दुःखके कारण बार-बार रो ही रहा हो ॥ ५० ॥ हे याचकोंका मनोरथ पूर्ण करने वाले ! आप हितकारी होनेसे सदा दान देते हैं, सदा समृद्धि-सम्पन्न हैं, सदा प्रशस्त वचन बोलते हैं और सदा देदीप्यमान ललाटके धारक हैं। इधर देखिए इस शिखर पर यह देवोंकी सभा समीचीन धर्मके द्वारा प्रसिद्ध कीर्तिको प्राप्त कराती हुई आपको नमस्कार कर रही है ॥ ५१ ॥ इस प्रकार प्रभाकरके वचन सुन धर्मनाथ भी उस सभाकी ओर देखने लगे। उसी समय एक किन्नरेन्द्रने शिखरसे उतर विनयपूर्वक जिनेन्द्रदेवको प्रणाम किया और फिर निम्न प्रकार निवेदन किया ॥५२॥

भगवन् ! वही दिशा पुण्यकी जननी है, वही देश धन्य है, वही पर्वत, नगर और वन सेवनीय है जो कि आप अर्हन्त देवके द्वारा

किसी भी तरह अधिष्ठित होता है। उसके सिवाय इस ससारमे अन्य तीर्थ है ही क्या ? ॥५३॥ हे स्वामिन्! अमूल्य रत्नत्रय भव्य समूहके अलंकारोमें सर्वश्रेष्ठ अलंकार है जो भव्य उसे प्राप्त कर चुकता है वह भी अन्तमें क्षण भरके लिए आपके चरण-कमलोंके युगलका आश्रय पाकर ही कृत-कृत्य होता है ॥५४॥ चूँकि यहाँ पर विपल्लवोंका–विपदाओंके अंशोंका प्रचार नहीं है, हां, यदि विपल्लवों—पत्ररहितोंका प्रचार है तो वृक्षोंका ही है अतः आप हमारे घरके समीप ही अलकापुरीकी हँसी करते हुए निवास प्रदान करें ॥ ५५ ॥ भगवन्! यह वनस्थली ठीक सीताके समान है क्योंकि जिस प्रकार सीता कुशोपरुद्धा—कुश नामक पुत्रसे उपरुद्ध थी उसी प्रकार यह वनस्थली भी कुशोपरुद्धा—डाभोंसे भरी है, जिस प्रकार सीता द्रुतमालपल्लवा—जल्दी-जल्दी बोलने वाले लव नामक पुत्रसे सहित थी उसी प्रकार यह वनस्थली भी द्रुतमालपल्लवा—तमाल वृक्षोंके पत्तों से व्याप्त है, जिस प्रकार सीता वराप्सरोभिर्महिता—उत्तमोत्तम अप्सराओंसे पूजित थी उसी प्रकार यह वनस्थली भी उत्तमोत्तम जलके सरोवरोंसे पूजित है और जिस प्रकार सीता स्वयं अकल्मषा—निर्दोष थी उसी प्रकार यह वनस्थली भी पङ्क आदि दोषोंसे रहित है। चूंकि आप राजाओंमें रामचन्द्र हैं [पक्षमें-रमणीय हैं] अतः सीताकी समानता रखनेवाली इस वनस्थलीको स्वीकृत कीजिये, प्रसन्न हूजिए ॥५६॥ इस प्रकार भगवान् धर्मनाथ, उस किन्नरेन्द्रके भक्तिपूर्ण वचन सुन सेनाको थका जान और हाथियोंके विहार योग्य भूमिको देखकर ज्यों ही वहाँ ठहरनेका विचार करते है त्यों ही कुबेरने तत्काल शाला, मन्दिर, घुड़शाल, अट्टालिका, छपरी और कोटसे सुन्दर नगर बना दिया ॥५७॥

इस प्रकार महाकवि हरिचन्द्र द्वारा विरचित धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्यमें दशम सर्ग समाप्त हुआ



एकादश सर्ग

तदनन्तर चार प्रकारकी सेनासे युक्त होने पर भी जिन्होंने मोह रूप अन्धकारको नष्ट कर दिया है ऐसे श्री धर्मनाथ स्वामीने कुबेरके द्वारा निर्मित नगरमे प्रवेश किया ।।१।। वह नीतिके भाण्डार जितेन्द्रिय जिनेन्द्र स्वयं मित्रों, मन्त्रियों और सेवकोंको यथायोग्य स्थान पर ठहरा कर देदीप्यमान रत्नोंके भवनमे अपने स्थान पर पहुँचे ।।२।। सेनाके भारसे उड़ी हुई जिस धूलिसे आच्छादित होकर लोग ऐसे लग रहे थे मानो मिट्टीके ही बने हों, उसी धूलिसे नरोत्तम धर्मनाथ दर्पणकी तरह अत्यन्त सुन्दर लगने लगे थे ।। ३ ।। न तो भगवान्के शरीरमें पसीनाकी बूँद ही उठी थी और न कृशता ही उत्पन्न हुई थी अतः मार्गका परिश्रम जगज्जीवोंके उत्सवको पुष्ट करनेवाले उनके शरीरकी सामर्थ्यको नष्ट नहीं कर सका था ।।४।। फिर भी रूढ़िवश उन्होंने स्नान किया और मार्गका वेष बदला । उस समय सुवर्णके समान चमचमाती कान्तिको धारण करने वाले भगवान् किस नयनहारी शोभाको धारण नहीं कर रहे थे ? ।।५।।

तदनन्तर आकाश, दिशाओं और वनमे--सर्वत्र सचार करता हुआ ऋतुओंका समूह उन गुणवान् जिनेन्द्रकी सेवा करनेके लिए वहाँ ऐसा आ पहुँचा मानो सेवा-रससे भरा हुआ अपना कर्तव्य ही समझता हो ।। ६ ।। सर्वप्रथम हिमकी महा महिमाको नष्ट करने और प्राणियोंमे सरसताका उपदेश देनेके लिए प्रशंसनीय गुणोंसे प्राप्त ऋतुओंमें प्रधानताको धारण करनेवाला वसन्त वनको अलकृत करने लगा ।।७।। दाँतोंकी तरह कहीं-कहीं प्रकट हुई कुरबककी बोंड़ियों

से जिसका मुख हँस रहा है ऐसे वसन्तने बालककी तरह मद-हीन भ्रमरोंसे युक्त वनमे अपना लड़खड़ाता पैर रक्खा ॥ ८ ॥ जब सूर्य मलयाचलके तटसे चलने लगा तब निश्चित ही मलय समीर उसका मित्र बन गया था। यदि ऐसा न होता तो सूर्यके उत्तर दिशाकी ओर जाने पर वह भी उसके रथके आगे चल उत्तर दिशाको क्यों प्राप्त होता ॥९॥ उस समय भ्रमर आम्रमञ्जरियोंका नवीन रस पान कर अलस हो रहे थे, और मनोहर वकुल वृक्षकी केशर जहाँ-तहाँ उड़ रही थी इससे ऐसा जान पड़ता था मानो कोकिलाओंकी पंक्तिसे सुशोभित वनमें वसन्त अपनी श्रेष्ठ सेनासे युक्त हो घूम रहा हो ॥१०॥ बडे खेदकी बात है कि कमलोंको कम्पित करने वाले मलय-समीरके झोकोंसे बार-बार प्रज्वलित हुई कामाग्नि वियोगी मनुष्योंके सुन्दर शरीरको जला रही थी? ॥११॥ नामाक्षरोंकी तरह दिखनेवाले भौंरोंसे चित्रित आम्रवृक्षकी मञ्जरी कामदेवरूप धानुष्कके सुवर्णमय भालेकी तरह स्त्रीरहित मनुष्यको निश्चय ही विदीर्ण कर रही थी॥१२॥ ऐसा जान पड़ता है कि लाल-लाल फूलोंके बहाने कामाग्नि अशोक वृक्षके ऊपर चढ़ कर स्त्रियोंके कोपका अनादर करनेवाले पथिकोंको मार्गमें ही जला देनेकी इच्छासे मानो सब ओर देख रही थी॥१३॥ युवतियोंके बडे-बड़े कटाक्षोंसे अवलोकित तिलकवृक्ष फूलोंके छलसे पुलकित हो ऐसा जान पड़ता था मानो वायुके आघातसे पत्तोंको कँपाता हुआ भगवान्के उपवनमें थिरक-थिरककर नृत्य ही कर रहा हो ॥१४॥ मधुपों—भ्रमरों [पक्षमें मद्यपायियों] की पंक्ति चन्द्रमुखी स्त्रीके मुखकी मदिरामें लालसा रखनेवाले पुष्पित वकुल वृक्ष पर बहुत ही आनन्द पाती थी सो ठीक ही है क्योंकि समान गुण वाले मे क्या अनुपम प्रेम नहीं होता ? ॥ १५ ॥ टेसूके वृक्षने 'पलाश' [पक्षमें मांस खानेवाला] यह उचित ही नाम प्राप्त किया है। यदि

ऐसा न होता तो वह फूलोंके बहाने पथिकोंको नष्ट कर मनुष्योंके गलेका मांस खानेमें क्यों उत्सुकतासे तत्पर होता ? ॥ १६ ॥ भ्रमर यद्यपि प्याससे पीड़ित हो रहा था फिर भी सघन लतागृहोंकी लताओं से अन्तरित भ्रमरीकी चुपचाप प्रतीक्षा करता हुआ पुष्पस्थ मधुका पान नहीं करता था ॥ १७ ॥ जब कि मृगनयनीके नेत्रोंके सम्बन्धसे अचेतन वृक्ष भी खिल उठते हैं तब रस विलासकी विशेषताको जानने वाले ये मनुष्य क्यों न क्षण भरमें विलीनताको प्राप्त हो जावे ॥१८॥ मलय-समीर, आम्रमञ्जरी तथा कोयलकी कूक आदि बाणोंका समूह समर्पित करता हुआ वसन्त कामदेव रूपी धानुष्कको मनुष्योंकी क्या बात, देव—महादेवके भी जीतनेमे बलाढ्य बना रहा था ॥ १९ ॥ इस समय जो यह पथिक सहसा श्वास भर रहा है, रो रहा है, मूर्च्छित हो रहा है, कॅप रहा है, लड़खड़ा रहा है, और बेचैन हो रहा है सो क्या वसन्तके द्वारा अपने अखण्ड पक्षवाले बाणोंके द्वारा हृदयमें घायल नहीं किया गया है ? ॥ २० ॥ वसन्तने क्या नहीं किया ? यह अनाथ स्त्रियोंका समूह नष्ट कर दिया, उन उत्त-मोत्तम मुनियोंके समूहको विधुर–दुःखी बना दिया और इधर स्त्रियो का मान तुल्य मदोन्मत्त हाथी नष्ट कर दिया ॥२१॥ इस प्रकार चारों ओर प्रहार करनेवाले वसन्त रूपी वनचरसे पराभवकी आशङ्का कर ऐसा कौन-सा रसिक जन था जिसने अपने वक्षःस्थल पर स्त्रियोंका उन्नत स्तनरूप कवच धारण नहीं किया था ॥ २२ ॥ जिनके उन्नत नितम्बोंके तट चञ्चल वेणीरूप लताओंके अन्त भागसे ताड़ित हो रहे है ऐसी तरुण स्त्रियाँ मानो कामरूप भीलके कोड़ोंसे आहत हो कर ही उत्तम झूला द्वारा चिरकाल तक क्रीड़ा कर रही थीं ॥ २३ ॥ कामदेवके वशीकरण ओषधिके चूर्णकी तरह फूलोंका पराग ऊपर डालते हुए वसन्तने औरकी तो बात क्या, उन जितेन्द्रिय मुनियोंको

भी अपने नामसे वश कर लिया था ॥२४॥ स्वय पतियोंके घर जाने लगीं, कलह छोड़ दीं, और प्रिय कामियोंके मुख पर दृष्टि देने लगीं—इस प्रकार स्त्रियोंने कोयलरूप अध्यापककी शिक्षासे बहुत कुछ चेष्टाएं की थीं ॥२५॥

वसन्त समाप्त हुआ, ग्रीष्मका प्रवेश हुआ, उस समय सर्वत्र विचकिलके फूलोंकी सफेद-सफेद पक्ति फूल रही थी जो ऐसी जान पड़ती थी मानो शुचि—ग्रीष्म ऋतुके समागमसे [पक्षमे पवित्र पुरुषोंके संसर्गसे] मधु—वसन्त [पक्षमे मदिरा] का त्याग करने वाले प्रसन्न चित्त वन रूप सम्पदाओंके मुख पर हास्यकी रेखा ही प्रकट हुई हो ॥ २६ ॥ मालतीके उत्तमोत्तम फूलो पर बैठे हुए भ्रमर आनन्दसे गुञ्जार कर रहे थे, उसके छलसे ऐसा जान पड़ता था मानो दिग्विजयके समय होनेवाली शङ्खकी नई-नई घोषणा प्रत्येक मनुष्यको कामरूपी राजा के वश कर रही थी ॥२७॥ मदिरा पान करनेसे लाल-लाल दिखने वाली स्त्रियोंकी दृष्टिकी तरह जो गुलाबके नये-नये फूल खिल रहे थे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो कामदेवरूप राजाने स्त्रियोंके विस्तृत मान का पराजय कर दिया अतः मधुपों—भ्रमरों [पक्षमे मद्यपायियों] के द्वारा बजाये हुए काहल नामक बाजे ही हो ॥२८॥ शरीर पर चन्दन, शिर पर मालतीकी निर्मल माला और गलेमें हार—स्त्रियोंका यह उत्कृष्ट वेष पुरुषोंमे नया-नया मोह उत्पन्न कर रहा था ॥२९॥ ग्रीष्म ऋतुमे निर्जल सरोवरकी भूमि सूख कर फट गई थी जो ऐसी जान पड़ती थी मानो आगत तृषातुर मनुष्यको निराश देख लज्जासे उसका हृदय ही फट गया हो ॥ ३० ॥ इस ऋतुमें नवीन पल्लवोंके समान लपलपाती जिह्वाए कुत्तोंके मुखसे बाहर निकल रही थीं जो ऐसी जान पड़ती थीं मानो सूर्यकी किरणोंके समूहसे हृदयमें उत्पन्न हुई अग्निकी बड़ी-बड़ी ज्वालाए ही थी क्या ? ॥३१॥

तदनन्तर कामियोंको आनन्द देनेवाला वह वर्षाकाल आया जो कि ठीक दुर्जनके समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार दुर्जन द्विजराज—ब्राह्मणको भी नष्ट कर देता है उसी प्रकार वर्षाकाल भी द्विजराज—चन्द्रमाको भी नष्ट कर रहा था, जिस प्रकार दुर्जन मित्रके गुणको नष्ट करने वाला होता है उसी प्रकार वर्षाकाल भी मित्र—सूर्यके गुणको नष्ट करने वाला था और जिस प्रकार दुर्जन नवकन्दल होता है—नूतन सुखको खण्डित करने वाला होता है उसी प्रकार वर्षाकाल भी नवकन्दल था—नये-नये अकुरोंसे सहित था ॥ ३२ ॥ जहाँ-तहाँ कुटजके फूल फूले हुए थे उनके छलसे ऐसा जान पड़ता था मानो काले-काले [पक्षमे दुष्ट हृदय] मेघोंके द्वारा खदेड़ी नक्षत्रों की पङ्क्ति ही भ्रमर-ध्वनिके बहाने रोती हुई बड़े खेदके साथ आकाश से इस विन्ध्याचलके वनमें अवतीर्ण हुई हो ॥३३॥ मेघोसे [पक्षमें स्तनोसे] झुकी आकाश-लक्ष्मी हारके समान टूट-टूट कर गिरनेवाली जलधारासे ऐसी जान पड़ती थी मानो कदम्बके फूलोंसे सुवासित वायु रूप नायकके साथ प्रथम समागम ही कर रही हो ॥३४॥ बड़े-बड़े मेघोंकी पङ्क्ति ऐसी जान पड़ती थी मानो बिजली रूप सुन्दर दीपक ले ससारको सतापित करनेवाले सूर्यको खोजनेके लिए ही किसानोंके आनन्दके साथ प्रत्येक दिशामें घूम रही हो ॥३५॥ ऐसा जान पड़ता है कि समुद्रका जल पीते समय मेघने मानो बड़वानल भी पी लिया था। यदि ऐसा न होता तो बिजलीके नामसे अग्निकी सुन्दर ज्योति क्यों देदीप्यमान होती ? ॥३६॥ सावनके माहमे निकली कामदेवके बाणोंके समान तीक्ष्ण मालतीकी कोमल कलिकाओंसे मानो हृदयमे घायल हुआ भ्रमरोंका समूह आगे किन लताओंको देखनेके लिए जा सका था ॥३७॥ जिसमें सफ़ेद-सफेद फूलोंके अंकुर प्रकट हुए हैं ऐसा निश्चल भ्रमर-समूहसे व्याप्त केतकीका वृक्ष दाँतोंके

द्वारा तीनों लोकोंको रौंदनेवाले कामदेवके मदोन्मत्त हाथीके समान अत्यन्त सुशोभित हो रहा था ॥३८॥ हे सगर्व ! दूसरेकी बात जाने दो जब तुम नाथ होकर भी अपना स्नेहपूर्ण भाव छिपाने लगे तब मेरी उस सखीको निश्चित ही अनाथ-सा समझ वह मेघ शत्रुकी तरह विष [पक्षमें जल] देता हुआ मार रहा है और बिजलियाँ जला रही हैं। पतिके अभावमें असह्य सतापसे पीड़ित रहनेवाली इस सखीने सरोवरोंके जलमे प्रवेश कर उसके कीड़ोंको जो अपने शरीर से संतापित किया था वह पाप क्या उसके पतिको न होगा ? इस पावसके समय सरोवर अपने आप कमलरहित हो गया है और वनको उसने पल्लवरहित कर दिया है यदि चुपचाप पड़ी रहनेवाली उस सखीके मरनेसे ही तुम्हे सुख होता है तो कोई बात नहीं, परन्तु वन पर भी तुम्हे दया नही। हे सुभग ! न वह क्रीड़ा करती है, न हँसती है, न बोलती है, न सोती है, न खाती है और न कुछ जानती ही है। वह तो सिर्फ नेत्र बन्दकर रतिरूप श्रेष्ठ गुणोंको धारण करने वाले एक तुम्हारा ही स्मरण करती रहती है। इस प्रकार किसी दयावती स्त्रीने जब प्रेमपूर्वक किसी युवासे कहा तब उसका काम उत्तेजित हो उठा। अब वह जैसा आनन्द धारण कर रहा था वैसा सौन्दर्यका अहङ्कार नही ॥३९–४३॥ जब तृणकी कुटीके समान स्त्रियों के हृदयमें तीव्र वियोगरूप अग्नि जलने लगी तब शब्द करनेवाले मयूर और मेढक ऐसे जान पड़ते थे मानो घबड़ाये हुए कुटुम्बियोंके समान रुदन ही कर रहे हों ॥४४॥

प्रलाप करनेवाले वियोगियो पर दयाकर ही मानो यह शरद ऋतु प्रकट हुई है और उनके दाह रूप तीव्रज्वरको शान्त करनेके लिए ही मानो उसने सरोवरोंका जल निरन्तर बड़े-बड़े कमलोंसे युक्त कर दिया है ॥ ४५ ॥ किरणों द्वारा [पक्षमे हाथोंके द्वारा] कमलरूप

मुखको ऊपर उठा चुम्बन करनेवाले सूर्य पर इस शरदृऋतुने अधिक आदर प्रकट नहीं किया किन्तु उसके विपरीत चन्द्रमाके साथ केलि करनेमें सुख-पूर्वक तत्पर रही। शरदने अपनी इस प्रवृत्तिसे ही मानो सूर्यको अधिक संताप दिया था ॥ ४६ ॥ जिसके सफेद मेघमण्डल पर [पक्षमें—गौरवर्ण स्तनमण्डल पर] इन्द्रधनुष रूप नखक्षतका चिह्न प्रकट है ऐसी शरदृऋतुने गम्भीर चित्तवाले मुनियों को भी काम-बाधा उत्पन्न कर दी थी ॥ ४७ ॥ जिस प्रकार नवीन समागमके समय लज्जा धारण करनेवाली कुलवती स्त्रियाँ धीरे-धीरे अपने स्थूल नितम्ब मण्डल वस्त्ररहित कर देती हैं उसी प्रकार इस शरदृऋतुमे बड़ी-बड़ी नदियाँ अपने विशाल तट जलरूप वस्त्रसे रहित कर रही थीं ॥ ४८ ॥ इस शरदके समय चमचमाती बिजलीकी विशाल कान्तिसे देदीप्यमान सफेद मेघको देख पीली-पीली जटाओंसे सुशोभित सिंहकी शङ्कासे मेघोंके समूह क्षणभरके लिए अपनी गर्जना बन्द कर देते हैं ॥ ४९ ॥ इधर भ्रमर-पङ्क्तिका नवीन धानके साथ सम्बन्ध हो गया अतः उसने बड़े-बड़े खेतोंके जलमें खिले हुए उस कमल-समूहका जो कि मनोहर हंसीके मुखसे खण्डित था निकट होनेपर भी तिरस्कार कर दिया ॥ ५० ॥ यह कामदेव रूप हस्तीके मद जलकी बास है, सप्तपर्ण वृक्षकी नहीं और वह कमलिनीके चारों ओर उसी हस्तीके पैरकी टूटी जजीर है, भ्रमरियोंकी पङ्क्ति नहीं हैं ॥५१॥ लोग बागमें घूमनेवाले तोताओंकी कौतुक उत्पन्न करनेवाली पङ्क्तिको आँख उठा-उठा कर ऐसा देखते थे मानो आकाश लक्ष्मीकी लालमणि खचित हरे-हरे मणियोंकी मनोहर कण्ठी ही हो ॥५२॥

मगशिरमे बर्फसे मिली दुःसह वायु चल रही थी अतः निरन्तर की शीतसे डर कामदेव जिसमे वियोगाग्नि जल रही थी ऐसे किसी सुन्दराङ्गीके हृदयमे जा बसा था ॥ ५३ ॥ यदि अत्यन्त तरुण

स्त्रियोंके स्थूल स्तनोंका समूह शरण न होता तो उस हेमन्तके समय कीर्तिको हरनेवाला बर्फ मनुष्योंके शरीर पर आ ही पड़ा था ॥ ५४ ॥ चूँकि उस समय स्त्रियाँ बड़े आदरके साथ केशरका खूब लेप लगाती थीं, ओठोंमें जो दन्ताघातके व्रण थे उन्हें मेनसे बन्द कर लेती थीं और घनी-मोटी चोली पहिनती थीं अतः उन्होंने घोषणा कर दी थी कि यह हेमन्त काल तो संसारके उत्सवका काल है ॥५५॥ चूँकि बर्फसे भरे दिन, संसारमे बार-बार कामदेवके तेजकी अधिकता बढ़ा रहे थे अतः उन्होंने सूर्यके तेजकी महिमा घटा दी थी ॥ ५६ ॥

जब कोई दुष्ट राजा अपनी महिमाके उदयसे प्रजाकी कमला—लक्ष्मीको छीन उसे दरिद्र बना देता है तब जिस प्रकार दूसरा दयालु उदार राजा पदासीन होने पर प्रजासे करोपचय–टैक्सका सग्रह नही करता उसी प्रकार जब शिशिरने निरन्तर बर्फकी वर्षासे प्रजाके कमल छीन उसे कमल रहित कर दिया तब दयालु एवं उदार [पक्षमे दक्षिण दिशास्थ] सूर्यने करोपचय—किरणोंकी सग्रह नहीं किया था ॥ ५७ ॥ उस समय सूर्य किसी तपस्वीकी समता धारण कर रहा था क्योंकि जिस प्रकार तपस्वी समस्त इन्द्रियोंकी सामर्थ्य नष्ट कर देता है उसी प्रकार सूर्य भी समस्त इन्द्रियोंका सामर्थ्य नष्ट कर रहा था, जिस प्रकार तपस्वी धर्मदिक्—धर्मका उपदेश देने वालोंका आश्रय ग्रहण करता है उसी प्रकार सूर्य भी धर्मदिक्–यमराजकी दक्षिण दिशाका आश्रय कर रहा था, और जिस प्रकार तपस्वी तपसा–तपश्चरणके द्वारा शरीरमें कृश तेज धारण करता है उसी प्रकार सूर्य भी तपसा—माघ मासके द्वारा शरीरमें कृश तेज धारण कर रहा था ॥ ५८ ॥ इस शिशिरके समय मृगनयनी स्त्रियोंके सीत्कृतसे कम्पित ओठोंके बीच प्रकट दांतोंके समान कान्तिवाली कुन्दकी खिली हुई नवीन लताओंने जिस किसी तरह मनुष्योंके हृदयमें धैर्य

उत्पन्न किया था ॥ ५९ ॥ जिस प्रकार मनुष्य सुन्दर रूपवाली स्त्रीके प्रसिद्ध एवं माननीय अन्य गुणोंमे निःस्पृह हो जाते हैं उसी प्रकार लोग सुगन्धित पत्तों वाले मरुवक वृक्षके फूलोंमे निःस्पृह हो गये थे ॥ ६० ॥ इस शिशिर ऋतुमे पृथिवी लोध्र पुष्पकी पराग और जगद्विजयी कामदेव रूप राजाकी उज्ज्वल कीर्तिको एक ही साथ क्या स्पष्ट रूपसे नहीं धारण कर रही थी ? ॥ ६१ ॥ इस माघके महीनेमें कामियोंका समूह अनेक आसनोंका साक्षात् करनेवाली सुरत योग्य बड़ी-बडी रात्रियाँ पाकर प्रसन्नचित्त युवतियोंके साथ अत्यन्त रमण करता था ॥६२॥

तदनन्तर एक साथ उपस्थित ऋतुसमूहकी सुन्दरता देखनेके इच्छुक और नयसे तीनों लोकोंको संतुष्ट करनेवाले जिनेन्द्रदेवसे किन्नरेन्द्र बड़ी विनयके साथ इस प्रकार बोला ॥ ६३ ॥ भगवन् ! ऐसा जान पड़ता है मानो यह ऋतुओंका समूह एक साथ सुनाई देनेवाले भ्रमर, कोयल, हंस और मयूरोंके रसाभिराम समस्त शब्दोंके द्वारा आपका आह्वान ही कर रहा हो—आपको बुला ही रहा हो ॥ ६४ ॥ हे स्वामिन् ! देवोंकी जो सेना निर्मनस्क परिमित आरम्भ वाली एवं गमनसे रहित थी वही आज वसन्तके कारण कामवश सुन्दर शब्द कर रही है और भाग्यके समूहसे मेरे प्रति अत्यन्त नम्र बन गई है ॥ ६५ ॥ हे मदनसुन्दर ! जिसने अनेक लताओं और वृक्षोंका विस्तार भले ही देखा हो तथा जो प्रभाके समूहमें सुन्दरताको भले ही प्राप्त होती हो पर वह स्त्री इस वसन्तके समय क्या उत्तम पुण्यवती कही जा सकती है जो कि अपने पतिको प्राप्त नहीं है। अरे ! वह तो स्पष्ट पुण्यहीन है ॥ ६६ ॥ हे विशाल नेत्र ! जिस प्रकार यह समुद्रान्त पृथिवी शत्रुओंको नष्ट करनेवाले आपमें गुण देख अनुराग सहित है उसी प्रकार यह स्त्री इस वनमें उत्तम तिलक वृक्षोंको देख

विलास मुद्राके स्थान-स्वरूप अपने पतिमें अनुराग-सहित हो रही हैं ॥ ६७ ॥ चूँकि वह पुरुष इस ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंसे युक्त वनमें कोयलों का मनोहर शब्द सुन चुका है अतः पद-प्रहार द्वारा उत्तम तरुणीसे आहत हो मद धारण कर रहा है ॥६८॥ हे वरनाथ ! हे राजाओंकी उत्तम लक्ष्मीसे युक्त ! आप पाप-रहित हैं इसीलिए यह जलके उदय को चाहने वाला वर्षाकाल मयूर-ध्वनिके बहाने सुन्दर स्तवनसे आज आपकी स्तुति कर रहा है ॥ ६९ ॥ मन्दरगिरिकी शिखर पर स्थित चन्द्रमाकी कला भी मेघखण्डसे युक्त नहीं है और वे मयूर भी जो कि वर्षा कालमें अमन्द रससे युक्त थे इस समय मन्द रसके अनुगामी हो रहे हैं इन सब कारणोंसे अनुमान होता है कि शरद् ऋतु आ गई ॥ ७० ॥ जिस प्रकार प्रत्यञ्चा-रूप लता धनुषके पास जाती है उसी प्रकार भ्रमरोंकी पंक्ति जलमें प्रफुल्लित कमलोंके पास पहुँच गई है, यही कारण है कि इस शरद् ऋतुके समय अप्सराओंकी पंक्ति कामदेवके बाणोंसे खण्डित हो देवोंकी अधिकाधिक सङ्गति कर रही है ॥ ७१ ॥ इस प्रकार इन्द्रने जब आनन्दके साथ उत्कृष्ट वचन कहे तब फूलोंमें छिपी मधुर गान करनेवाली भ्रमर-पंक्तिको देख पाप-रहित जिनेन्द्रदेवकी वृक्ष-समुदायके बीच क्रीड़ा करनेकी इच्छा हुई ॥ ७२ ॥

इस प्रकार महाकवि श्री हरिचन्द्र द्वारा विरचित धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्यमें ग्यारहवां सर्ग समाप्त हुआ



द्वादश सर्ग

तदनन्तर इक्ष्वाकु वंशके अधिपति भगवान् धर्मनाथ वन-वैभव देखनेकी इच्छासे नगरसे बाहर निकले सो ठीक ही है क्योंकि जब साधारण मनुष्य भी अनुयायियोंके अनुकूल प्रवृत्ति करने लगते हैं तब गुणशाली उन प्रभुकी तो कहना ही क्या है ? ॥ १ ॥ उस ऋतु-कालमें पुष्पवती वनस्थली [पक्षमे मासिकधर्मवाली स्त्री] का सेवन करनेके लिए जो मनुष्य उत्कण्ठित हो उठे थे उसमे अपने कुलकी हानिका विचार न करने वाला मनका बड़ा अनुराग ही कारण था ॥२॥ खिले हुए पुष्प-वृक्षोंसे युक्त वनमे मनुष्योंने स्त्री-समूहके साथ ही जाना अच्छा समझा क्योंकि जब कामके पांच ही बाण सह्य नही होते तब असंख्यात बाण सह्य कैसे हो सकेंगे ॥ ३ ॥ उस समय महावरसे रँगे हुए स्त्रियोंके चरण-कमलोंका युगल ऐसा जान पड़ता था मानो गुलाबके अग्रभागके कण्टकसे क्षत हो जानेके कारण निकलते हुए खूनके समूहसे ही लाल-लाल हो रहा था ॥ ४ ॥ स्त्रियोंकी भुजाएँ यद्यपि सुवृत्त थीं—गोल थी [पक्षमे सदाचारी थी] फिर भी आने-जानेमे रुकावट डालनेवाले जड—स्थूल [पक्षमे धूर्त] नितम्बके साथ कङ्कणोंकी ध्वनिके बहाने मानो कलह कर रही थीं ॥ ५ ॥ मार्गमे चलते समय किसी मृगनयनीकी करधनी किङ्किणियोंके मनोहर शब्दोंसे ऐसी जान पड़ती थी मानो वह यह जानकर रो ही रही थी कि यह कृशोदरी स्थूल स्तन मण्डलके बोझसे मध्यभागसे जल्दी ही टूट जावेगी ॥ ६ ॥ मार्गमे दक्षिणका पवन चतुर नायककी भाँति नितम्ब-संमर्दन, भुजाओंका गुदगुदाना एव पसीना दूर करना आदि

क्रियाओंसे मृगनयनी स्त्रियोंकी बार-बार चापलूसी कर रहा था ॥ ७॥ कोई स्त्री चलती-फिरती लताके समान लीलापूर्वक वनको जा रही थी। क्योंकि जिस प्रकार लता प्रवालशालिनी—उत्तम पल्लवोंसे सुशोभित होती है उसी प्रकार स्त्री भी प्रवालशालिनी—उत्तम केशोंसे सुशोभित थी। जिस प्रकार लता अनपेतविभ्रमा—पक्षियोंके सचारसे सहित होती है उसी प्रकार स्त्री भी अनपेतविभ्रमा—विलास-चेष्टाओंसे सहित थी। जिस प्रकार लता उच्चैस्तनगुच्छलाञ्छिता—ऊँचे भागमें लगे हुए गुच्छोंसे सहित होती है उसी प्रकार स्त्री भी उच्चैस्तनगुच्छलाञ्छिता—गुच्छोंके समान सुशोभित उन्नत स्तनोंसे सहित थी और जिस प्रकार लता उद्यत्तरुणावलम्बिता—उन्नत वृक्षसे अवलम्बित होती है उसी प्रकार स्त्री भी उद्यत्तरुणावलम्बिता-उत्कृष्ट तरुण पुरुषसे अवलम्बित थी॥८॥ मार्गमें मलय पर्वतका जो वायु स्त्रियोंके नितम्ब-स्थलके आघातसे रुक गया था तथा स्तनोंके ताड़नसे मूर्छित हो गया था वह उन्हींके श्वास-निश्वाससे जीवित हो गया था ॥९॥ कोई मृगलोचना पति के गलेमें भुजबन्धन डाल नेत्रोंके बन्द होनेसे गिरती-पड़ती मार्गमें इस प्रकार जा रही थी मानो कामसे होनेवाली अन्धताको ही प्रकट करती जाती हो ॥ १० ॥ वन जानेवाली मृगलोचनाओंके नूपुर और हस्त-कङ्कणोंके शब्दसे मिश्रित रत्नमयी किङ्किणियोंका जैसा-जैसा शब्द होता था वैसा-वैसा ही कामदेव उनके आगे नृत्य करता जाता था ॥ ११ ॥ हे तन्वि ! तेरी भृकुटि-रूप लता बार-बार ऊपर उठ रही है और ओष्ठ-रूप पल्लव भी कँप रहा है इससे जान पड़ता है कि तेरे हृदयमें मुसकान-रूप पुष्पको नष्ट करनेवाला मान-रूप वायु बढ़ रहा है ॥१२॥ हे मृगनयनि ! इस समय, जो कि संसारके समस्त प्राणियों को आनन्द करनेवाला है, तू ने व्यर्थ कलह कर रक्खी। मानवती स्त्रियोंको अभिमान सदा सुलभ रहता है परन्तु यह ऋतुओंका क्रम

दुर्लभ होता है ॥१३॥ पतिसे किसी कार्यमे अपराध बन पड़ा है—इस निर्हेतुक बातसे ही तेरा मन व्याकुल हो रहा है। पर हे भामिनि ! यह निश्चित समझ कि परस्पर उन्नतिको प्राप्त हुआ प्रेम अस्थानमे भी भय देखने लगता है ॥ १४ ॥ अन्य स्त्रियोंसे प्रेम न करनेवाले पतिमें जो तूने अपराधका चिह्न देखा है वह तेरा निरा भ्रम है क्योंकि जो स्नेहसे तुझे सब ओर देखा करता है वह तेरे विरुद्ध आचरण कैसे कर सकता है ॥ १५ ॥ जिस प्रकार स्नेह—तेलसे भरा हुआ दीपक चन्द्रमाकी शोभाको दूर करनेवाली प्रातःकालकी सुषमा से सफेदीको प्राप्त हो जाता है—निष्प्रभ हो जाता है उसी प्रकार स्नेह–प्रेमसे भरा हुआ तेरा वल्लभ भी चन्द्रमाकी शोभाको तिरस्कृत करनेवाली तुझ दूरवर्तिनीसे सफेद हो रहा है—विरहसे पाण्डु वर्ण हो रहा है ॥१६॥ उसने अपना चित्त तुझे दे रक्खा है। इस ईर्ष्यासे ही मानो उसकी भूख और निद्रा कहीं चली गई है और यह चन्द्रमा शीतल होने पर भी मानो तुम्हारे मुखकी दासताको प्राप्त होकर ही निरन्तर उसके शरीरको जलाता रहता है ॥ १७ ॥ मालूम होता है उसके वियोगमे तुम्हारा हृदय भी तो कामके बाणोंसे खण्डित हो चुका है अन्यथा श्रेष्ठ सुगन्धिको प्रकट करनेवाले ये निश्वासके पवन क्यों निकलते ? ॥१८॥ अतः मुझपर प्रसन्न होओ और सतप्त लोह-पिण्डोंकी तरह तुम दोनोंका मेल हो—इस प्रकार सखियों द्वारा प्रार्थित किसी स्त्रीने अपने पतिको अनुकूल किया था—कृत्रिम कलह छोड़ उसे स्वीकृत किया था ॥ १९ ॥

उस समय जब कि कोयलकी मिठी कूक मान नष्ट कर स्त्री-पुरुषोंका मानसिक अनुराग बढा रही थी तब जगद्विजयी कामदेव केवल कौतुकसे ही धनुष हिला रहा था ॥ २० ॥ महादेवजीके युद्धके समय भागा हुआ वसन्त कामदेवका विश्वासपात्र कैसे हो

सकता था ? हाँ, पार्वतीका विश्वास प्राप्त कर स्त्रियोंको अवश्य अपना जीवन प्रदान करनेमें पण्डित मानता है ॥ २१ ॥ स्वामि-द्रोही वसन्तका आश्रय करनेवाली कोयलें विवर्णता—वर्णराहित्य [पक्षमें कृष्णता] और लोक-बहिष्कार [पक्षमें बनवास] को प्राप्त हुईं तथा स्वामिभक्त स्त्रियोंके चरणयुगलकी छायाको प्राप्त कमल लक्ष्मीका स्थान बन गया ॥ २२ ॥ तरकसोंकी तरह वृक्षोंको धारण करनेवाले इस वसन्तने कामदेवके लिए कितने फूलोंके बाण नहीं दिये ? फिर भी यह जगत्‌के जीतनेमें स्त्रीके कटाक्षको ही समर्थ बाण मानता है ॥ २३ ॥ कामदेव वसन्त-क्रीड़ा और मलय-समीर आदिके साथ आचार मात्रसे मेल रखता है यथार्थमे तो समस्त दिग्विजयके समय स्त्रियाँ ही उसकी निरन्तर सहायता करती हैं ॥ २४ ॥ इस प्रकार प्रकरणवश पतियों द्वारा प्रशंसित स्त्रियाँ वसन्तका तिरस्कार करने वाली अपनी शक्तिको सुन सौन्दर्यके गर्वसे गर्दन ऊँचा उठाती हुई लड़खड़ाते पैरोंसे मार्गमे जा रही थीं ॥ २५ ॥

कान्तिके उदयसे मनुष्योंके नेत्रोंको आनन्दित करनेवाले एव विलासिनी-स्त्रियोंसे घिरे उत्तर कोसलाधिपति भगवान् धर्मनाथने वनमें इस प्रकार प्रवेश किया जिस प्रकार कि ताराओंसे अलंकृत चन्द्रमा मेघमे प्रवेश करता है ॥ २६ ॥ यह गिरीश—महादेवजीका [पक्षमे भगवान् धर्मनाथका] क्रीड़ा वन है ऐसा सुननेसे वहाँ घूमता हुआ कामदेव मानो दाहके भयसे ही कान्ति-रूप अमृतके कोश-कलशाके समान सुशोभित स्त्रियोंके स्तनोंका सन्निधान नहीं छोड़ रहा था ॥ २७ ॥ ऐसा जान पड़ता है कि कामदेव जबसे महादेवजीके नेत्रानलसे जला तबसे प्रज्वलित अग्निमें द्वेष रखने लगा था । यही कारण है कि वह सघन वृक्षोंमें जिसमें सदा दुर्दिन बना रहता है ऐसे इस वनमें निवास करनेका प्रेमी हो गया था ।

॥२८॥ इस वनमें जो सब ओर वायुके द्वारा कम्पित केतकीकी पराग रूप धूलीका समूह उड़ रहा था वह ऐसा जान पड़ता था मानो काम-रूप दावानलसे जले विरही मनुष्योंकी भस्मका समूह ही हो ॥२९॥ इधर-उधर घूमती कज्जलके समान काली भ्रमरियोंकी पङ्क्ति जगद्विजयी मदन महाराजके हाथमे लपलपाती पैनी तलवारका भ्रम धारण कर रही थी ॥३०॥ उस समय वनमे ऐसा जान पड़ता था कि भ्रमररूपी चारण वाणोंके द्वारा समस्त ससारको जीत एकच्छत्र करनेवाले कामभूपालकी मानो अविनाशी विरुदावली ही गा रहे हों ॥३१॥ यदि यह परागके समूह फूलोंके हैं, कामरूप मत्त हस्तीके धूलिमय विस्तर नहीं हैं तो यह भ्रमरोंके बहाने, पथिकोंको मारनेके लिए दौड़नेवाले उस हाथीकी पादशृङ्खला बीचमे ही क्यों टूट जाती ? ॥ ३२ ॥ पल्लवरूपी ओठको और पुष्परूपी वस्त्रको खींचनेमें उत्सुक तरुण वसन्त ऐसा दिखाई देता था मानो कोयलकी कूकके बहाने लतारूपी स्त्रियोंके समागमके समय हर्षसे शब्द ही कर रहा हो ॥३३॥ हे तन्वि ! यदि तेरे चित्तमें यहा मयूरोंका ताण्डवनृत्य देखनेका कौतुक है तो हे सुकेशि ! स्थूल नितम्बका चुम्बन करनेवाले इन मालाओं सहित केश-समूहको ढक ले ॥ ३४ ॥ जलमें खिला हुआ सुन्दर कमलोंका समूह तेरे मुख-कमलसे पराजित हो गया था इसी लिए वह लज्जित हो अपने पेटमे भ्रमरावलिरूप छुरीको भोंकता हुआ-सा दिखाई देता था ॥ ३५ ॥ तेरे विलासपूर्ण नेत्रोंका युगल देख नील कमल लज्जासे पानीमे जा डूबे और जिसमे मणिमय नूपुर शब्द कर रहे हैं ऐसा गमन देख हस लज्जासे शीघ्र ही आकाश मे भाग गये ॥३६॥ यदि यह अशोकके पल्लव तेरे ओष्ठकी कान्तिके आगे कुछ समय तक प्रकाशमान रहेंगे तो अन्तर समझकर लज्जित हो अवश्य ही विवर्णताको प्राप्त हो जावेंगे ॥३७॥ हे चण्डि ! क्षण

भरके लिए वियोगिनी स्त्रियों पर दयालु हो जा और अपनी सुन्दर वाणी प्रकट कर दे जिससे यमराजके दूतके समान दीखनेवाले ये दुष्ट कोयल चुप हो जावें ॥३८॥ इस प्रकार अनेक तरहके चाटु-वचन कहनेमें निपुण किसी तरुण पुरुषने अमृतकी प्याऊके तुल्य मीठे-मीठे वचन कह अपनी मानवती प्रियाको क्षणभरमे बढ़ते हुए आनन्दसे क्रोध-रहित कर दिया ॥३६॥

लतागृहरूप क्रीड़ा भवनोंमें सञ्चित एवं सूर्यकी भी किरणोंके अगोचर अन्धकारको अपनी प्रभाओंके द्वारा, लताओंको आलोकित करनेवाली, काम-दीपिकाओंने क्षणभरमें नष्ट कर दिया था ॥४०॥ फूल तोड़नेकी इच्छासे इधर-उधर घूमती हुई कमलनयना स्त्रियाँ पूजा-द्वारा जिनेन्द्रदेवकी अर्चा करनेके लिए प्रयत्नशील वन-देवियोंके समान सुशोभित हो रही थीं ॥ ४१ ॥ ऊँची डाली पर लगे फूलके लिए जिसने दोनों एड़ियां उठा अपनी भुजाए ऊपर की थीं परन्तु बीचही में पेटके पुलख जानेसे जिसके नितम्ब स्थलका वस्त्र खुल-कर नीचे गिर गया ऐसी स्थूलनितम्बवाली स्त्रीने किसे आनन्दित नहीं किया था ? ॥४२॥ उस समय वन पवनसे ताड़ित हो कम्पित हो रहा था अतः ऐसा जान पड़ता था मानो हाथोंसे पल्लवोंको, नेत्रोंसे फूलोंको, और नखोंकी किरणोंसे मञ्जरियोंको जीत ग्रहण करनेकी इच्छा करनेवाली स्त्रियोंके भयसे ही मानो काँप उठा हो ॥४३॥ चूंकि सदा आगमाभ्यासरूप रससे उज्ज्वल रहनेवाले [प्रकृतमें सदा वृक्षोंकी शोभाके अभ्यास रूपसे प्रकाशमान रहनेवाले] सुम-नोगण—विद्वानोंके समूह भी [प्रकृतमें पुष्पोंके समूह भी] प्रमत्त स्त्रियोंके हाथके समागमसे क्षण भरमें पतित हो गये [प्रकृतमें—नीचे आ गिरे] अतः वह वन लज्जासे ही मानो कान्तिहीन हो गया था ॥ ४४ ॥ और क्या ? यह कोयलका पञ्चम स्वर आदि अन्य सेवक

पुरायसे ही यश प्राप्त करते हैं परन्तु कामदेव रूप राजाका कार्य उसी एक आम्रवृक्षके द्वारा सिद्ध होता है—यह विचार किसी स्त्रीने पतिको वश करनेवाली औषधिके समान आमकी नई मञ्जरी बड़े आनन्दसे धारण की परन्तु उस भोलीने यह नही जाना कि इनके दर्शन मात्रसे मैं स्वय पहलेसे ही इनके वश हो चुकी हूँ ॥४५–४६॥ कोई एक स्त्री लताओंके अग्रभागसे झूला झूल रही थी, झूलते समय उसके स्थूल नितम्ब-मण्डल बार-बार नत-उन्नत हो रहे थे जिससे ऐसी जान पड़ती थी मानो पुरुषायित क्रियाको बढ़ानेके लिए परि-श्रम ही कर रही थी ॥४७॥ कोई एक स्त्री चूड़ामणिकी किरण रूप धनुषसे युक्त अपने मस्तक पर कदम्बके फूलका नवीन गोलक धारण कर रही थी जिससे ऐसी जान पड़ती थी मानो वनमे मर्मभेदी कोयल के लिए उसने निशाना ही बॉध रक्खा हो ॥४८॥ किसी स्त्रीने खिले हुए चम्पेके सुन्दर फूलोंकी मालाको इस कारण अपने हाथसे नहीं उठाया था कि वह कामदेव रूप यमराजके द्वारा ग्रस्त विरहिणी स्त्रीकी गिरी हुई सुवर्ण-मेखलाकी विडम्बना कर रही थी—उसके समान जान पड़ती थी ॥ ४९ ॥ किसी स्त्रीने ऊँची डालीको झुकानेके लिए अपनी चञ्चल अंगुलियोंवाली भुजा ऊपर उठाई ही थी कि पतिने छलसे उसके बाहुमूलमे गुदगुदा दिया इस क्रियासे स्त्रीको हँसी आ गई और फूल टूट कर नीचे आ पड़े। उस समय वे फूल ऐसे जान पड़ते थे मानो स्त्रीकी मुसकान देख लज्जित ही हो गये हों और इसी-लिए आत्मघातकी इच्छासे उन्होंने अपने आपको वृक्षके अग्रभागसे नीचे गिरा दिया हो ॥५०॥ उस समय परस्पर एक दूसरेकी दी हुई पुष्प-मालाओंसे स्त्री-पुरुष ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो कामदेवने उन्हें तीव्र कोपसे अपने अन्वर्थ बाणोंके द्वारा ही व्याप्त कर लिया हो ॥५१॥ सपत्नीका नाम भी मृगनयनी स्त्रियोंके लिए मानो अभि-

-चारिक—बलिदानका मन्त्र हो रहा था। यही कारण था कि सपत्नी का नाम लेकर पतियोंके द्वारा दी हुई पुष्पमाला भी उनके लिए वज्र हो रही थी ॥ ५२ ॥ संभोगके बाद लतागृहसे बाहर निकलती स्वेद-युक्त कपोलोंवाली स्त्रियोंको वृक्ष वायुसे कम्पित पल्लवरूपी पङ्खोंके द्वारा मानो हवा ही कर रहे थे ॥५३॥ चकोरके समान सुन्दर नेत्रों-वाली स्त्रियोंके वक्षःस्थल पर पतियोंने जो चित्र-विचित्र मालाएं पहि-नाई थीं वे ऐसी जान पड़ती थीं मानो उनके भीतर प्रवेश करनेवाले कामदेवकी वन्दन-मालाएं ही हों ॥ ५४ ॥ मनुष्योंने स्त्रियोंके मस्तक पर स्थित मालाओंको विलासकी मुस्कान, रतिके कटाक्षोंका विलास, कामदेवकी अमृतरसकी छटा अथवा यौवनरूपी राजाका यश माना था ॥५५॥ कोई एक सुलोचना पतिके देखनेसे काम-विह्वल हो गई थी अतः फूल-रहित वृक्ष पर भी फूलोंकी इच्छासे बार-बार अपना हस्तरूपी पल्लव डालती हुई सखियोंको हास्य उत्पन्न कर रही थी ॥ ५६ ॥ उस समय पुष्पमालारूप आभरणोंसे मृगनयनी स्त्रियोंके शरीरमें जो सौन्दर्य उत्पन्न हुआ था, कामदेव ही उसका वर्णन करना जानता है और वह भी तब जब कि किसीके प्रसादसे कवित्व-शक्ति प्राप्त कर ले ॥ ५७ ॥ सब ओरसे फूल तोड़ लेने पर भी लताओं पर लीला-पूर्वक हस्तकमल रखनेवाली स्त्रियाँ अपने देदीप्यमान नखोंकी किरणोंके समूहसे क्षण भरके लिए उनपर फूलोंकी शोभा बढ़ा रही थीं ॥५८॥ पुष्परूपी लक्ष्मीको हरण कर जाने एवं भीति चपल नेत्रों को धारण करनेवाली स्त्रियोंके पास विषमेषु—कामदेव [पक्षमे तीक्ष्ण बाणों] से सुशोभित वनके द्वारा छोड़े हुए शिलीमुख—भ्रमर [पक्षमें बाण] आ पहुँचे ॥५९॥ उस समय परिश्रमके भारसे थकीं स्त्रियाँ जलसे आर्द्र शरीरको धारण कर रही थीं और उससे ऐसी जान पड़ती थीं मानो जिनमें हर्षाश्रुकी बूंदे छलक रही हैं ऐसे

पुरुषोंके नेत्र ही शरीरके भीतर लीन हो रहे हों ॥ ६० ॥ उस समय स्त्रियोंके शरीरमें कामदेवको जीवित करनेवाला जो स्वेद जलकी बूंदोंका समूह उत्पन्न हुआ था वह श्वेत कमलके समान विशाल लोचन-युगलके समीप तत्काल फटी हुई सीपके समीप निकले मोतियोंका आकार धारण कर रहा था और स्तनरूप कलशोंके मूलमें झरते हुए अमृतरूपी जलके कणोंका अनुकरण कर रहा था ॥ ६१ ॥ जो अपने हाथोंसे विकसित कमलकी क्रीड़ा प्रकट कर रही है, जिन्होंने अपने मुखसे पूर्णचन्द्रकी तुलना की है, और पुष्पावचयके परिश्रमसे जिनका समस्त शरीर पसीनेसे आर्द्र हो रहा है ऐसी स्त्रियाँ लक्ष्मी की तरह आश्चर्य उत्पन्न करती हुईं कामदेवके स्नेही [पक्षमें मकर-रूप पताकासे युक्त] वनसे [पक्षमें जलसे] बाहर निकलीं ॥६२॥ तदनन्तर घामकी मर्मवेधी पीड़ा होने पर सैनिकोंने बड़ी-बड़ी तरङ्गोंके समूहसे व्याप्त एवं तलवारके समान उज्ज्वल नर्मदा नदीके जलका वह महा प्रवाह देखा जो कि ऐसा जान पड़ता था मानो उन सुन्दरी स्त्रियोंके चरण-कमलोंके स्पर्शसे जिसे काम-व्यथा उत्पन्न हो रही है ऐसे विन्ध्याचलके शरीरसे निःसृत स्वेद-जलका प्रवाह ही हो ॥ ६३ ॥

इस प्रकार महाकवि श्री हरिचन्द्र द्वारा विरचित धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्यमें बारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।



त्रयोदश सर्ग

तदनन्तर वनविहारसे जो मानो दूना हो गया था ऐसा स्तन तथा जघन धारण करनेका खेद वहन करनेवाली तरुण स्त्रियाँ जल-क्रीड़ा की इच्छासे अपने अपने पतियोंके साथ नर्मदा नदीकी ओर चली ॥ १ ॥ जिनका चित्त जलसमूहके आलिङ्गनमें लग रहा है ऐसी वे स्त्रियाँ स्वेद-समूहके छलसे ऐसी जान पड़ती थी मानो जलने अनुरागके साथ शीघ्र ही सामने आकर पहले ही उनका आलिङ्गन कर लिया हो ॥ २ ॥ पृथिवीतल पर रखनेसे जिसके नख-रूपी मणियो की लाल-लाल किरण फैल रही है ऐसा उन सुन्दर भौंहों वाली स्त्रियोंका चरण-युगल इस प्रकार सुशोभित हो रहा था मानो खेद समूहके कारण उसकी जिह्वाओंका समूह ही बाहर निकल रहा हो ॥ ३ ॥ उन स्त्रियोंके पीछे पतियोंके हाथमें स्थित नवीन मयूर पत्रके छत्रोंका जो समूह था वह ऐसा जान पड़ता था मानो कोमल हाथोंके स्पर्शसे सुख प्राप्त कर वन ही प्रेमवश उन स्त्रियोंके पीछे लग गया था ॥ ४ ॥ हरिणियाँ इन मृगनयनी स्त्रियोंमे पहले तो अपने नेत्रोंकी सदृशता देख विश्वासको प्राप्त हुई थीं परन्तु बादमें भौंहोंके अनुपम विलाससे पराजित होकर ही मानो चौकड़ी भर भाग गई थीं ॥ ५ ॥ किसी मृगनयनी स्त्रीके मुखकी ओर गन्धलोभी भ्रमरोंका जो समूह वृक्षके अग्रभागसे शीघ्र ही नीचे आ रहा था वह पृथिवी पर स्थित चन्द्रमाकी भ्रान्तिसे आकाशसे उतरते हुए राहुकी शोभाको हरण कर रहा था ॥ ६ ॥ ऊपर सूर्यकी किरणसे और नीचे तुषाग्निकी तुलना करनेवाली परागसे तपते हुए अपने शरीरको उन स्त्रियोंने

किसी साँचेके भीतर रखे हुए सुवर्णके समान माना था ॥ ७ ॥ अत्यन्त स्थूल स्तनोंको धारण करनेवाला तेरा शरीर वन-विहारके खेदसे बहुत ही शिथिल हो गया है—ऐसा कह कोई रागी युवा उसे अपनी भुजाओंसे उठाकर निश्चिन्तताके साथ जा रहा था ॥ ८ ॥ जब कि यौवन-रूपी सूर्य प्रकाश फैला रहा था तब जिनमे स्तन-रूपी चक्रवाक पक्षियोंके युगल परस्पर मिल रहे हैं तथा नूपुर-रूपी कलहंस पक्षी स्पष्ट शब्द कर रहे हैं ऐसी स्त्रियाँ नदियोंके समान नर्मदाके पास जा पहुँचीं ॥ ९ ॥ नर्मदा नदी उन स्त्रियोंको परिश्रमके भारसे कान्तिहीन देख मानो करुणा रससे भर आई थी इसीलिए तो जलके छींटोंसे युक्त कमलोंके बहाने उसके नेत्रोंमें मानो अश्रुकण छलक उठे थे ॥ १० ॥ तुम भले ही तट प्रकट करो, आवर्त दिखलाओ और तरङ्गोंको बार-बार ऊपर उठाओ फिर भी स्त्रीके स्थूल नितम्ब, गम्भीर नाभि और नाचती हुई भौंहोंकी तुलना नहीं प्राप्त कर सकती। तुम जो समझ रही हो कि मेरा नील कमल स्त्रीके नेत्रके समान है और कमल मुखके समान। सो यह दोनों ही उन दोनोंके द्वारा विलासोंकी विशेषतासे जीत लिये गये है, व्यर्थ ही उन्हें धारण कर क्यों उछल रही हो?—इस प्रकार पश्चिम समुद्रकी वधू—नर्मदा नदीसे जब किन्हींने बार-बार सच बात कही तब वह लज्जासे ही मानो क्षणभरके लिए स्थिर नहीं रह सकी और नीचा मुखकर शीघ्रताके साथ पर्वतकी गुफाओंकी ओर जाने लगी ॥ ११—१३ ॥ वह नदी शैवाल समूहकी खिली हुई मञ्जरियोंसे ऐसी जान पड़ती थी मानो उन स्त्रियोंको देख रोमाञ्चित ही हो उठी हो, सीधी-सीधी चञ्चल तरङ्गोंसे ऐसी जान पड़ती थी मानो उनका आलिङ्गन करनेके लिए भुजाएँ ही ऊपर उठा रही हो, नवीन फेनसे ऐसी जान पड़ती थी मानो मन्द हास्य ही धारण कर रही हो, बहुत भारी कमलोंसे ऐसी लगती थी

मानो अर्घ ही दे रही हो, पक्षियोंकी अव्यक्त मधुर ध्वनिसे ऐसी जान पड़ती थी मानो वार्तालाप ही कर रही हो और जलके द्वारा ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो पादोदक ही प्रदान कर रही हो ॥ १४-१५ ॥

कोई एक चञ्चललोचना स्त्री नदीके समीप मोती और मणि-मय आभूषणोंसे युक्त पतिके वक्षःस्थलकी तरह किनारे पर पड़कर रागसे वार वार नेत्र चलाने लगी ॥१६॥ स्त्रियोंके चपलता पूर्वक घूमते हुए नेत्रोंके विलासमें जिनके मन लग रहे हैं ऐसे तरुण पुरुषोंने नदीके बीच चञ्चल मछलियोंके उत्क्षेपमें क्षणभरके लिए अधिक लालसा धारण की थी ॥१७॥ नदीके समीप ही कमलिनियोंके वनमे भ्रमर शब्द कर रहे थे, आँख बन्द कर खड़ा हुआ हरिण किनारे पर स्थित सेनाको नहीं देख रहा था सो ठीक ही है क्योंकि विषयान्ध मनुष्य कुछ भी नहीं जानता ॥१८॥ कितनी ही चञ्चल-लोचना स्त्रियाँ नदीके पास जाकर भी उसमें प्रवेश नहीं कर रही थीं परन्तु पानीमें उनके प्रतिबिम्ब पड़ रहे थे जिससे ऐसी जान पड़ती थीं मानो उनकी भुजाएँ पकड़नेके लिए जलदेवता ही उनके सन्मुख आये हों ॥१९॥ जल-क्रीड़ाके उपकरणोंको धारण करनेवाली कितनी भीरु स्त्रियाँ नदीमें पहुँचकर भी गहराईके कारण भीतर प्रवेश नहीं कर रहीं थीं परन्तु बादमें जब पतियोंने उनके हाथ पकड़े तब कहीं प्रविष्ट हुईं ॥२०॥ फेन-रूपी सफेद बालों और तरङ्ग-रूपी सिकुड़नोंसे युक्त शरीरको धारण करनेवाली नदी-रूपी वृद्धा स्त्री लाक्षारङ्गसे रँगे स्त्रियोंके चरण-प्रहारोंके द्वारा क्रोधसे ही मानो लाल वर्ण हो गई थी ॥२१॥ यह हंस अनेक बार शब्दों द्वारा जीता जा चुका फिर भी निर्लज्ज हो मेरे आगे क्यों शब्द कर रहा है ? इस प्रकार मानो उचित सभ्यताको जाननेवाला तरुण स्त्रीका नूपुर

पानीके भीतर चुप हो रहा ॥ २२ ॥ जब लोग जल-क्रीड़ा करते हुए इधर उधर फैल गये तब हंस अपने मुँहमें मृणालका टुकड़ा दाबे हुए आकाशमें उड़ गया जो ऐसा जान पड़ता था मानो कमलिनीने नूतन पराभवके लेखसे युक्त दूत ही अपने पति—सूर्यके पास भेजा हो ॥ २३ ॥ पानीका प्रवाह स्त्रियोंके स्थूल नितम्बोंसे टकराकर रुक गया सो ठीक ही है क्योंकि स्त्रियोंके नितम्ब स्थलको प्राप्त हुआ सरस मनुष्य आगे कैसे जा सकता है ॥२४॥ किसी स्त्रीके नितम्ब-रूप शिलापट्टकसे जब जलने चपलता वश वस्त्र दूर कर दिया तब नखक्षत-रूप लिपिके छलसे उसपर लिखी हुई कामदेव की जगद्विजयकी प्रशस्ति प्रकट हो गई—साफ साफ दिखने लगी ॥२५॥ यह मृगनयनी मुझ वनवासिनी—जलवासिनी (पक्षमें अरण्यवासिनी) के ऊपर अधिक गुणोंसे युक्त [पक्षमें कई गुणा अधिक] कर—हाथ [पक्षमें टैक्स] क्यों डालती है—इस प्रकार पराभवका अनुभव कर ही मानो लक्ष्मीने शीघ्र ही कमलोंमे निवास करना छोड़ दिया था ॥२६॥ नवीन समागम करनेवाले पुरुषने वस्त्र की तरह शैवालको दूरकर ज्यों ही मध्यभागका स्पर्श किया त्यों ही मानो मुख ढकनेके लिए जिसने तरङ्ग-समूह रूपी हाथ ऊपर उठाये हैं ऐसी नदी रूपी स्त्री सिहर उठी ॥२७॥ स्त्रियों द्वारा स्थूल नितम्बों से आलोडित होनेके कारण कलुषताको प्राप्त हुई नदी मानो लज्जित हो कर ही बढनेवाले जलसे अपने पुलिन-तटप्रदेशको छिपा रही थी ॥२८॥ उस समय रेवा नदी प्रत्येक स्त्रियोंके नाभिरूप बिलमें प्रवेश कर विन्ध्याचलकी नई-नई गुफाओंमे प्रवेश करनेकी लीला का अनुभव कर रही थी और स्तनोंके अग्रभागसे टकराकर बड़ी बड़ी गोल चट्टानोंसे टकरानेका आनन्द पा रही थी ॥२९॥ यद्यपि नर्मदाका जल अत्यन्त गभीर प्रकृतिका था [पक्षमें धैर्यशाली था]

फिर भी स्त्रियोंके नितम्बोंके आघातसे क्षोभको प्राप्त हो गया सो ठीक ही है क्योंकि जब पण्डित पुरुष भी स्त्रियोंके विषयमें विकार भाव को प्राप्त हो जाता है तब जडस्वभाव वाला [पक्षमें जलस्वभाववाला] क्यों नहीं प्राप्त होगा ? ॥३०॥

कोई एक पुरुष हाथोंसे पानी उछालकर अपनी भोली भाली नई स्त्रीके स्तनाग्र भागको वार-वार सींच रहा था जो ऐसा जान पड़ता था मानो उसके कोमल हृदय-क्षेत्रमें जमे हुए कामरूपी नवीन कल्पवृक्षको बढ़ानेके लिए ही सींच रहा हो ॥३१॥ स्तन-तटसे टकराये हुए जलने शीघ्र ही स्त्रियोंको गले लगकर आलिंगन कर लिया सो ठीक ही है क्योंकि स्त्रियोंका हृदय समझनेवाले कामी मनुष्य क्या नहीं करते ॥३२॥ स्थूल स्तन-मण्डलसे सुशोभित कोई एक स्त्री पानीमे बड़े विभ्रमके साथ तैर रही थी जो ऐसी जान पड़ती थी मानो उसने अपने हृदयके नीचे घट ही रख छोड़े हों अथवा शरीर रूप लताके नीचे तुम्बीके दो फल ही बाँध रक्खे हों ॥३३॥ नदीने स्त्रियोंके गलेसे गिरी हुई चम्पेकी सुन्दरमालाको तरङ्गोंके द्वारा किनारे पर ला दिया था मानो उसे यह आशंका हो रही थी कि यह हमारे पति-समुद्रके शत्रु बड़वानलकी बड़ी ज्वाला ही है ॥३४॥ प्रियतमके हाथके द्वारा किसी मृगनयनीके शरीरमे अङ्गराग लगाये जानेपर पहले सपत्नीको उतना खेद नही हुआ था जितना कि नदी मे जलके द्वारा अङ्गरागके धुल जानेपर नखक्षतरूप आभूषणके देखनेसे हुआ था ॥३५॥ किसी कमललोचनाके वक्षःस्थल पर जल की बिन्दुओंसे व्याप्त नवीन नखक्षतोंकी पक्ति ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो उत्तम नदीने उसे मूगाओंसे मिली छोटे-बड़े रत्नोंकी कण्ठी ही भेटमें दी हो ॥३६॥ ज्यों ही पतिने अपनी प्रियाके स्थूल स्तन-मण्डल सहसा पानीसे सींचे त्यों ही सपत्नीके दोनों स्तन

पसीनाके छलसे बड़े खेदके साथ आंसू छोड़ने लगे ॥३७॥ पतिके हाथों द्वारा उछाले हुए जलसे सिक्त किसी स्त्रीके स्थूल स्तन-मण्डल से उछटे हुए जलके छींटोंसे सपत्नी ऐसी मूर्छित हो गई मानो अथर्ववेदके श्रेष्ठ मन्त्राक्षरोंके समूहसे ही मूर्च्छित हो गई हो ॥३८॥ भाई भ्रमर! मैं तो इस बड़ी लज्जाके द्वारा ही मारा गया पर विवेक के भण्डार तुम्ही एक हो जो कि सब लोगोंके समक्ष ही मुखके पास हाथ हिलानेवाली इस सुमुखीका बार-बार चुम्बन करते हो—इस प्रकार कमलोंके भ्रमसे स्त्रियोंके मुखका अनुगमन करनेवाले भ्रमर की रतिरूप रसके रसिक किसी कामी पुरुषने लज्जित होते हुए भी हृदयमें बहुत इच्छा की थी ॥३९–४०॥ पतियोंके हाथों द्वारा उछाले हुए जलसे मानवती स्त्रियोंके हृदय की कोपरूपी अग्नि प्रबल होनेपर भी बुझ गई थी इसलिए तो उनके नयन-युगलसे धुएँ की तरह मलिन अञ्जनका प्रवाह निरन्तर निकल रहा था ॥४१॥ जलके द्वारा जिसका वस्त्र दूर हो गया है ऐसे नितम्ब पर दृष्टि डालने वाले प्रिय को कोई एक स्त्री हाथके क्रीड़ा-कमलसे ही वक्षःस्थल पर मार रही थी मानो वह यह प्रकट कर रही थी कि यथार्थमें कामदेवका शस्त्र कुसुम ही है ॥४२॥ यह स्तन युगल तो मुखरूपी चन्द्रमाके रहते हुए भी परस्पर मिले रहते हैं फिर तुम इनके साथ तुलापर क्यों आरूढ़ हुए?—यह विचार कर ही मानो स्त्रियोंके नितम्बसे ताड़ित जलने चकवा-चकवियोंको हटा दिया था ॥४३॥ कितनी ही स्त्रियाँ बड़े वेगके साथ तटसे कूदकर निर्भय हो जलके भीतर जा घुसी थीं उससे उठते हुए बबूलोंसे जलका मध्य भाग ऐसा जान पड़ता था मानो सघन रोमाञ्च ही निकल रहे हों ॥४४॥ किसी एक तरुणीके वक्षःस्थलपर उड़ते हुए भ्रमरका प्रतिबिम्ब पड़ रहा था जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो पतिके हाथों द्वारा किये हुए जलरूप अमृतके सिञ्चन

मे महादेवके कोपानलसे जला हुआ भी कामदेव पुनः सजीव हो उठा हो ॥४५॥ किसी एक स्त्रीके अत्यन्त दुर्लभ कर्ण-प्रदेशसे गिर कर कमल चञ्चल जलमें आ पड़ा था जो कि भ्रमर-समूहके शब्दके बहाने ऐसा जान पड़ता था मानो शोकसे व्याकुल हो रो ही रहा हो ॥४६॥ अविरल तरङ्गोंसे फैले हुए किसी चञ्चलाक्षीके केशजालसे डरकर ही मानो उसकी पत्ररचनाकी मकरी स्तन-कलशके तटसे कूदकर नदीके गहरे पानीमे डूब गई थी ॥४७॥ जलसमूह विटकी तरह कभी स्त्रियोंके नितम्बस्थलकी सेवा करता था, कभी वक्षःस्थलका ताड़न करता था और कभी चञ्चल तरङ्गरूप हाथोंसे उनके केश खींचता था। बदलेमे जब स्त्रियां अपने हस्ततलसे उसे ताड़ित करती थी तब वह आनन्दसे कूज उठता था, आखिर जड़समूह ही तो ठहरा ॥ ४८ ॥ नदी अपने प्रबल जलसे स्त्रियोंके मुखकी पत्ररचनाको अपहृत देख मानो डर गई थी इसीलिए उसने तरङ्ग समूहरूपी हाथोंसे अर्पित शैवालके अंकुरोंसे उसे पुनः ठीक कर दिया था ॥ ४९ ॥ क्रीड़ाके समय आलिङ्गन करनेवाले जलने किसी सुन्दराङ्गीके हृदयमे जो राग उत्पन्न किया था वह उसके स्फटिकके समान उज्ज्वल नेत्रोंके युगलमें सहसा प्रकट हो गया था ॥५०॥ जिसने केश विखेर दिये है, वस्त्र खोल दिये है, मालाएँ गिरा दी हैं, तिलक मिटा दिया है, और अधरोष्ठका लाल राग छुटा दिया है ऐसा वह जल पतियोंके साथ सेवन किये हुए सुरतकी तरह स्त्रियोंके आनन्दके लिए हुआ था ॥ ५१ ॥ यद्यपि स्त्रियोंकी दृष्टि श्रवणमार्गमे लीन थी [पक्षमे शास्त्र सुननेमें तत्पर थी], निर्मल गुणवाली और दुष्टोंसे रहित थी फिर जलके समागमसे [पक्षमें मूर्खके समागमसे] राग-लालिमा [पक्षमें विषयानुराग] को प्राप्त हो गई थी अतः मनुष्योंके नीचजनोंके आश्रयसे होनेवाले रागको धिक्कार हो, धिक्कार हो ॥५२॥ किसी एक स्त्रीने भ्रमर-द्वारा खण्डित

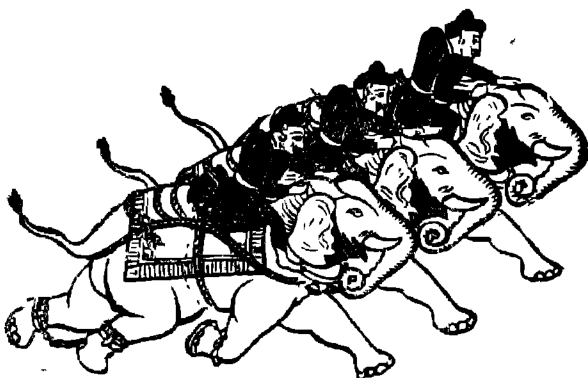
ओष्ठ वाली सपत्नीके कम्पित हाथके वलयका शब्द सुन चुपचाप गर्दन घुमाकर ईर्ष्याके साथ पतिकी ओर देखा ॥५३॥ जब स्त्रियोंकी नई-नई पत्रलताएँ स्वच्छ जलसे धुलकर साफ हो गई तब स्तनोंकी मध्यभूमिमें नखक्षतोंकी पङ्क्तिने अवशिष्ट लाल कन्दकी शोभा धारण की ॥ ५४ ॥ उस समय निरन्तर जलक्रीड़ामें चपल स्त्रियोंके स्तन-कलशसे छूटी हुई केशरसे नर्मदा नदी इतनी रक्त हो गई थी मानो उसने शरीरमे बहुत भारी अङ्गराग ही लगाया हो और इसीलिए मानो उसके नदीपति–समुद्रको अत्यन्त रक्त–लालवर्ण [पक्षमें प्रसन्न] किया था ॥ ५५ ॥ मै यद्यपि नीचमार्गमें आसक्त हूँ [पक्षमें नीचे बहनेवाली हूँ] फिर भी अभ्युदयशाली मनुष्योंने मेरा इच्छानुसार उपभोग किया—यह विचार कर नर्मदा नदी तरङ्गरूप बाहुदण्ड फैला-कर आनन्दके भारसे मानो नृत्य ही कर रही थी ॥ ५६ ॥ अब दिन क्षीण हो गया है, आपलोग घर जावें, मै भी क्षण भर निर्भय हो अपने पतिका उपभोग कर लूं—इस प्रकार चक्रवाकीने दयनीय शब्दों द्वारा उन स्त्रियोंसे मानो प्रार्थना की थी इसलिए उन्होने घर जानेक इच्छा की ॥५७॥

इस प्रकार जलक्रीड़ाका कौतुक कर वे सुलोचनाएं अपने पतियों के साथ नदीसे बाहर निकलीं। उस समय नदीका हृदय [मध्यभाग] मानो उनके वियोग-रूप दुखसे ही कलुषित-दुःखी [पक्षमें मलीन] हो गया था ॥५८॥ जलविहारकी क्रीड़ा छोड़नेवाली किसी कमल-नयनाके केशोंसे पानी झर रहा था उससे वे ऐसे जान पड़ते थे कि अबतक तो हमने खुले रहनेसे नितम्बके साथ समागमके सुखका अनुभव किया पर अब फिर बाँध दिये जावेंगे इस भयसे मानो रो ही रहे थे ॥ ५९ ॥ उस समय उदार दृष्टिवाली स्त्रियोंने जलसे भीगे वस्त्रोंका स्नेह क्षण भरमें छोड़ दिया था सो ठीक ही है क्योंकि चतुर

मनुष्य जाड्य-शैत्यके भयसे [पक्षमें जड़ताके भयसे] नीरसमागत—जलसे युक्त वस्त्रोंको [पक्षमे आगत नीरस मनुष्यको] स्वयं ही छोड़ देते हैं ॥६०॥ ऐसा जान पड़ता था मानो वे स्त्रियाँ अधिक कालतक उपभोग करनेके कारण जलक्रीड़ाके रससे तन्मयताको ही प्राप्त हो चुकी थीं इसीलिए तो सफेद वस्त्रोंके छलसे लहराते हुए क्षीरसमुद्रमें पुनः जा पहुँची थी ॥६१॥ उस समय किसी स्त्रीके कंकण [पक्षमें जलकण] वायुने अपहृत कर लिये थे फिर भी उसके हाथमें उज्ज्वल कङ्कण थे। यद्यपि वह कचनिचय—केश समूहसे विभूषित थी फिर भी विकचसरोजमुखी—केशरहित कमलरूप मुखसे सुशोभित थी [पक्षमे खिले हुए कमलके समान मुखसे सुशोभित थी] यह बड़ा आश्चर्य था ॥६२॥ गुणोंसे [पक्षमें तन्तुओंसे] सहित पुष्प-समूहका सौमनस्य—पाण्डित्य [पक्षमें पुष्पपना] प्रकट ही था इसीलिए तो स्त्रियोंने उसे बड़ी शीघ्रताके साथ संभ्रमपूर्वक अपने मस्तक पर धारण किया था ॥६३॥ किसी मृगनयनीने योग्य विधिसे त्रिभुवनके राज्य में प्रतिष्ठित कामदेवके मुख पर कस्तूरीके तिलकके छलसे मानो नवीन नीलमणिमय छत्र धारण किया था ॥६४॥ नये चन्द्रमाके भ्रमसे मेरे मुखके साथ मृगका समागम न हो जावे—इस विचारसे ही मानो किसी स्त्रीने मणिमय कुण्डलोंके छलसे अपने कानोंमें दो पाश धारण कर रक्खे थे ॥६५॥ जिसके कलश तुल्य स्तन कस्तूरी और कपूरके श्रेष्ठ पङ्कसे लिप्त हैं ऐसी कोई स्त्री मानो अपनी सखियों को यह दिखला रही थी कि मेरे हृदयमें धूली और मदसे युक्त कामदेवरूपी गजेन्द्र विद्यमान है ॥६६॥ किसी एक स्त्रीने गलेमें मोतियों और मणियोसे बनी वह हारलता धारण की थी जो कि सौन्दर्यरूपी जलसे भरी नाभिरूपी वापिकाके समीप घटीयन्त्रकी रस्सियोंकी शोभा धारण कर रही थी ॥६७॥ कामाधीन पतिके साथ अभिसार करनेमें

जिनका मन लग रहा है ऐसी तरुण स्त्रियां सन्मुख जलते हुए काला गुरुके सघन धूमके छलसे मानो अन्धकारका ही आलिङ्गन कर रही थीं ॥६८॥ काम-विलाससे पूर्ण लीलाओंमें सतृष्ण स्त्रियाँ विविध प्रकारका उत्तम शृङ्गार कर मनमें नये-नये मनसूबे बांधती हुई अपने-अपने पतियोंके साथ अपने-अपने स्थानोंपर गईं ॥६९॥ इस प्रकार पुण्यात्माओंमें श्रेष्ठ जगद्बान्धव-सूर्य जलविहारकी क्रीड़ामें वस्त्रहीन इन पर-स्त्रियोंको देख, दोष-समूहको दूर करनेके अभिप्रायसे सांशुक—सवस्त्र [पक्षमें किरणसहित] स्नान करनेके लिए ही मानो पश्चिम समुद्रकी ओर चल पड़ा ॥७०॥

इस प्रकार महाकवि श्री हरिचन्द्र द्वारा विरचित धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्यमें तेरहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।



चतुर्दश सर्ग

तदनन्तर रथके घोड़ोंके बहाने अपने आपको सात प्रकार कर वृद्धिके लिए आराधना करनेवाले अन्धकारको दयापूर्वक अवसर देनेके लिए ही मानो सूर्य अस्ताचलके सन्मुख हुआ ॥१॥ सूर्य, पूर्व-दिशा [पक्षमें पहली स्त्री] को छोड़ पाशधर—वरुण [पक्षमें बन्धन को धारण करने वाले पुरुष] के द्वारा सुरक्षित—पश्चिम दिशा [पक्ष मे अन्य स्त्रीके] साथ अभिसार करना चाहता था अतः नीचे लटकती हुई किरणोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो पाशधरकी पाशोंसे खिंचकर ही नीचे गिर रहा हो ॥२॥ उस समय सूर्य, स्वच्छन्दता-पूर्वक प्रेमियोंके पास आना-जाना रूप उत्सवमें रुकावट डालनेके कारण अत्यन्त कुपित व्यभिचारिणी स्त्रियोंके लाल-लाल लाखों कटाक्षोंसे ही मानो रक्तवर्ण हो गया था ॥३॥ चूँकि सूर्य, पूर्वगोत्र—उदयाचलकी स्थितिको [पक्षमें अपने वंशकी पूर्व परम्पराको] छोड़ नीचे स्थानोंमें आसक्त हो [पक्षमे नीच मनुष्योंकी संगतिमें पड़] वारुणी—पश्चिम दिशा [पक्षमें मदिरा] का सेवन करने लगा था अतः महान् [पक्षमें उच्च कुलीन] आकाशने उसे अपने संपर्कसे हटा दिया था ॥४॥ सूर्य संताप छोड़ पश्चिम दिशामें जिस-जिस प्रकार रक्त—लालवर्ण [पक्षमें अनुराग-युक्त] होता जाता था उसी उसी प्रकार कामीलोग भी स्पर्धासे ही मानो अपनी अपनी प्रेमिकाओंमें अनुरक्त होते जाते थे ॥५॥ सायंकालके समय जानेके इच्छुक सूर्यने प्रत्येक पर्वत पर औषधियोंके बीच अपनी किरणोंकी क्या धरोहर रक्खी थी और जो कुछ बाकी बची थीं उन्हें भी रखनेके लिए क्या अस्ता-

चलकी ओर आ रहा था ।।६।। सूर्य दिनान्तके समय भी [पक्षमें पुण्य क्षीण हो जाने पर भी] उस अस्ताचल पर जो कि क्रीडावनरूप केशोंसे युक्त पृथ्वीके मस्तकके समान जान पड़ता था, चूड़ामणि-पनेको प्राप्त हो रहा था । अहा ! महापुरुषोंका माहात्म्य अचिन्त्य ही होता है ।।७।। सूर्य एक धीवरकी तरह अस्ताचल पर आरूढ़ हो समुद्रमे अपनी किरण रूपी जाल डाले हुए था, ज्यों ही कर्क—केंकड़ा, मकर और मीन, [पक्षमे राशियां] उसके जालमें फँसे त्यों ही उसने खींच कर उन्हे क्रम-क्रमसे आकाशमे उछाल दिया ।।८।। प्रकट होते हुए अन्धकार-रूपी छुरीके द्वारा जिसका मूल काट दिया गया है और जिसका सूर्यरूपी पका फल नीचे गिर गया है ऐसी दिनरूपी लताने गिरते ही सारे ससारको व्याकुल बना दिया था ।।९।। समुद्र में आधा डूबा हुआ सूर्यविम्ब पतनोन्मुख जहाजका भ्रम उत्पन्न कर रहा था अतः चञ्चल किरणरूप काष्ठके अग्रभाग पर बैठा हुआ दिनरूपी वणिक् मानो पानीमें डूबना चाहता था ।।१०।। उस समय लाल लाल सूर्य समुद्रके जलमे विलीन हो गया जो ऐसा जान पड़ता था मानो विधातारूपी स्वर्णकारने फिरसे संसारका आभूषण बनाने के लिए उज्ज्वल सुवर्णकी तरह सूर्यका गोला तपाया हो और किरणाग्र [पक्षमे हस्ताग्र] रूप संडशीसे पकड़ कर उसे समुद्रके जलमे डाल दिया हो ।।११।। रथके घोडोंका वेष धारण करनेवाले अन्धकारके समूहने शूरवीर सूर्यको भी ले जाकर समुद्रके आवर्त रूप गर्त्तमे डाल दिया सो ठीक ही है क्योंकि बलवानोंके साथ विरोध करना अच्छा नहीं होता ।।१२।। चूँकि कमल-वनकी लक्ष्मी सूर्यका विरह सहनेमे असमर्थ थी अतः अपने घरमे पत्ररूपी किवाड़ बन्द कर लाल लाल कान्तिके छलसे प्रवासी सूर्यके साथ ही मानो चली गई थीं ।।१३।। यद्यपि वियोगका दुःख सभी दिशाओंको समान था

फिर भी जो पहले पूर्व दिशा मलिन हुई थी उससे वह प्रवासी सूर्यका अपने आपमें चुपचाप अतुल्य प्रेम प्रकट कर रही थी ॥ १४ ॥ सघन अन्धकारमें लक्ष्यका ठीक-ठीक ज्ञान नहीं हो सकेगा—यह विचार कर ही मानो कामदेव उस समय बड़ी शीघ्रताके साथ अपने बाणोंके द्वारा प्रत्येक स्त्री-पुरुष पर प्रहार कर रहा था ॥ १५ ॥ चकवा-चकवियोंके युगल परस्पर दिये हुए मृणालके जिन टुकड़ोंको बड़े प्रयत्नसे अपने मुखमें धारण किये हुए थे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो सायंकालके समय शीघ्र ही उड़ने वाले जीवको रोकनेके लिए वज्रके अर्गल ही हों ॥ १६ ॥ लम्बा मार्ग तय करने वाले सूर्यने सायंकालके समय समुद्रके जलमें अवगाहन कर उत्तम किरणरूप वस्त्र प्राप्त कर लिया था अतः अन्धकारसे मलिन आकाश रूप मार्गका वस्त्र छोड़ दिया था ॥ १७ ॥ सूर्य सायंकालके समय समुद्रमे गोता लगा कर नक्षत्र रूप रत्नोंको निकालनेके लिए जो प्रयत्न करता है वह व्यर्थ है क्योंकि प्रातःकाल उसकी किरणोंका स्पर्श पाकर वे पुनः समुद्र ही मे चले जाते हैं ॥ १८ ॥ यह कूटनिधि—कपटका भण्डार [पक्षमें शिखरोंसे युक्त] अस्ताचल, वसुओं—किरणों [पक्षमे धन] का अपहरण कर मित्र-सूर्य [पक्षमे सखा] को कहीं नष्ट कर देता है—इस प्रकार ज्योंही उसका लोकमे अपवाद फैला त्योंही उसने खूनसे रँगी छुरीकी तरह लालिमासे आरक्त संध्याको शीघ्र ही अपने भीतर छिपा लिया ॥ १९ ॥ इधर आकाश रूपी प्रौढ़ हाथीका मोतियोंके समान उज्ज्वल ताराओंके समूहको बखेरने वाला सूर्य-रूपी एक गण्डस्थल सायंकाल रूपी सिंहके नखाघातसे नष्ट हुआ उधर चन्द्रमाके छलसे दूसरा गण्डस्थल उठ खड़ा हुआ ॥ २० ॥

तदनन्तर जिसने सन्ध्याकी लालिमारूप रुधिर पीनेके लिए ताराओं-रूप दाँतोंसे युक्त मुँह खोल रक्खा है और कालके समान

जिसकी भयंकर मूर्ति है ऐसा अन्धकार वेतालके समान सहसा प्रकट हुआ ॥ २१ ॥ जब काल रूपी वानरने मधुके छत्तेकी तरह सूर्य-बिम्बको अस्ताचलसे उखाड़ कर फेंक दिया तब उड़ने वाली मधु मक्खियोंकी तरह अन्धकारसे यह आकाश निरन्तर व्याप्त हो गया ॥ २२ ॥ जब सूर्य-रूपी हंस अपने साथियोंके साथ यहाँसे किसी दूसरे जलाशयमें जा घुसा तब यह आकाश-रूपी सरोवर कभी न फटनेके कारण बड़ी-बड़ी अन्धकार रूप शैवालकी मञ्जरियोंसे व्याप्त हो गया ॥ २३ ॥ उस समय ऐसा जान पड़ता था कि आकाश रूपी स्त्री सूर्यरूप पतिके नष्ट हो जाने पर अन्धकार-समूहके बहाने केश बिखेरकर तारारूप अश्रुबिन्दुओंके समूहसे मानो रो ही रही हो ॥२४॥ जब अपने तेजके द्वारा द्विजराज—चन्द्रमा [पक्षमें ब्राह्मण] का प्राण-घात करने एवं संसारको संताप देनेवाला सूर्य वहाँसे चला गया तब आकाश-रूपी स्त्रीने उसके निवास गृहको शुद्ध करनेके लिए अन्ध-कारसे क्या मानो गोबरसे ही लीपा था ॥ २५ ॥ ऐसा जान पड़ता है कि उस समय प्रकाश अन्धकारके भयसे आँख बचाकर मानो लोगोंके चित्तमें जा छिपा था इसीलिए तो वे नेत्रोंकी परवाह न कर केवल चित्तसे ही ऊँचे-नीचे स्थानको देख रहे थे ॥२६॥ उस समय कामदेवकी आज्ञाका उल्लंघन कर जो पथिक शीघ्र ही जाना चाहते थे उन्हें रोकनेके लिए अन्धकार नील पत्थरके बने ऊँचे प्राकारका काम कर रहा था ॥ २७ ॥ चूंकि अनेक दोषोंसे युक्त अन्धकार केवल चोर और राक्षसोंके लिए ही आनन्द दे रहा था अतः यह बात स्वाभा-विक है कि मलिन पुरुष सम्पत्ति पाकर मलिन पुरुषोंके लिए ही आनन्ददायी होते हैं ॥२८॥ सुईकी अनीके अग्रभागके द्वारा दुर्भेद्य उस सघन अन्धकारके समय भी कोई एक स्त्री अपने प्रेमीके घर जा रही थी मानो हृदयरूपी वनमें लगी हुए कामदाह-रूपी अग्निसे

ही उसे मार्ग विदित हो रहा था ॥ २९ ॥ रात्रिके समय स्त्रियोंके द्वारा एक घरसे दूसरे घर ले जाये जाने वाले दीपक ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो अतिशय वृद्धिको प्राप्त हुए अन्धकारने तेजो गुणके साथ द्वेष होनेके कारण उन्हें बिलकुल अन्धा ही बना दिया हो ॥ ३० ॥ रात्रिके समय स्त्रियोंके द्वारा घर-घर बड़ी इच्छाके साथ ऊँची-ऊँची शिखाओंसे सुशोभित जो दीपक जलाये गये थे वे कुपित कामदेवके द्वारा छोड़े सतप्त बाण-समूहकी शोभाको धारण कर रहे थे ॥ ३१ ॥

तदनन्तर पूर्वाचलकी दीवालसे छिपे हुए चन्द्रमा-रूपी उपपतिने अपना परिचय देनेके लिए पूर्व दिशाके सन्मुख किरणोंके अग्रभागसे अपनी लाल-लाल कान्ति फेंकी ॥ ३२ ॥ जब ऐरावत हाथीने अन्धकारसे मलिन पूर्वाचलको प्रतिहस्ती समझ नष्ट कर दिया तब चन्द्रमा की किरणोंसे व्याप्त पूर्व दिशा ऐसी सुशोभित होने लगी मानो पूर्वाचलके तटसे उड़ी धातुके चूर्णसे ही व्याप्त हो ॥ ३३ ॥ उदयाचल, चन्द्रमाकी उदयोन्मुख कलासे ऐसा जान पड़ता था मानो अन्धकार समूह रूप हाथीको नष्ट करनेके लिए धनुषपर बाण रख निशाना बाँधे ही खड़ा हो ॥ ३४ ॥ उस समय दिशाओंमें जो लाल-लाल कान्ति फैल रही थी वह ऐसी जान पड़ती थी मानो पूर्वदिशा रूपी पार्वतीके द्वारा चलाये हुए अर्धचन्द्र—बाणने अन्धकार रूपी महिषासुरको नष्ट कर उसके रुधिरकी धारा ही फैला दी हो ॥ ३५ ॥ उस समय उदयाचलपर अर्धोदित चन्द्रमाका तोताकी चोंचके समान लाल शरीर ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो प्रदोष (सायंकाल) रूप पुरुषके साथ समागम करनेवाली पूर्व दिशा रूपी स्त्रीके स्तनपर दिया हुआ नखक्षत ही हो ॥ ३६ ॥ चूँकि चन्द्रमा अन्य तिथियोंमें अपनी कलाए क्रम-क्रमसे प्रकट करता है परन्तु पूर्णिमा तिथिमें

एक साथ सभी कलाएँ प्रकट कर देता है अतः मालूम होता है कि पुरु पक्षियोंके प्रेमानुसार ही अपने गुण प्रकट करता है ॥ ३७ ॥ समुद्रसे पीतवर्ण चन्द्रमाका उदय हुआ मानो उत्कट अन्धकार रूपी कीचड़से आकाशका भी उद्धार करनेके लिए दयाका भाण्डार एवं पृथिवी उद्धारकी लीलासे उत्पन्न घट्टेकी कालिमासे युक्त शरीरका धारक कच्छप ही समुद्रसे उठ रहा हो ॥ ३८ ॥ ज्योंही चन्द्रमा-रूपी चतुर [पक्षमे कलाओंसे युक्त] पतिने जिसमें नेत्र रूपी नील कमल निमीलित हैं ऐसे रात्रिरूपी युवतीके मुखका रागपूर्वक चुम्बन किया त्योंही उसकी अन्धकार-रूपी नील साड़ीकी गाँठ खुल गई और यह स्वयं चन्द्रकान्त मणिके छलसे द्रवीभूत हो गई ॥ ३९ ॥ एक ओर यह चन्द्रमा अपनी शक्तिसे दुःखी कर रहा है और दूसरी ओर वह रात्रिमें चलनेवाला [पक्षमे राक्षस रूप] पवन दुःखी कर रहा है अतः नेत्र कमल बन्दकर कमलिनी जिस किसी तरह पतिका वियोग सह रही थी ॥ ४० ॥ जिस चन्द्रमाने उदयाचल पर लाल कान्ति प्राप्त की थी मानो भीलोंने उसके हरिणको बाणोंसे घायल ही कर दिया हो वही चन्द्रमा आगे चलकर स्त्रियोंके हर्षाश्रु जलसे धुल कर ही मानो अत्यन्त उज्ज्वल हो गया था ॥४१॥ जब रात्रिके समय चन्द्रमा आकाश-रूप आँगनमें आया तब तरङ्ग-रूप भुजाओंको हिलाता हुआ समुद्र ऐसा जान पड़ता था मानो पुत्रवत्सल होनेके कारण चन्द्रमा-रूप पुत्रको गोदमें लेनेके लिए ही उमँग रहा हो ॥ ४२ ॥ अपने तेजसे समस्त संसारको व्याप्त करनेवाले चन्द्रमाने मानो अन्धकारको उतना कृश कर दिया था जिससे कि वह अनन्यगति हो कलंकके छलसे उसीकी शरणमें आ पहुँचा ॥४३॥ रात्रिके समय ज्योंही ओषधिपति चन्द्रमा कुमुदिनियोंके साथ विलासपूर्वक हास्य क्रीड़ा करनेके लिए प्रवृत्त हुआ त्योंही प्रभावशाली महौषधियोंकी

पङ्क्ति मानो ईर्ष्यासे ही प्रज्वलित हो उठी ॥ ४४ ॥ जब दिन भर सूर्यके द्वारा तपाये हुए कुमुदोंने मित्रताके नाते चन्द्रमाको अपना हृदय खोलकर दिखाया तब सुशोभित किरणोंका धारक चन्द्रमा ऐसा जान पड़ता था मानो क्रोधसे सूर्यके मित्रभूत कमलोंकी सफ़ेद-सफ़ेद जड़ें ही उखाड़ रहा हो ॥ ४५ ॥ जो कामदेवरूपी सर्प समस्त जगत्में घूमते रहनेसे मानो खिन्न हो गया था और इसीलिए दिनके समय स्त्रियोंके चित्र रूपी पिटारेमे मानो सो रहा था वह उस समय किरण रूप दण्डोंसे ताड़ित कर शीघ्र जगाया जा रहा था ॥ ४६ ॥ ऐसा जान पड़ता है कि चन्द्रमा, समस्त जगत्को ताड़ित करनेसे भोथल हुए कामदेवके बाणोंको पुनः तीक्ष्ण करनेका पट्टक है इसीलिए तो इसके द्वारा तीक्ष्ण किये हुए बाणोंको कामदेव संसार पर पुनः चलाता है ॥ ४७ ॥ जिस प्रकार दक्षिण नायक अपने हाथोंसे अपनी समस्त स्त्रियोंको अलंकृत करता है उसी प्रकार चन्द्रमाने भी अपनी किरणोंके अग्रभागसे आकाश और पृथिवी दोनोंको ही चन्दनमिश्रित कपूरके समूहसे अथवा मालती-मालाओंके समूहसे ही मानो अलंकृत किया था ॥ ४८ ॥ चन्द्रमाका शरीर कामदेवरूपी राजाका मानरूपी आतपको नष्ट करनेवाला मानो सफेद छत्र था इसीलिए तो कामवती मानिनी स्त्रियोंके मुखपर कोई अद्भुत छाया—कान्ति थी ॥ ४९ ॥ अरे ! इस कलङ्की चन्द्रमाकी यह अनिर्वचनीय धृष्टता तो देखो ! यह निर्दोषताके द्वारा हारकर भी तरुण स्त्रियोंके सामने खड़ा है, कैसा निर्लज्ज है ? ॥५०॥ मानवती स्त्रियोंका जो मन सघन अन्धकारके समय पतियोंके सन्मुख धीरे-धीरे जा रहा था अब वह चन्द्रमाके उदित होनेपर मानो मार्ग मिल जानेसे ही दौड़ने लगा था ॥ ५१ ॥ ऐसा जान पड़ता है कि स्त्री तभी तक सती रहती है जब तक कि वह अन्य

पुरुषके हाथका स्पर्श नहीं करती। देखो न, ज्योंही चन्द्रमाने अपने कराग्रसे [पक्षमें हस्ताग्रसे] लक्ष्मीका स्पर्श किया त्योंही वह कमलको छोड़ उसके पास जा पहुँची ॥ ५२ ॥

तदनन्तर पतियोंके आने पर स्त्रियोंने आभूषण धारण करना शुरू किया। ऐसा जान पड़ता था कि चन्द्रमा-रूप पतिके आने पर तारा-रूप मणिमय आभूषण धारण करनेवाली दिशाओंने ही मानो उन्हें यह उपदेश दिया था ॥ ५३ ॥ मै तो अमूल्य हूँ लोगोंने मेरे लिए यह कितनेसे सुवर्णके पेजना पहिना रक्खे—यह सोच कर ही मानो किसी कमलनयनाके नवीन महावरसे गीले चरणयुगल क्रोधसे लाल हो गये थे ॥ ५४ ॥ किसी स्त्रीने महादेवजीकी ललाटाग्निकी दाहसे डरनेवाले कामदेवके क्रीडानगरके समान सुशोभित अपने नितम्बस्थलके चारों ओर मेखलाके छलसे सुवर्णका ऊँचा प्राकार बाँध रक्खा था ॥ ५५ ॥ कृष्णाग्र भागसे सुशोभित स्त्रियोंके स्तनोंकी ऊँचाई हिलते हुए हारके सम्बन्धसे किस पुरुषके हृदयमे सातिशय कामोद्रेक नहीं कर रही थी? [कृष्ण मेघोंका आगमन करती हुई धाराओंके सम्बन्धसे नदियोंके प्रभाव द्वारा जलकी विशेष उन्नति कर रहा था] ॥ ५६ ॥ रात्रिके समय श्वाससे कापते एवं लाक्षा रससे रँगे स्त्रियोंके ओठको लोगोंने ऐसा माना था मानो चन्द्रमाके उदयमें बढ़नेवाले राग रूपी समुद्रकी तट पर छलकती हुई तरङ्ग ही हों ॥ ५७ ॥ ऐसा जान पड़ता है कि कामदेव रूपी कायस्थ [लेखक] किसी सुलोचना स्त्रीकी दृष्टि रूपी लेखनीको कज्जलसे मनोहर कर तारुण्य लक्ष्मीका शृङ्गार-भोगसम्बन्धी शासन-पत्र ही मानो लिख रहा था ॥ ५८ ॥ स्त्रियां आवरणके लिए जो भी सुकोमल नूतन वस्त्र धारण करती थीं उनके शरीरकी बढ़ती हुई कान्ति मानो क्रोधसे ही उच्छृङ्खल हो उसे अपने द्वारा अन्तर्हित कर लेती थी ॥ ५९ ॥ किसी

एक स्त्रीने अच्छी-अच्छी पत्रलताओंको आरोपित कर चन्दनका उत्तम तिलक लगाया [पक्षमें पत्ते वाली लताएँ लगा कर चन्दन और तिलकका वृक्ष लगाया] और इस प्रकार अच्छे-अच्छे विटोंके द्वारा [पक्षमे मंतरे और नागकेसरके वृक्षोंके द्वारा] सेवनीय मुख की नई शोभा कर दी [पक्षमे नवीन वनकी शोभा बढ़ा दी] ॥६०॥ इस प्रकार वेष धारण कर उत्सुकताको प्राप्त हुई स्त्रियोंने कामदेवरूपी राजाकी मूर्तिक आज्ञाओंके समान अलङ्घनीय अतिशयचतुर दूतियाँ पतियोंके पास भेजी ॥ ६१ ॥

तू दीनताको छिपा अन्य कार्यके बहाने उस अधमके पास जा और उसका अभिप्राय जान प्रकरणके अनुसार इस प्रकार निवेदन करना जिस प्रकार कि उसके सामने मेरी लघुता न हो। अथवा हे दूति ! प्रेम प्रकट कर दुःख प्रकाशित कर और चरणोमे भी गिर कर उस प्रियको इधर ला, क्योंकि क्षीण मनुष्य कौन-सा अकृत्य नही करते ? अथवा अर्थी मनुष्य दोष नही देखता, तू ही इस विषयमे प्रमाण है जो उचित समझे वह कर—इस प्रकार कामके संतापसे व्याकुल हुई किसी स्त्रीने अपनी सखीको संदेश दिया ॥ ६२–६४ ॥ [विशेषक] उधर पतिका अपराध मैंने स्वयं देखा है और इधर ये मेरे प्राण शीघ्र ही जानेकी तैयारी कर रहे हैं अतः इस कार्यके करने में हे दूति ! तू ही चतुर है—ऐसा किसीने कहा ॥ ६५ ॥ वह तुम्हारे निवासगृहके सम्मुख झरोखेमें प्रतिक्षण दृष्टि डालती और तुम्हारा चित्र लिख बार-बार तुम्हारे चरणोंमे पड़ती हुई दिन बिताती है। स्त्री होनेके कारण विना रुकावटके कामदेव अपने अमोघ बाणों द्वारा जिस प्रकार इस पर प्रहार करता है उस प्रकार आप अहंकारी पर नही करता क्योंकि आप पौरुषसम्पन्न हैं अतः आपसे मानो डरता है। चूँकि उस मृगनयनीका हृदय श्वासोच्छ्वाससे कम्पित हो

रहा है और कुछ-कुछ उष्ण अश्रु धारण करता है इससे जान पड़ता है कि मानो उसका हृदय आपके वियोगमे कामज्वरसे जर्जर हो रहा है। काम-रूपी सूर्यके सतापके समय उस चञ्चलाक्षीके शरीरमे ज्यों-ज्यों हारावली-रूपी मूल जड़ें प्रकट होती जाती है त्यों-त्यों आपके नाममे लीन रहनेवाली यह कण्ठरूपी कन्दली अधिक सूखती जाती है। वह कृशाङ्गी पहले तो दिनके समय रात्रिकी और रात्रिके समय दिनकी प्रशंसा किया करती थी परन्तु अब उत्तरोत्तर अधिक सताप होनेसे वहा रहना चाहती है जहाँ न दिन हो न रात्रि। अब जब कि वह तुम्हारे विरह-ज्वरसे पीड़ित है चन्द्रमा देदीप्यमान हो ले, कर्णोत्पल विकसित हो ले, हस इधर-उधर फैल लें और वीणा भी खेद-रहित हो खूब शब्द कर ले। इस प्रकार अश्रु प्रकट करते हुए सखीजनने जब घना प्रेम [पक्षमे मेघ] प्रकट किया तब वह मृगनयनी हँसीके समान क्षण भरमे अपने हृदयवल्लभ के मानसमें [पक्षमे मानसरोवरमे] प्रविष्ट हो गई—पतिने अपने हृदयमे उसका ध्यान किया ॥ ६६–७२ ॥ [कुलक]

युवा पुरुष शीघ्र ही अपनी स्त्रियोंके पास गये मानो सखियोंने उन्हें प्रेमरूपी गुण [पक्षमे रस्सी] को प्रकाशित करनेवाले वचनोंके द्वारा जबरन बाँधकर खींच ही लिया हो ॥ ७३ ॥ अरे ! क्या यह चन्द्रमा समुद्रके जलमे विहार करते समय बड़वानलकी ज्वालाओंके समूहसे आलिङ्गित हो गया था, अथवा अत्यन्त उष्ण सूर्य-मण्डल-के अग्रभागमें प्रवेश करनेसे उसका कठोर संताप इसमे आ मिला है, अथवा कलङ्कके बहाने सहोदर होनेके कारण बड़े उत्साहके साथ कालकूटको अपनी गोदमें धारण कर रहा है, जिससे कि मेरे अङ्गोंको मुर्मुरानलके समूहसे व्याप्त-सा बना रहा है, इस प्रकार शरीरमे स्थित वियोगाग्निकी दाहको सखियोके आगे प्रकट करती हुई

किसी मुमुखीने तत्काल आनेवाले पतिके हृदयमें अनुपम अनुराग उत्पन्न कर दिया था ॥७४–७६॥ [विशेषकम्] पतिके आनेपर किसी मृगाक्षीका हृदय क्या करना चाहिए इस विवेकसे विकलताको प्राप्त हो गया था मानो तत्काल कामदेवके अत्यन्त तीक्ष्ण शस्त्रसमूहके आघातसे घूम ही रहा हो ॥ ७७ ॥ जिनकी बरौनियां आसुओंसे तर-बतर है और कनीनिका क्षण-क्षणमें घूम रही हैं ऐसे किसी मृगाक्षीके नेत्र प्रियदर्शनके समय क्या प्रेम प्रकट कर रहे थे या मान ? ॥७८॥ प्रिय आगमनके समय, जिसमें नीवीबन्धन खुल रहा है, वस्त्र खिसक रहा है, पैर लडखड़ा रहे है, और कङ्कण खनक रहा है ऐसा किसी विशालाक्षीका स्थान देख उनकी सखियां भी आश्चर्यमें पड़ रहीं थी ॥ ७९ ॥ लावण्य–खारापन [पक्षमें सौन्दर्य] आप अपने शरीरमें धारण कर रही हैं और व्यवधान होनेपर भी मेरे शरीरमें दाह हो रहा है । हे शृङ्गारवति, यह तो कहो कि तुमने यह इन्द्रजाल कहांसे सीख लिया है ? यदि तुम्हारे स्तनोंमे जाड्य–शैत्य [पक्षमें स्थूलता] है तो मेरे शरीरमें कम्पन क्यों हो रहा है— इसप्रकार चाटूपसीके वचनोंका उच्चारण करते हुए किसी युवाने अपनी प्रियाको मानरहित किया था ॥८०–८१॥ [युग्म] यद्यपि तन्वीका मान गाढ़ अनुनयके द्वारा बाहर निकाल दिया है फिर भी उसका कुछ अंश बाकी तो नहीं रह गया–यह जाननेके लिए ही मानो विलासी पुरुष अपना चन्दनसे गीला हाथ उसके हृदय—वक्षःस्थलपर चला रहा था ॥ ८२ ॥ भौंहोंके भङ्गके साथ कर-किसलयोंके उल्लासकी लीलासे जिसमें नये-नये भाव प्रकट हो रहे हैं, जो मुखको आश्चर्यसे विहसित बना रही है एवं जो कामको उज्जीवित कर रही है ऐसी दम्पतियोंकी वह अभूतपूर्व गोष्ठी हुई जिसमें कि मानो अन्य इन्द्रियां कानोंके साथ तन्मयताको प्राप्त हो रही थीं ॥ ८३ ॥ जब चन्द्रमा

चन्दनके रसके समान अपने तेजसे दिशाओंको सींच रहा था तब कितने ही स्वस्थ युवा दूतीके वचन सुन बड़ी उत्कण्ठाके साथ स्त्रियोंके मुख प्राप्तकर उस प्रकार मधुपान करने लगे जिस प्रकार कि खिली हुई मकरन्दकी सुगन्धि ले भ्रमर बड़ी उत्कण्ठाके साथ विकसित कुमुदके पास जाकर मधुका पान करने लगते है ॥८४॥

इस प्रकार महाकवि श्री हरिचन्द्र द्वारा विरचित धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्यमे चौदहवॉं सर्ग समाप्त हुआ ।



पञ्चदश सर्ग

अनन्तर जिसने महादेवजीके ललाटस्थ नेत्रकी अग्निसे दग्ध कामदेवको जीवित कर दिया था, कोई कोई किन्नर लोग उस कल्पवृक्ष के मधुरूप अमृतका पान करनेके लिए उद्यत हुए ॥ १ ॥ चन्द्रमाके उदयमें विकसित होनेवाला, सुगन्धित कलिकाओंसे युक्त और दाँतों के समान केशरसे सुन्दर कुमुद जिस प्रकार भ्रमरोंके मधुपान करनेका पात्र होता है उसी प्रकार चन्द्रमाके समान प्रकाशमान, सुगन्धित, पत्र-रचनाओंसे युक्त एवं केशरके समान दाँतोंसे सुन्दर स्त्रीका मुख मधुपान करनेवाले लोगोंका मधुपात्र हुआ था ॥ २ ॥ अधिकताके कारण जिससे भरा हुआ मधु छलक रहा है ऐसे पात्रमें जबतक दम्पतियोंके चित्त उत्सुक हुए कि उसके पहले ही प्रतिबिम्बके छलसे उनके मुख अतिलोलुपताके कारण शीघ्र ही निमग्न हो गये ॥ ३ ॥ विलाससम्पन्न स्त्रियोंने पात्रके अन्दर दाँतोंकी कान्तिसे मिश्रित जिस लाल मधुका बड़ी रुचिके साथ पान किया था वह ऐसा जान पड़ता था मानो भाईचारेके नाते अमृतसे ही आलिङ्गित हो रहा हो ॥ ४ ॥ रात्रिके प्रथम समागमके समय जो चन्द्रमा भी लालवर्ण हो रहा था उसका एकमात्र कारण यही था कि उसने भी मानो स्त्रीके हाथमें स्थित पात्रके अन्दर प्रतिबिम्बके द्वारा मधुपान किया था ॥ ५ ॥ कोई एक स्त्री श्वासके द्वारा [फूँक-फूँककर] नूतन कमलकी परागको दूर हटा-हटाकर प्यालेका मधु पी रही थी जो ऐसी जान पड़ती थी मानो पतिके हाथके परिमार्जनसे बाकी बचे मानरूपी चूर्णको ही छोड़ रही हो ॥ ६ ॥ कोई एक स्त्री मधुरस समाप्त हो जाने पर भी मणि-

मय पात्रमें पड़नेवाली लालमणि-निर्मित कङ्कणकी प्रभाको मधु समझ जल्दी जल्दी पी रही थी, यह देख सखियोंने उसकी खूब हँसी उड़ाई ॥ ७ ॥ हे कृशोदरि ! चूँकि तुम जवानीसे कामसे और गर्वसे सदासे ही मत्त रहती हो अतः तुम्हारा इस समय मधुधाराकी पानक्रीड़ामे जो यह उद्यम हो रहा है वह व्यर्थ है। विधाताने जिस नेत्र-युगलको सफेद कमल, लाल कमल और नील कमलका सार लेकर तीन रङ्गका बनाया था उसे तुम इस समय मधुपानसे केवल लाल रङ्गका करना चाहती हो। जो अङ्ग-अङ्गमे पीड़ा पहुँचाता है, धैय नष्ट कर देता है और बुद्धिको भ्रान्त बना देता है, आश्चर्य है कि स्त्रियाँ उस मधुको भी बड़ी लालसाके साथ क्यो पीती हैं ?—इस प्रकार एकान्तमें रमण करनेके इच्छुक किसी कामान्ध युवाने मद्य-पानसे व्यर्थ ही विलम्ब होगा यह विचार अपनी स्त्रीसे चापलूसीके सुन्दर वचन कहे ॥ ८–११ ॥ [कलापक]

जब कोई एक मृगनयनी नेत्र बन्द कर मधु पी रही थी तब प्यालेका कमल खिल रहा था पर जब उसने मधु पी चुकनेके बाद नेत्र खोले और खाली प्याले पर उनका प्रतिविम्ब पड़ा तब ऐसा जान पड़ने लगा कि कमल लज्जासे ही मानो नीचे जा छिपा हो ॥ १२ ॥ बाहर बैठी हुई किसी स्त्रीसे उसके पतिने कहा कि यह मद्य तो अन्य पुरुषके द्वारा निपीत है आप क्यों पीती है ? यह सुन जब वह उस मद्यको छोडने लगी तब पतिने हँसते हुए कहा कि नहीं नहीं यह चन्द्र-बिम्बके द्वारा चुम्बित है, पुरुषके द्वारा नहीं ॥ १३ ॥ हे सखि ! यह चन्द्रमा बड़ा ढीठ मालूम होता है क्या यह पास ही खड़े हुए पतिको नहीं देखता कि जिससे मद्यके भीतर उतर कर मुख-पान करनेके लिए सामने चला आ रहा है। अथवा तेरे द्वारा डशा हुआ मुख मैं अपनी अन्य सखियोंके आगे कैसे दिखाऊँगी ? इस

प्रकार प्यालेमें प्रतिबिम्बित चन्द्रबिम्बको देखकर बड़े कौतुकके साथ सखियोंने किसी अन्य सखीसे कहा ॥ १४-१५ ॥ युग्म ॥ किसी एक पुरुषने बड़े कौतुकके साथ दो-तीन बार स्त्रियोंका मुख और मधु पीकर मधु-रसमें प्रीति छोड़ दी थी मानो वह उन दोनोंके बीच बड़े भारी अन्तरको ही समझ गया हो ॥ १६ ॥ चूँकि स्थूल जाँघों वाली स्त्रियोंने प्रतिबिम्बित चन्द्रमाके साथ मद्य पिया था इसी लिए मानो उनके हृदयोंके भीतर छिपे हुए क्रोधरूपी अन्धकार शीघ्र ही निकल भागे थे ॥ १७ ॥ किसी स्त्रीने काम उत्पन्न करने वाले [पक्षमे प्रद्युम्नको जन्म देने वाले] किसी एक पुरुषसे मद्य देनेकी बात कही पर उसने मद्य देते समय गोत्र भेद कर दिया—सपत्नीका नाम लेकर मद्य समर्पण कर दिया [पक्षमें वंशका उल्लंघन कर दिया] अतः स्त्रीकी श्री—शोभा [पक्षमे लक्ष्मी] संगत होने पर भी उसे अपुरुषोत्तम—नीच पुरुष [पक्षमें अनारायण] समझ उससे दूर हट गई ॥ १८ ॥ लज्जाजनित व्यामोह और वस्त्रको दूर कर प्रेमी पतिकी तरह मुखका चुम्बन करनेवाले मधुजलका स्त्रियोंने बड़ी अभिलाषाके साथ अनेक बार सेवन किया था ॥ १९ ॥ चूँकि लाक्षा रससे रिक्त ओठ मद्यके द्वारा दंशजनित व्रणोंसे रहित हो गये थे अतः कामी दम्पतियोंके लिए मद्य अधिक रुचिकर हो रहा था ॥ २० ॥ यद्यपि स्त्री-पुरुषोंका ओष्ठ मधुके द्वारा धोया गया था, मुखके द्वारा पिया गया था और दाँतोंके द्वारा खण्डित भी हुआ था फिर भी उसने अपनी रुचि—कान्ति [पक्षमें प्रीति] नहीं छोड़ी थी तब यह अधर—नीच कैसे हुआ ? ॥२१॥ हे पि पि पि पि प्रिय ! प्याला छोड़िये और मु मु मु मु मुखका ही मद्य दीजिये—इस प्रकार शीघ्रताके उच्चरित शब्दोंके द्वारा जिसके वचन स्खलित हो रहे हैं ऐसी स्त्री अपने हृदयवल्लभको आनन्द दे रही थी ॥ २२ ॥ मद्यरूपी

रसके द्वारा सींच-सींच कर स्त्रियोंका हृदय प्रायः सरल कर दिया गया था अतः अत्यधिक कुटिलता उनकी भौहों और वचनोंकी रचनाओंमें ही रह गई थी ॥ २३ ॥ स्त्रियोंके हृदयरूपी क्यारीमें मद्यरूपी जलके द्वारा हरा-भरा रहनेवाला मदन वृक्ष भ्रुकुटिरूपी लताओंके विलाससे साक्षात् किस पुरुषके हास्यरूपी पुष्प उत्पन्न नहीं कर रहा था—स्त्रियोंकी भौहोंका संचार देख किसे हँसी नहीं आ रही थी ? ॥ २४ ॥ जो स्त्री सन्तुष्ट थी वह मदिरापानसे असंतुष्ट हो गई और जो असन्तुष्ट थी वह सतोपको प्राप्त हो गई सो ठीक ही है क्योंकि इन्द्रियोंकी प्रवृत्तिको आच्छादित करने वाला मदिराका परिणाम सब प्रकारसे विपरीत ही होता है ॥ २५ ॥ भृकुटि रूप लताओंका सुन्दर नृत्य, मुखका अकस्मात् हँस पड़ना, स्वच्छन्द वचन और पैरोंकी लड़खड़ाहट—यह सब चुपचाप स्त्रियोंके नशा को अच्छी तरह सूचित कर रहे थे ॥२६॥ मान रूपी वज्रमय सुदृढ़ किवाड़ोंको तोडनेवाले एवं परदाकी तरह लज्जाको दूर करनेवाले मद्यने तत्काल धारण किये हुए धनुषसे अतिशय तेजस्वी कामदेवको प्रकट कर दिया ॥ २७ ॥

तदनन्तर कामी जन उज्ज्वल वस्त्रोंसे आच्छादित, अतिशय कोमलाङ्गी और स्पर्शमात्रसे कामवासनाको प्रकट करने वाली प्रियतमाओंको संभोग-सुखके लिए उन्हींके समान गुणों वाली शय्याओं पर ले गये ॥ २८ ॥ पतिके सुन्दर ओठोंके समीप जिसपर दन्तरूपी-मणियोंकी किरणें पड़ रही हैं ऐसी कोई स्त्री इस प्रकार सुशोभित हो रही थी मानो मनुष्योंके समीप रहने पर भी मृणाल रूपी नलीके द्वारा रसका पान ही कर रही हो ॥ २९ ॥ किसी नवोढा स्त्रीका हाथ यद्यपि उसका पति पकड़े हुए था फिर भी वह काँप रही थी, पति उसका चुम्बन करता था फिर भी वह अपना मुख हटा लेती थी,

और पति यद्यपि उससे बहुत बार बोलता था फिर भी वह एक आध बार कुछ थोड़ा-सा अस्पष्ट बोलती थी ॥३०॥ जब पतिने उत्तरीय वस्त्र खींचना शुरू किया तब स्त्रीने अपने दोनों हाथोंसे वक्षःस्थल ढक लिया पर उस बेचारीको इसका पता ही नहीं चला कि अधोवस्त्र मेरे नितम्बसे स्वयमेव शीघ्र ही नीचे खिसक गया है ॥ ३१ ॥ किसी कामुक पुरुषने शीघ्र ही मुख ढकनेके वस्त्रके समान स्त्रीकी चोली दूर कर दी मानो स्थूल स्तन-रूप गण्डस्थलोंसे सुशोभित काम रूपी अजेय मत्त हस्तीको ही प्रकट कर दिया ॥ ३२ ॥ स्त्रीके स्थूल उन्नत और कठोर स्तनरूपी पर्वतोंसे टकरा कर भी जो युवा पुरुष मूर्च्छित नहीं हुआ था, उसमें मै निश्चयसे अधर रूपी अमृतके पीनेका प्रेम ही कारण समझता हूँ ॥ ३३ ॥ किसी एक युवाने स्थूल स्तनोंका भार धारण करनेवाली प्रियतमाके हृदय [वक्षःस्थल] को अपने वक्षःस्थलसे इस प्रकार पीसा मानो उसके भीतर छिपे हुए क्रोधके दुःखदायी कणोंका चूर्ण ही करना चाहता हो ॥ ३४ ॥ कोई एक युवा स्वयं अग्रभागमे पीडित होने पर भी प्रथम आलिङ्गित प्रियतमाके शरीरको दूर करनेमे समर्थ नही हो सका था मानो प्रेमसे प्रकट हुए रोमाञ्च रूपी कीलोंसे उसका शरीर निःस्यूत ही हो गया था ॥ ३५ ॥ उन्नत नितम्ब और स्तनोंका आलिङ्गन करनेवाले वल्लभने मुझे बीचमे यूँ ही छोड़ दिया—इस क्रोधसे ही मानो स्त्रीका मध्यभाग त्रिवलिके छलसे भौंहे टेढ़ी कर रहा था ॥ ३६ ॥ सरस नखक्षतसे सुशोभित स्त्रियोंके स्थूल एवं उन्नत स्तनोंका भार ऐसा जान पड़ता था मानो पतिके समागमसे उत्पन्न सुखोच्छ्वासके वेगके भारसे विदीर्ण ही हो गया हो ॥ ३७ ॥ मेरे कठोर स्तन-युगलसे न तुम्हारे नाखून भग्न हुए और न हृदय पर तुम्हें चोट ही लगी—इस प्रकार उत्तम नवयौवनसे गर्वीली किसी स्त्रीने बड़े गर्वके साथ अपने

-पतिकी हँसी की थी ॥ ३८ ॥ क्रीड़ागृहमें निश्चल दीपक जल रहा था अतः ऐसा जान पड़ता था कि 'अत्यन्त निर्जन होनेके कारण यह सो गया' इस प्रकार अपने आपको प्रकट कर वह कौतुक वश दीपक रूपी नेत्रको खोलकर किसी शोभनाङ्गीके संभोग-रूपी चित्रको ही देख रहा हो ॥ ३९ ॥ यहाँ दूसरी स्त्री तो नहीं रहती ? ईर्ष्यासे भीतर यह देखनेके लिए ही मानो कोई स्त्री आलिङ्गन करनेवाले पतिके प्रीतिपूर्ण हृदयमें जा प्रविष्ट हुई थी ॥ ४० ॥ हाथसे आगेके बाल सँभालनेवाले किसी युवाने प्रियतमाका मुख ऊपर उठाकर चञ्चल जिह्वाके अग्रभागको बड़ी चतुराईके साथ चलाते हुए उसके अधरोष्ठका पान किया था ॥ ४१ ॥ जब पतिका हाथ रूपी दण्ड स्त्रीके स्थूल एवं उन्नत स्तन-रूपी तुम्बीफलका चुम्बन करने लगा तब उसने ताडित तन्त्रीके शब्दके समान अव्यक्त शब्दसे अपने आपका वीणापन पुष्ट किया था—ज्योंही पतिने अपने हाथोंसे स्त्रीके स्तनोंका स्पर्श किया त्योंही वह वीणाके समान कूज उठी ॥ ४२ ॥ जिस प्रकार सहाय आदि अगोंके संग्रह करनेमें तत्पर विजिगीषु राजा देशके मध्य भागमें सब ओर करपात करता है—टैक्स लगाता है उसी प्रकार नितम्ब आदि अङ्गोंके संग्रह करनेमें तत्पर कोई युवा स्त्रीके मध्यभागमें सब ओर करपात-हस्त-संचार कर रहा था और बड़ी उतावलीके साथ उसकी सुवर्ण-मेखला छीन रहा था ॥ ४३ ॥ बड़ा आश्चर्य था कि सुखद स्पर्शको प्राप्त पतिके हस्तरूपी दण्डमें ही रोमाञ्च रूपी कण्टकोंका संयोग नहीं हुआ था किन्तु स्त्रीके कुछ-कुछ विकसित कोमल नाभिरूपी कमलमें भी हुआ था ॥४४॥ यद्यपि इधर-उधर चलता हुआ पतिका हाथ प्रियाके नाभि-रूपी गहरे कुएँमें जा पड़ा था किन्तु मदान्ध होनेपर भी वह मेखला-रूपी रस्सीको पाकर उसके जघन-स्थल पर आरूढ हो गया था ॥४५॥ अधोवस्त्र

की गाँठ खोलते समय वल्लभाकी मणिमयी करधनीका जो कल-कल शब्द हो रहा था वही सखीके सम्भोगोत्सवकी लीलाके प्रारम्भमें बजनेवाला मानो उत्तम नगाड़ा था ॥ ४६ ॥ जब पतिका हाथ नीवीका बन्धन खोल आगे इच्छानुसार बढ़ने लगा तब स्त्रियोंने जो डॉट-डपट की थी उसे उन्हींकी अखण्ड मुसकराहट बिलकुल झूठ बतला रही थी ॥ ४७ ॥ कोई युवा मेखला-रूपी रस्सीको चलाने वाले हाथसे स्त्रीके ऊरु-रूपी स्तम्भोंका स्पर्श कर रहा था जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो संभोगके समय बँधे हुए कामदेव-रूपी महा हस्ती को ही छोड़ रहा हो ॥ ४८ ॥ भौंह, कपोल, डोंड़ी, अधर, नेत्र, तथा स्तनाग्रके चुम्बन करनेमें चतुर कोई युवा ऐसा जान पड़ता था मानो रुष्ट स्त्रीके द्वारा निषिद्ध रतिको समझा ही रहा हो ॥ ४९ ॥ सी सी शब्द, पायलकी झनकार और हाथके कङ्कणोंकी रुन-झुन—यह सब स्त्रियोंके ओष्ठखण्डन रूप कामसूत्रके विषयमें भाष्यपनेको प्राप्त हुए थे ॥ ५० ॥ चूँकि पतिकी दृष्टि स्त्रियोंकी कपोल भूमि, स्तनरूपी पर्वत और नाभिरूपी गर्तके नीचे विहार करके मानो थक गई थी इसीलिए वह उनके वराङ्गमें विश्राम करने लगी थीं ॥ ५१ ॥ जिस प्रकार गुप्त मणियोंसे युक्त हर्षोत्पादक खजाने पर पड़ी दरिद्र मनुष्यकी दृष्टि उसपरसे नहीं उठती उसी प्रकार नववधूके नितम्बफलक पर पडी पतिकी दृष्टि उसपरसे नहीं उठ रही थी ॥ ५२ ॥ ज्योंही पतिका लोचन-रूपी चन्द्रमा उन्नत स्तनाग्र रूप पूर्वाचल पर आरूढ हुआ त्योंही स्त्रीका जघन-प्रदेश कामरूप समुद्रके जलसे प्लावित हो गया ॥ ५३ ॥ जिसका कण्ठ निर्दोष मृदङ्गादि वादित्रके समान अव्यक्त शब्द कर रहा है ऐसा वल्लभ रति-क्रियाके समय ज्यों-ज्यों चञ्चल होता था त्यों-त्यों स्त्रीका नितम्ब विविध नृत्य-कालीन लयके अनुसार चञ्चल होता जाता था ॥ ५४ ॥ उस समय

दम्पतियोंमें परस्परके मात्सर्यसे ही मानो ओष्ठखण्डन, नखाघात, वक्षःस्थलताडन, स्तन तथा केशग्रहण आदिके द्वारा अत्यधिक काम-क्रीड़ाका कलह हुआ था ॥ ५५ ॥ कामी पुरुषोंका वह लज्जाहीन संभोग यद्यपि पहले अनेक बार अनुभूत था फिर भी हर्षके साथ आसनोंके परिवर्तनों, चाटुवचनों तथा रतिकालीन अव्यक्त शब्दोंके द्वारा अपूर्व-सा हुआ था ॥ ५६ ॥ संभोगके समय अश्रुओंसे गद्गद कण्ठवाली स्त्रियोंकी करुणोक्तियों अथवा शुष्क रुदनोंके जो शब्द हो रहे थे वे युवा पुरुषोंके कानोंमे अमृतपनेको प्राप्त हो रहे थे ॥५७॥ कामी पुरुषोंने संभोगके समय स्त्रियोंके प्रत्याघात, पुरुषायित चेष्टा, अत्यन्त धृष्टता और इस प्रकारका उपमर्द सहन करनेकी सामर्थ्य देख क्षण भरमे यह निश्चय कर लिया था कि यह स्त्री मानो कोई अन्य स्त्री ही है ॥ ५८ ॥ यद्यपि किसी कृशाङ्गीके हाथकी चूड़ी टूट गई थी, मालाएँ गिर गई थीं और हारलताका मध्य मणि विदीर्ण हो गया था फिर भी वह संभोगके समय किसी तरह श्रान्त नहीं हुई मानो प्रेमरूप कर्मसमूहके वशीभूत ही हो ॥ ५९ ॥ जिसमे धृष्टता स्पष्ट थी, इच्छाओं पर किसी प्रकारकी रुकावट नहीं थी, मनोहर अव्यक्त शब्द हो रहा था, शरीरकी परवाह नहीं थी और जो विविध प्रकारके चाटु वचनोंसे मनोहर था ऐसा प्रियतमाका सुरत पतिके लिए आनन्ददायी था ॥ ६० ॥ नेत्र निमीलित कर स्त्रियोंके रति-सुखका अनुभव करनेवाले पतियोंने निर्निमेष नेत्रोंके द्वारा उपभोग करने योग्य स्वर्गका सुख तुच्छ समझा था ॥ ६१ ॥ आत्म-सुखका तिरस्कार करनेवाले एवं प्रेमसे भरे हुए एक-दूसरेके चित्त को प्रसन्न करनेवाले उत्सवमें तत्पर संभोगने दम्पतियोंका प्रेम अत्यधिक बढ़ाया था ॥ ६२ ॥ अत्यधिक मद्यरसके पान-जनित विनोदसे जिनके हृदय अत्यन्त शून्य हो रहे थे ऐसे कितने ही स्त्री-

पुरुष वेगसे रति-क्रीड़ा की समाप्ति को प्राप्त नहीं हो रहे थे ॥ ६३ ॥ यद्यपि कुछ स्त्री-पुरुष शय्यासे उठ कर खड़े भी हुए थे परन्तु चूँकि रतोत्सवकी लीलाकी कुशलताने उनके नेत्र और मन दोनों ही हरण कर लिये थे अतः संभोगके अन्तमें जो उन्होंने परस्पर वस्त्रों का परिवर्तन किया था वह उचित ही था ॥ ६४ ॥ प्रियतमाके स्थूल स्तन-कलश पर हृदयवल्लभकी नखक्षतपङ्क्ति ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो सुन्दरता-रूपी मणियोंके खजाने पर कामदेव-रूपी राजा की मुहरके अक्षर ही अङ्कित हों ॥ ६५ ॥ झरोखों-द्वारा अट्टालिकाओं मे प्रवेश कर पवन उन्नत स्तनोंसे सुशोभित स्त्रियोंका शरीर देख कर मानो कामसे सतप्त हो गया था इसीलिए उसने उनके स्वेद जलका आचमन कर लिया था ॥ ६६ ॥ किसी स्त्रीका पति अपने द्वारा दष्ट वनिताके अधरबिम्बकी ओर देख रहा था अतः उसने अपना मुख नीचा कर लिया था जिससे वह ऐसी जान पड़ती थी मानो पुनः कामदेवके बाणोंके घावसे चिह्नित हृदयको ही लज्जित होती हुई देख रही हो ॥६७॥ कोई एक युवा यद्यपि काफी थका था फिर भी सभोगके बाद वस्त्र पहिनते समय बीचमे दिखे हुए स्त्रीके ऊरु-दण्डका अवलम्बन कर संभोगके मार्गमे चलनेके लिए पुनः उद्यत हुआ था ॥ ६८ ॥ चुम्बन द्वारा मृगनयनी स्त्रियोंके ओष्ठसे जिसमे लाक्षारसकी लालिमा आ मिली थी ऐसे पतिके नेत्र-युगलका ईर्ष्यासे ही मानो निद्रा समय पर चुम्बन नहीं कर रही थी ॥ ६९ ॥ इस प्रकार मधुपानके विनोदसे मत्त स्त्रियोंके रतोत्सवमे लीन लोगोंको बड़ी लालसाके साथ देखकर चन्द्रमा भी रात्रिके साथ कुमुदोंका मधु पीकर अस्ताचल सम्बन्धी क्रीड़ावनके सन्मुख हुआ ॥ ७० ॥

इस प्रकार महाकवि श्री हरिचन्द्र द्वारा विरचित धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्यमें पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

षोडश सर्ग

अनन्तर सेवाके लिए आये हुए, समय अथवा आचारको जानने वाले एवं क्षुभित समुद्रके समान गम्भीर शब्दसे युक्त देवोंका समूह त्रिभुवनसूर्य श्रीधर्मनाथ स्वामीके लिए अभ्युदय प्राप्त करनेके अर्थ इस प्रकार रात्रिके अवसानका निवेदन करने लगा ॥१॥ हे स्वामिन्! इस समय जब कि नये-नये चारण गलियोंमे आपकी निर्मल कीर्तिका व्याख्यान प्रारम्भ कर रहे हैं तब आकाशसे यह ताराओंका समूह ऐसा पड़ रहा है मानो हर्ष वश देवोंके द्वारा छोड़ा हुआ पुष्पोंका समूह ही हो ॥ २ ॥ चूँकि कुमुदिनियोंके साथ सभोग करनेवाले चन्द्रमाने अपने कलङ्कको दुगुणा कर लिया है इसीलिए मानो यह रात्रि रतिमें तत्पर और अम्बरान्त—आकाशान्त [पक्षमें वस्त्रान्त]मे लग्न इस चन्द्रमाको अपमानित कर जा रही है ॥ ३ ॥ स्त्रियोंके गाढ़ भुजालिङ्गनसे उनीद तरुणोंके नेत्र जोर-जोरसे बजनेवाले नगाड़ोंके शब्दोंसे नर्तकोंकी तरह बार-बार पलकोंको खोलते और लगाते है ॥ ४ ॥ यह आकाश-रूपी गर्वीली स्त्री दृष्टि-दोषको दूर करनेके हेतु जिसपर उल्मुक बुझा हुआ है ऐसे कपालकी भाँति कलङ्कयुक्त चन्द्र-विम्बको आपके मुखचन्द्रके ऊपर उतार कर दूर फेक रही है ॥ ५ ॥ स्त्रियोंके वे भाव, वे आसनोंके परिवर्तन और रतिजनित कोमल शब्दोंमे वह अलौकिक चातुरी—इस प्रकार एक एक आश्चर्यकारी रतका स्मरण करते हुए दीपक वायुसे ताड़ित हो मानो शिर ही हिला रहे हैं ॥६॥ चूकि श्रेष्ठ देवोंके द्वारा आपकी कथाओंके प्रारम्भ किये जाने पर अत्यन्त दोषी मनुष्य भी इसमे विलीन हो जाता है—अपने

दोष छोड़ देता है अतः ऐसा जान पड़ता है कि आपके गुणोंका कीर्तन शत्रुओंमें सादृश्यके अभ्युदयको भी मानो सहन नहीं करता ॥ ७ ॥ जब राजा—चन्द्रमा [पक्षमे नृपति] को नष्ट कर अरुणने सारे संसार पर आक्रमण कर लिया तब बजनेवाली दुन्दुभियोंका शब्द ऐसा फैल रहा था मानो पति-विरहसे फटनेवाले रात्रिके हृदयका उन्नत शब्द ही है ॥८॥ हे मानिनि ! यदि तेरा चचल चित्त पिछले कार्योंमे पश्चात्ताप करता है तो वल्लभको अब भी मना ले—इस प्रकार मुर्गोंका शब्द सुन कोई स्त्री प्रातःकालके समय अपने रुष्ट प्रियतमके पास जा रही है ॥९॥ यह पूर्णिमाकी सुन्दर रात्रि मुग्धा होने पर भी प्रिय-रूपी विधाताके द्वारा इस चन्द्रमा-रूपी अधरोष्ठके खण्डित होने पर शीतल वायुसे पीडित पथिकोंके मुखोंसे सीत्कार कर रही है और साथ ही हस्त—हाथ [पक्षमें हस्त नक्षत्र] हिला रही है ॥१०॥ इधर यह लक्ष्मी अपने निवासगृह—कमलको विध्वस्त देख क्रोध वश चन्द्रमासे बाहर निकल गई उधर औषधियोंकी पंक्ति भी उसे लक्ष्मीरहित देख शोकसे ही मानो अपना तेज छोड़ रही है ॥११॥ संभोगजनित स्वेद जलसे जो कामाग्नि स्त्रियोंके शरीरमें बुझ चुकी थी उसे प्रातःकालके समय खिलते हुए कमलोंकी परागके छोटे-छोटे कण बिखेरनेवाली वायु पुनः प्रज्वलित कर रही है ॥१२॥ कामकी चतुराईको प्रकट करनेवाली आप लोगोंने यह कामका युद्ध अच्छी तरह सहन किया—भ्रमरोंके शब्दके बहाने यह कह प्रातःकालकी वायुकी परम्परा सखीकी भाँति हर्षसे मानो स्त्रियोंका स्पर्श ही कर रही है ॥१३॥ इन दीपकोंने दिवानाथके अस्त होनेपर घर-घर अपना बड़प्पन दिखलाया—इस क्रोधसे ही मानो प्रातःकाल पवनरूपी हाथसे धूमरूपी बाल खींचकर इस समय दीपकोंको नष्ट कर रहा है ॥१४॥ जिस पर किरण रूपी सफेद बाल निकले हैं ऐसे रात्रि रूपी

वृद्धा स्त्रीके शिरके समान जब चन्द्रमा नीचेकी ओर झुक गया, तब पक्षियोंके शब्दोंके बहाने परस्पर खिलखिलाती हुई दिशा रूपी स्त्रियां मानो विप्लवसूचक अट्टहास ही कर रही हैं ॥१५॥ ये युवतियाँ जो कि चरणोंका पूर्वार्ध ऊपर उठा गलेका आलिङ्गन कर आनन्दसे नेत्र बन्द कर रही हैं वे बाहर जानेके लिए शय्या तलसे उठकर खड़े हुए पतियोंसे चापलूसी प्रकट करती हुई चुम्बनोंकी याचना कर रही हैं ॥१६॥ चूंकि ये भ्रमर दिनके समय कमिलिनीमें मधुपान कर रात्रिके समय कुमुदिनियोंके साथ क्रीडा करते रहे हैं अतः ये न केवल वर्णके द्वारा ही अपनी कृष्णता प्रकट करते हैं अपि तु अपने आचरणके द्वारा भी ॥१७॥ सूर्यके अस्त होनेपर अन्धकाररूपी पिशाचके वश पड़े हुए आप लोगोंको कोई बाधा तो नहीं हुई ? मानो दिशाएं स्नेह वश ओस रूपी अश्रुओंको छोड़ती हुई पक्षियोंकी बोलीके बहाने लोगोंसे यही पूछ रही है ॥ १८ ॥ हे सौभाग्यशालिन ! रात्रिके समाप्त होने पर आकाशमें चन्द्रमाकी यह फीकी कान्ति ऐसी जान पडती है मानो लक्ष्मीने अपने गुण देखनेकी इच्छासे तुम्हारे इस मुख-रूपी दर्पणको माँजकर राख ही फेकी हो ॥१९॥ पतिके विरहसे दुखी चकवी पर दया आनेसे कमलिनी मानो रात भर खूब रोती रही है इसीलिए तो उसके कमल-रूपी नेत्र प्रातःकालके समय जल-कणोंसे चिह्नित एवं लाल लाल दिखाई दे रहे हैं ॥२०॥ आकाशका अग्रभाग पक्षियोंके निवासभूत वृक्षके समान है चूंकि उसके नक्षत्र-रूपी क्रमसे पके हुए पीले पत्ते गिर चुके हैं अतः पूर्व दिशामें सूर्यकी प्रभा उसपर निकलते हुए नये पल्लवोंकी शोभा धारण कर रहा है ॥ २१ ॥ सन्ध्याकाल रूपी कपालीने जो आगे भस्म, हड्डियोंका समूह और कपाल रूपी मलिन वस्तुओंका समूह फैला रक्खा था उसे प्रातः-काल सूर्यके उदित होनेपर चाँदनी, नक्षत्र और चन्द्रमाके बहाने कचड़ाकी तरह दूर कर रहा है ॥ २२ ॥

चूँकि इस आकाशने सम्पूर्ण रूपसे मनुष्य-समूहका सौन्दर्य नष्ट करनेवाले अन्धकारके लिए अवकाश दिया था अतः सूर्य अपने मण्डलाग्र—बिम्बाग्र रूपी तलवारको ऊपर उठा उसे अवणाकररहित—अथवा नक्षत्रकी किरणोंसे रहित [पक्षमें कान और हस्त रहित] कर रहा है—उसके कान और हाथ काट रहा है ॥२३॥ जिसके प्रारम्भमें ही उच्चैःश्रवा अश्व, ऐरावत हाथी तथा लक्ष्मी प्रकट हुई है [पक्षमें तत्काल निकलनेवाले उच्चैःश्रवा और ऐरावतके समान जिसकी शोभा है] जो क्षुब्ध होकर ऊपर आनेवाले मकर, कुलीर और मीनोंसे रक्तवर्ण हो रहा है [पक्षमें उदित होने वाली मकर, कर्क और मीन राशिसे युक्त तथा रक्त वर्ण है] और अहीनरश्मि—शेष-नाग रूप रस्सीसे सहित है [पक्षमें विशाल किरणोंका धारक है], ऐसा यह चन्द्रमारूपी मन्दरगिरि देवोंका कार्य करता हुआ समुद्रसे उन्मग्न हो रहा है—मथनके उपरान्त बाहर निकल रहा है ॥ २४ ॥ ऊपर जानेवाली किरणोंके द्वारा अन्धकारका नाश करनेवाला सूर्य समुद्रके जलरूपी तेलके समीप उत्तम दीपककी शोभाको प्राप्त हो रहा है और उसके ऊपर यह आकाश पतङ्ग-पातके भयसे रक्खे हुए मरकत मणिके पात्रकी तरह सुशोभित हो रहा है ॥ २५ ॥ ऐसा जान पड़ता है मानो यह पूर्व दिशा सूर्यको दीपक, रथके घोड़ोंको दूर्वा, सारथिको कुङ्कुम और आकाशको पात्र बनाकर नक्षत्ररूपी अक्षतोंके समूहको आगे फेंकती हुई आपका मङ्गलाचार ही कर रही है ॥ २६ ॥ प्रातःकालके समय यह सूर्य समुद्रसे साथ लगी हुई मूँगाओंकी किरणोंसे, अथवा सिद्धाङ्गनाओंके हाथोंमे स्थित अर्घकी कुङ्कुमसे अथवा मनुष्योंके अनुरागकी कन्दलियोंसे ही मानो लाल लाल हुए शरीरको धारण कर रहा है ॥ २७ ॥

हे त्रिलोकीनाथ ! उठिये, शय्या छोड़िये और बाहर स्थित

-आश्रितजनोंके लिए अपना दर्शन दीजिए। आपके तेजसे पराजित हुआ सूर्य शीघ्र ही उदयाचलके वनमें अधिरूढ़ हो ॥ २८ ॥ दुर्गम मार्गको तयकर आया एवं उदयाचल रूपी उत्तम सिंहासन पर अधि-रूढ हुआ यह सूर्य क्षणभरके लिए ऐसा जान पड़ता है मानो अभ्यु-दयका महोत्सव प्रारम्भ कर किरण रूप केशरसे दिशारूप स्त्रियोंको विलिप्त ही कर रहा हो ॥ २९ ॥ इधर ये गोपिकाएं उस दधिको, जो कि सूर्यकी किरणों [पक्षमें हाथों] के अग्रभागसे पीडित चन्द्रमासे च्युत अमृतके समान जान पड़ता है, कलशियोंमे मथती हुई मेघ ध्वनिके समान गम्भीर ध्वनिसे मयूरोंके समूहको उत्कण्ठित कर रही हैं ॥ ३० ॥ इस समय कमलिनियां [पक्षमें पद्मिनी स्त्रियाँ] जिसने रात्रिभर चन्द्रविम्बको नहीं देखा ऐसे अपने कमल-रूपी नेत्रको सूर्य रूपी प्रियतमके वापिस लौट आनेपर आनन्दसे बड़े उल्लासके साथ मानो भ्रमररूपी कज्जलके द्वारा आंज ही रही हैं ॥ ३१ ॥ इधर ये सूर्यकी नई-नई किरणें जो कि मस्तकमे सिन्दूरकी, मुखचन्द्रमें कुङ्कुमकी और वस्त्रोंमे कुसुम्भ रङ्गकी शोभा धारण कर रही हैं, पतिव्रता कुलीन स्त्रियोंको वैधव्य दशामें दोष युक्त बना रही है। [पतिव्रता विधवाएं मस्तकमे सिन्दूर नहीं लगाती, मुख पर कुङ्कुम नहीं मलती और रङ्गे हुए वस्त्र भी नहीं पहिनती परन्तु सूर्यकी लाललाल किरणोंके पड़नेसे वे उक्त कार्य करती हुई-सी जान पडती थी] ॥ ३२ ॥ लक्ष्मी रात्रि के समय स्वच्छन्दता पूर्वक चन्द्रमाके साथ अभिसार कर प्रातः काल कमल रूपी घरमें कपाट खोल आ प्रविष्ट हुई और अब सूर्य रूप पतिके पास पुनः जा रही है सो ठीक ही है क्योंकि स्त्रियोंके गहन चरित्रको कौन जानता है ॥ ३३ ॥ यह उदित होता हुआ सूर्य ऐसा जान पड़ता है मानो प्रस्थान करनेके लिए उद्यत स्वामीका योग्य मङ्गलाचार करनेके लिए प्राचीने जिसके मुखपर स्थिर नील पत्र ढका

है ऐसा सुवर्ण-कलश ही उठा रक्खा है ॥ ३४ ॥ हाथियोंके मदसे सिक्त एवं राजाओंके परस्पर शरीरसंमर्दसे पतित मणियोंसे सुशोभित द्वारपर चञ्चल घोड़ोंके चरण रूपी वादित्रके शब्दों और फहराती हुई ध्वजाओंके कपटसे ऐसा जान पडता है मानो राज्य-लक्ष्मी ही नृत्य कर रही हो ॥ ३५ ॥ ॥ हे भगवन् ! आप उद्योग-शाली श्रेष्ठ सेनाके साथ विहार करनेवाले है अतः सूर्यकी तीक्ष्ण किरणोंके अग्रभाग रूपी टाकियोंके आघातसे जिनका अन्धकार एवं नतोन्नत वर्फकी शिखरें खुद कर एक-सी हो चुकी हैं ऐसी दिशाएँ इस समय आपके प्रस्थानके योग्य हो गई हैं ॥ ३६ ॥ जिस प्रकार अत्यन्त प्रवल प्रतापके पात्र-स्वरूप आपके दृष्टिगत होने पर शत्रुओंके समूहमे संताप प्रकट होने लगता है उसी प्रकार इस समय अतिशय प्रतापी सूर्यके दृष्टिगत होते ही—उदित होते ही सूर्यकान्त मणियोंके समूहमे संताप प्रकट हो गया है ॥ ३७ ॥ इस प्रकार श्री धर्मनाथ स्वामी मन्दराचलसे क्षुभित जलके शब्दोंके समान देवोंकी वाणी सुनकर हिलते हुए सफेद वस्त्रसे सुशोभित विस्तरसे उस तरह उठे जिस तरह कि वायुसे लहराते हुए क्षीर समुद्रसे चन्द्रमा उठता है—उदित होता है ॥ ३८ ॥

तदनन्तर उदयाचलकी तरह उत्तुङ्ग सिंहासनसे उठनेवाले चन्द्र-तुल्य भगवान् धर्मनाथने जिनके हस्तकमलोंके अग्रभाग मुकुलित हो रहे हैं। और जो पर्वततुल्य सिंहासनोंसे उठकर पृथिवीपर नमस्कार कर रहे थे ऐसे देवेन्द्रोंको ऐसा देखा मानो नदियोंके प्रवाह ही हों ॥ ३९ ॥ हे दयारूप धनके भाण्डार ! आप अपनी दृष्टि डालिये जिससे कि सेवाभिलाषी जन चिरकालके लिए कृतार्थ हो जावें क्योंकि आपकी वह दृष्टि चिन्तितसे अधिक फल प्रदान करती हुई चिन्तामणिकी गणनाको दूर करती है—उससे भी कहीं अधिक है

॥ ४० ॥ जब प्रतीहारीने उच्चस्वरमें ऐसा निवेदन किया तब योग्य-शिष्टाचारको जाननेवाले श्रीधर्मनाथ स्वामीने सभाके प्रत्येक मनुष्य और देवेन्द्रसे भौंह, दृष्टि, मुसकान और वचनोंकी प्रसन्नता द्वारा यथा योग्य वार्तालाप किया ॥४१॥युग्म॥ जिन्होंने प्रातःकालीन समस्त कार्य करके समयके अनुरूप वेष धारण किया है ऐसे श्री जगत्पति भगवान् धर्मनाथने नूतन पुण्यके समान मदस्रावी ऊँचे हाथी पर सवार होकर प्रस्थान किया ॥ ४२ ॥ जिस प्रकार सूर्यके पीछे प्रभा जाती है, गुणीके पीछे कीर्ति जाती है और उत्साही योद्धाके पीछे विजय-लक्ष्मी जाती है उसी प्रकार ससारमें फैलनेवाली अजेय एवं दुर्लभ सेना उन त्रिलोकीनाथके पीछे जा रही थी ॥४३॥ प्रस्थानके समय प्रलयनट—रुद्रके भारी अट्टहासको तिरस्कृत करनेवाले बडे-बड़े नगाड़ोंके शब्दों एव उड़ती हुई धूलिके छलसे ऐसा जान पड़ता था मानो समस्त दिशाएं भयसे एक स्थान पर एकत्रित ही हो रही हो ॥ ४४ ॥ महावतके द्वारा जिसका बन्धन दूर कर दिया गया है ऐसे किसी अन्य हाथीको देख उसे नष्ट करनेके तीव्र इच्छुक हाथीने मदजलकी दूनी धारा छोड़ते हुए बन्धनके ऊँचे वृक्षको हठ पूर्वक तोड़ डाला था ॥ ४५ ॥ कोमल शेषनागके मस्तक पर स्थित पृथिवी तुम्हारे सुदृढ पैरोंको धारण करनेमे समर्थ नहीं है—इस प्रकार भ्रमर रूप दूतोंने मानो कानोंके पास जाकर गजराजसे कह दिया था इसीलिए वह धीरे-धीरे पैर उठाता हुआ जा रहा था ॥४६॥ चरणोंके भारसे नष्ट होनेवाली पृथिवीको हस्तावलम्बन देनेके लिए ही मानो जिनके हस्त [सूंड] नीचेकी ओर लटक रहे है तथा कानोंके समीप शब्द करनेवाले । भ्रमरो पर क्रोध वश जिनके नेत्र कुछ-कुछ सकुचित हो रहे हैं ऐसे बडे-बड़े गजराज मार्गमें इनके आगे जा रहे थे ॥४७॥ उस समय सब ओर बड़े-बडे गजराज ऐसे चल रहे थे मानो चञ्चल

कर्णरूपी तालपत्रकी वायु-परम्पराके संपर्कसे शीतल, विशाल शुण्डा-दण्डके जलकणोंके द्वारा संमर्दके भारसे मूर्च्छित दिशाओंको सींचते ही जा रहे हों ॥ ४८ ॥ जो लक्ष्मीके सुन्दर चमरोंके समान चञ्चल पूँछोंके पीछे निरन्तर चल रहा था वह वायु, वेगके द्वारा सब ओरसे पृथिवीको व्याप्त करनेवाले घोड़ोंके द्वारा किस प्रकार उल्लङ्घित नहीं किया गया था ? ॥ ४९ ॥ परस्परके आघातवश लोहेकी लगामोंसे उछलते हुए अग्निकणोंके छलसे घोड़े ऐसे जान पड़ते थे मानो अत्यधिक वेगमें बाधा करनेवाले वनमें क्रोधसे दावानल ही डालते जा रहे हों ॥ ५० ॥ उस समय अच्छे-अच्छे चञ्चल घोड़ोंके चरणोंके खुदे भूमण्डलकी धूलिसे आकाशके व्याप्त हो जानेपर सूर्य दिखाई नहीं दे रहा था मानो दिशा-भ्रान्ति होनेसे कहीं अन्यत्र जा पड़ा हो ॥ ५१ ॥ जल्दी-जल्दी छलाँग भरने एव गतिके वेग द्वारा अलङ्घनीय गर्तमयी भूमिको लाँघनेवाले घोड़ोंने सर्वत्र किन पुरुषोंके मनमे वातप्रमी जातिके श्रेष्ठ मृगोंकी भ्रान्ति उत्पन्न नहीं कर दी थी ? ॥५२॥ उछलते हुए घोड़ोंसे लहराती अग्रगामी सेनाके संचारसे खुदे शिखर-समूहके छलसे ऐसा जान पड़ता था मानो मार्गमें सर्वप्रथम रुकावट डालनेवाले विन्ध्याचलका शिर ही सैनिकोंने क्रोधवश छेद डाला हो ॥ ५३ ॥ आगे चलकर पर्वतकी शिखरोंको खोदनेवाले घोड़ोंके समूहने धूलिके द्वारा समस्त गर्तमय प्रदेश पूर दिये थे अतः रथ चलानेवालेकी वह उचित ही बुद्धि उत्पन्न हुई थी कि जिससे पीछे चलनेमें उसे मार्ग सुगम हो गया था ॥५४॥ जो हाथीके भयसे अग्र-भागको छोड़ दाँत ऊपर करता हुआ बड़े जोरका घर्घर शब्द कर रहा था तथा बड़े-बड़े पैरों द्वारा इधर-उधर कूद रहा था ऐसा ऊँट सेनाके अग्रभागमें चतुर नटका तमाशा कर रहा था ॥ ५५ ॥ जब समस्त दिग्गजोंकी मदरूपी नदियाँ सेनाके संचारसे उड़ती हुई धूलिसे स्थल

बना दी गई तब उड़े हुए भ्रमर-समूहसे व्याप्त आकाश ऐसा लग रहा था मानो अविरल दुर्दिनसे ही व्याप्त हुआ हो ॥ ५६ ॥ जाते हुए भगवानने भयसे व्याकुल शबरियोंके द्वारा फेंके हुए गुमचियोंके समूहमें प्रज्वलित दावानलका भ्रम होनेसे वनों पर कई वार दया रूप अमृत रसको झरानेवाली दृष्टि डाली थी ॥ ५७ ॥ चलनेवाली सेनाके भारसे जिसकी नदियोंका वेग रुक गया है, बड़े-बड़े हाथियोंके द्वारा जिसकी उन्नत शिखरें तिरस्कृत हो गई हैं और ध्वजाओंके द्वारा जिसकी कन्दलियोंकी शोभा जीत ली गई है ऐसे विन्ध्याचल पर चढ़कर भगवानने अपने व्यापक गुणोंसे उसे नीचा कर दिया था [पक्षमे पराजित कर दिया था] ॥ ५८ ॥ हाथियोंकी सेनाके चलने पर नर्मदाका पानी सहसा उल्टा बहने लगा था परन्तु उनकी मदजल-निर्मित नदियाँ समुद्रके ही मध्य पहुँची थीं ॥ ५९ ॥ हमारे दन्तद्वय-रूप अट्टालिकामें रहनेवाली लक्ष्मी चञ्चल है परन्तु इन कमलोंमें रहनेवाली लक्ष्मी निश्चित ही अनन्यगामिनी है—इन्हें छोड़कर अन्यत्र नहीं जाती—इस प्रकार क्रोधसे विचरते हुए ही मानो गज-राजोंने नदीके कमल तोड़ डाले थे ॥ ६० ॥ स्कन्धपर्यन्त जलमे घुसकर बड़े-बड़े दाँतोंके द्वारा जिन्होंने कमलोंके सीधे नाल जड़से उखाड़ लिये हैं ऐसे हाथी इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे मानो नदीके समस्त उदरको विलोडन कर उसकी आँतोंका समूह ही उन्होंने खींच लिया हो ॥ ६१ ॥ सब ओर खिली हुई नवीन कमलिनियों और हंसोंकी क्रीड़ारूप अलंकारोंके संभेदसे सुन्दर नर्मदा नदीको भगवान् धर्मनाथने ऐसा पार किया था जैसा मानो कार्यसिद्धिके आनन्दभवनकी देहली ही हो ॥ ६२ ॥ चूँकि वह विन्ध्याटवी देव-रूपी भीलोंका प्रयोजन सिद्ध कर रही थी [पक्षमें-सुरस-रसीले वरका आश्रय कर रही थी] तथा अत्यन्त उन्नत एवं विशाल पयोधरों—

मेघोंसे उसका अग्रभाग सुशोभित था [पक्षमे—उन्नत एवं स्थूल स्तनाग्रसे सुशोभित थी अतः गुणगुरु भगवान् धर्मनाथने चीरक्रमें उत्सुक मन होकर भी एकान्त देख स्थिर रूपसे उसकी सेवा की थी ॥ ६३ ॥ उन्नत वृक्षरूपी अट्टालिकाओं पर पानगोष्ठीमें तत्पर भ्रमर-समूहके द्वारा चुपचाप निवेदित मधुर-मधुको पुष्परूपी पात्रमें धारण करनेवाली वह विन्ध्याटवी मद्यशालाकी तरह सैनिकोंके द्वारा शीघ्र ही छोड दी गई ॥६४॥ यद्यपि भगवान् धर्मनाथ कार्य-सिद्धिके लिए शीघ्र ही गमन कर रहे थे फिर भी मार्गमें जहाँ शीतल पानी वाली नदियाँ, हरी घाससे युक्त पृथिवी और बड़े-बडे हाथियोंका भार सहनेमें समर्थ वृक्ष होते थे वहां उनके कुछ आवास हुए थे ॥६५॥ वह मार्ग यद्यपि बड़ा लम्बा और अत्यन्त दुर्गम था फिर भी उन्होंने उसे इस प्रकार पार कर लिया था मानो दो-कोश प्रमाण ही हो। इस तरह अपना उत्कण्ठापूर्ण हृदय प्रियामें धारण करते हुए स्वामी धर्मनाथ विदर्भ देश जा पहुँचे ॥ ६६ ॥ भगवान् धर्मनाथने बीचका विषम मार्ग कहीं सुखकर घोड़ेपर और कहीं हाथी पर बैठकर सुखसे शीघ्र ही व्यतीत किया था किन्तु धनप्रधान इस विशाल देशमे उन्होंने रथपर बैठकर ही उस प्रकार गमन किया था जिस प्रकार पुनर्वसु नक्षत्र प्रधान विशाल आकाशमें सूर्य गमन करता है ॥ ६७ ॥ मेघोंकी गम्भीर गर्जनाका अनुकरण करनेवाले शब्दोंके द्वारा मयूरोंके ताण्डव-नृत्यमें पाण्डित्य धारण करनेवाले एव ग्रामीण मनुष्योंके द्वारा बड़े हर्षके साथ अवलोकित रथपर विराजमान भगवान् मेघपर विराजित इन्द्रके समान अधिक सुशोभित हो रहे थे ॥६८॥ चूँकि यहाँके क्षेत्रकी शोभा अधिक तिलोंसे उत्तम है [पक्षमें-अधिक तिलोत्तमा नामक अप्सरासे सहित है], यहाँकी स्त्रियाँ उत्तम केशोंसे युक्त हैं [पक्षमें—सुकेशी नामक अप्सराएँ है] यहाँ प्रत्येक दिशामे रम्भा—कदलीसहित गृहके

उद्यान हैं [पक्षमे—रम्भा नामक अप्सरासे सहित है] इस प्रकार अनेक जलके सरोवरों [पक्षमे—अप्सराओं] से युक्त है अतः स्वामी धर्मनाथने इस देशको स्वर्गसे भी कहीं अधिक माना था ॥ ६९ ॥ जगत्पति श्री धर्मनाथ स्वामी जिस सौन्दर्य-रूपी अमृतको धारण कर रहे थे वह यद्यपि स्वभावसे ही वितृत और विलास-चेष्टाओंसे अपरिचित ग्रामीण स्त्रियोंके नयनपुटों द्वारा पिया जा रहा था फिर भी उत्तरोत्तर अधिक होता जा रहा था—यह एक आश्चर्यकी बात थी ॥ ७० ॥

गुणगुरु भगवान धर्मनाथने उस देशको उस लक्ष्मीको बड़े हर्षके साथ देखा था, जो कि पौड़ा और ईखसे मिश्रित धानसे सुशोभित खेतोंमे खिले हुए सफेद कमलोंके छलसे मानो अन्य देशों की लक्ष्मीकी हँसी ही कर रही थी ॥ ७१ ॥ कुम्हड़ा, कचरिया, भटा तथा गुच्छोंसे नम्रीभूत बथुएसे युक्त शाकके कच्छवाटोंसे परस्पर व्याप्त देशमें उलझी हुई भगवान्‌की दृष्टि बड़ी कठिनाईसे निकल सकी थी ॥ ७२ ॥ देशकी शोभाके द्वारा जिनके हृदय और नेत्र दोनों ही हृत हो चुके हैं ऐसे भगवान् धर्मनाथने थकावटकी तरह उस मार्गको क्षण भरमे व्यतीत कर वह कुण्डिनपुर नगर देखा जिसका कि कोट पृथिवीके मणिमय कुण्डलका अनुकरण कर रहा था ॥७३॥ सर्वप्रथम वार्ताने, फिर धूलिने और तदुपरान्त भेरियोंके शब्दने नगरमें आनन्दसहित स्थित विदर्भराजको इन विशाल सेनासे युक्त श्री धर्मनाथ स्वामीके सम्मुख आनेमें उत्सुक किया था ॥ ७४ ॥

प्रतापराज सूर्यकी भाँति क्षुब्ध वेगशाली घोड़ोंके द्वारा बड़े उल्लास के साथ सम्मुख आकर उत्कृष्ट गुणोंकी गरिमाके प्रकर्षसे मेरुकी समानता धारण करनेवाले इन धर्मनाथ स्वामीके चरणोंके समीप [पक्षमें प्रत्यन्त पर्वतके समीप] नम्रीभूत हुआ था ॥ ७५ ॥ प्रेमसे वशीभूत

भगवान्ने पृथिवीपर मस्तक झुकाये हुए इस प्रतापराजको दोनों हाथोंसे उठाकर अपने उस विशाल वक्षःस्थलसे लगा लिया जो कि क्षणभरके लिए भी मनोरथोंका गम्य नहीं था ॥७६॥ जिसके अत्यधिक रोमाञ्चरूपी अंकुर उठ रहे हैं ऐसा विनयका भण्डार विदर्भराज भी अपने मनमें 'यह सब भगवानका ही महान् प्रसाद है' ऐसा निरन्तर मानता हुआ बड़े हर्षके साथ निम्न प्रकार कहने लगा ॥७७॥ चूंकि आज त्रिभुवनगुरु पुण्योदयसे मेरे आतिथ्यको प्राप्त हुए हैं अतः मेरा समस्त कुल प्रशंसनीय हो गया, यह दक्षिण दिशा धन्य हुई, मेरी सन्तान कृतकृत्य हुई और आजसे मेरा यश सर्वत्र फैले ॥ ७८ ॥ आपकी आज्ञा तो तीनो लोकोंमें लोगोंके द्वारा पहलेसे ही मालाकी तरह शिर पर धारण की जाती है अतः अधिक क्या कहूँ ? हाँ, अब मेरे समस्त राज्य, वैभव एव प्राणोंमें भी आत्मीय बुद्धि कीजिये ॥ ७९ ॥ जब प्रतापराजने इस प्रकारके उत्कृष्ट वचनोंके द्वारा प्रेम-सहित अत्यन्त नम्रता दिखलाई तब भगवान् धर्मनाथने भी उसका अत्यन्त सरल स्वभाव देख हर्ष सहित निम्नाङ्कित प्रिय तथा उचित वचन कहे ॥ ८० ॥

सर्वस्व समर्पण दूर रहे आपके समागमसे ही हम कृतार्थ हो गये। न आपके विभवमे मेरी परत्व बुद्धि है और न आपके शरीरमें ही मेरा अनात्मभाव है ॥ ८१ ॥ उचित सत्कारसे प्रसन्न धर्मनाथने समीपमे आये हुए विदर्भराजका पूर्वोक्त वार्तालापसे बहुत सम्मान किया, पान देकर आनन्दित किया और तदुपरान्त उसे अपने निवासस्थानके लिए विदा किया ॥ ८२ ॥

तदनन्तर आनन्दसे जिनका मन उच्छ्वसित हो रहा है ऐसे देवाधिदेव धर्मनाथने नगरके समीप वरदा नदीके तटकी योग्य तथा उत्तम भूमिपर सेनाको अविरोध ठहरानेके लिए सेनापतिको आज्ञा

दी ॥ ८३ ॥ इधर सेनापतिने जबतक प्रभुकी आज्ञा प्राप्त की उधर तब तक कुबेरने पहलेकी तरह शीघ्र ही वह नगर बना दिया जो कि देवोंके शिविरकी शोभाको जीत रहा था तथा अनेक गलियोंसे युक्त कुण्डिनपुर जिसका उपनगर सा हो गया था ॥८४॥ हे नगरवासियो ! चूँकि आप लोगोंके पुण्यसे इन्द्रके शिखामणि, जगत्के स्वामी, रत्नपुरके राजा महासेनके पुत्र श्री धर्मनाथ स्वामी आपके यहाँ पधारे हैं अतः आपलोग द्वार-द्वारमें, पुर-पुरमे और गली-गलीमें पूर्णमनोरथ होकर तोरणोंसे समुल्लसित नई-नई रङ्गावली बनाओ ॥ ८५ ॥ जो तुरहीके शब्दके समान मनोहर गीतोंसे मुखर हैं, उत्तम वेषभूषासे युक्त हैं। श्री शृङ्गारवतीके चिरार्जित तपश्चरणके फलस्वरूप सौभाग्यकी शोभाके समान जान पड़ती हैं और हाथोंमें दही, अक्षत, माला तथा दूर्वादलसे युक्त पात्र धारण कर रही हैं वे धन्य स्त्रियाँ जिसका समागम बड़े पुण्यसे प्राप्त हो सकता है ऐसे इस वरकी अगवानी करें ॥ ८६ ॥ हे राजाओ ! अब मै हाथ उठाकर कहता हूँ, सुनिए, इस समय श्री जिनेन्द्रदेवके पधारनेपर आपलोगोंको शृङ्गारवतीकी कथा क्या करना है ? क्योंकि ये ग्रह आदि ज्योतिष्क तभी तक दीप्तिको प्राप्त करनेके लिए वार्ता करते हैं जब तक कि समस्त संसार का चूड़ामणि सूर्यदेव उदित नहीं होता ॥ ८७ ॥ इस प्रकार कुबेर निर्मित नगरमे रहनेवाले भगवान् धर्मनाथने विदर्भराजकी राजधानी में शीघ्र ही दण्डधारी प्रतीहारीके शकुन रूप वचन सुनकर हृदयमे अपने कार्यकी सिद्धिको दृढ़ किया था ॥ ८८ ॥

इस प्रकार महाकवि हरिचन्द्र द्वारा विरचित धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्यमे सोलहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।



सप्तदश सर्ग

अनन्तर दूसरे दिन उत्कृष्ट वेषको धारण करने वाले एव प्रताप-राजके प्रामाणिक जनोंके द्वारा बुलाये हुए भगवान् धर्मनाथ दूसरे-दूसरे देशोंसे आये हुए राजाओंसे परिपूर्ण स्वयंवर भूमिमे पधारे ॥ १ ॥ केशरकी कीचसे युक्त उस स्वयवर-सभामे मोतियोंकी रङ्गावली ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो कन्याके सौभाग्य एवं भाग्योदय रूप वृक्षोंकी नूतन बीजोंकी पङ्क्ति ही बोई गई हो ॥२॥ वहाँ उन्होंने कुण्डिनपुरके आभरण प्रतापराजके द्वारा विस्तारित एव कीर्तिरूपी कलईकी कूचीसे आकाश-मन्दिरको धवल करनेके लिए उद्यत ऊँचे-ऊँचे मञ्चोंके समूह देखे ॥३॥ देवाधिदेव भगवान् धर्मनाथने शृङ्गार-रूपी गजेन्द्र-विहारसे युक्त क्रीड़ा-पर्वतोंके समान उन मञ्चोंके समूह पर स्थित राजाओं और आनन्दसे समागत विमानवासी देवोंके बीच कुछ भी अन्तर नहीं पाया था ॥ ४ ॥ अत्यधिक रूपके अतिशयसे युक्त श्री धर्मनाथ स्वामीने जलती हुई अगुरु धूपकी बत्तियोंसे किस राजाका मुख लज्जा रूपी स्याहीकी कूचीसे ही मानो काला हुआ नहीं देखा था ॥ ५ ॥ राजाओंने जिनेन्द्र भगवान्का आश्चर्यकारी रूप देख कर यह समझा था कि उस समय 'यह कामदेव है' इस प्रकारके भ्रमसे महादेवजीने किसी अन्य देवको ही जलाया था ॥ ६ ॥

तदनन्तर मनुष्योंके हजारों नेत्रोंके पात्र भगवान् धर्मनाथ किसी इष्टजनके द्वारा दिखलाये हुए सुवर्णमय उन्नत सिंहासन पर श्रेणी-मार्गसे उस प्रकार आरूढ हुए जिस प्रकार कि इन्द्र वैजयन्त नामक अपने भवनमें आरूढ़ होता है ॥ ७ ॥ रत्नमय सिंहासन पर अधिरूढ

श्री धर्मनाथ कुमार राजाओंकी प्रभाको तिरस्कृत कर इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जिस प्रकार कि उदयाचलकी शिखर पर स्थित चन्द्रमा ताराओंकी प्रभाको तिरस्कृत कर सुशोभित होता है ॥ ८ ॥ आनन्द रूपी क्षीरसमुद्रको उल्लसित करनेवाले चन्द्रमाके समान अत्यन्त सुन्दर भगवान् धर्मनाथके दिखने पर किन नगर-निवासिनी स्त्रियोंके नेत्र चन्द्रकान्त मणि नहीं हो गये थे—किनके नेत्रोंसे आनन्दके आँसू नहीं निकलने लगे थे ॥ ९ ॥

तदनन्तर जब मङ्गलपाठक लोग इक्ष्वाकुवंशीय राजाओंकी कीर्ति को पढ़ रहे थे और अहंकारी कामदेवके द्वारा आस्फालित धनुषकी डोरीके शब्दके समान तुरहीवादित्रका शब्द सब ओर फैल रहा था तब सुवर्णके समान सुन्दर कान्तिवाली कन्या हस्तिनी पर आरूढ़ हो बिस्तृत सिंहासनोंके बीच उस प्रकार प्रविष्ट हुई जिस प्रकार कि विजलीसे युक्त मेघमाला आकाशके बीच प्रविष्ट होती है ॥१०-११॥ [युग्म] वह कुमारी नेत्र रूपी हरिणोंके लिए जाल थी, कामदेव-रूपी मृत्युको जीतनेवाली मन्त्र-शक्ति थी, शृङ्गार-रूपी राजाकी राजधानी थी, संसारके समस्त जीवोंके मनका मुख्य वशीकरण थी, सौन्दर्य रूपी सुधाके समुद्रकी तरङ्ग थी, संसारका सर्वस्व थी, उत्कृष्ट कान्ति-वाली थी, देवाङ्गनाओंको जीतनेवाली थी और एक होकर भी अनेक राजाओंके द्वारा कामसहित एक साथ देखी गई थी ॥ १२-१३ ॥ [युग्म] जिसका मध्यभाग एक मुष्टिके द्वारा ग्राह्य था ऐसी उस कुमारीको धनुषयष्टिके समान पाकर कामदेवने बड़ी शीघ्रताके साथ बाणोंके द्वारा समस्त राजाओंको घायल किया था ॥ १४ ॥ उसके जिस-जिस अङ्गमें चक्षु पड़ते थे वहीं-वहीं कान्ति रूपी जलमें डूब जाते थे अतः अवशिष्ट अङ्ग देखनेके लिए राजा लोग सहस्र नेत्र होनेकी इच्छा करते थे ॥१५॥ हिलते हुए हारोंके समूहसे सुशोभित [पक्षमें चलती

हुई धाराओंसे सुशोभित] स्तनोंकी शोभाका समय—तारुण्यकाल [पक्षमें वर्षा ऋतु] प्रवृत्त होनेपर विशुद्ध पक्ष वाली [पक्षमें पंखों वाली] वह राजहंसी—श्रेष्ठ राजकुमारी [पक्षमें हंसी] राजाओंके मन रूपी मानस सरोवरमें प्रविष्ट हो गई थी ॥ १६ ॥ स्वभावसे रक्त-वर्ण चरण धारण करनेवाली राजकुमारीने ज्योंही भीतर चरण रक्खा त्योंही राजाओंका स्फटिकके समान स्वच्छ मन उपाधिके संसर्गसे ही मानो उस समय अत्यन्त अनुरक्त [पक्षमें लालवर्ण] हो गया था ॥ १७ ॥ यह नरलोक कामदेवकी पताका तुल्य जिस शृङ्गारवतीके द्वारा दोनों लोकों—ऊर्ध्व एवं अधोलोकोंको जीतता था आश्चर्य है कि वह विधाताके शिल्प-निर्माणकी अन्तिम रेखा थी ॥ १८ ॥ उसकी भौंह धनुषलता थी, कटाक्ष बाण थे, स्तन सर्वस्व खजानेके कलश थे, और नितम्ब अतुल्य सिंहासन था, इस प्रकार उसका कौन कौन सा अङ्ग कामदेवरूपी राजाके योग्य नहीं था ॥ १९ ॥ कमल जलमे डूबना चाहता है और चन्द्रमा उल्लङ्घन करनेके लिए आकाश-रूपी आगनमे गमन करता है सो ठीक ही है क्योंकि उस सुलोचनाके द्वारा अपहृत लक्ष्मीको पुनः प्राप्त करनेके लिए तीनों लोकोंमे कौन-कौन क्लेश नहीं उठाते ? ॥ २० ॥ इसका वह स्तन-युगल सदाचारी [पक्षमें गोलाकार] और नितम्बभार उपाध्याय [पक्षमे-स्थूल] कैसे हो सकता था जिन दोनोंने कि स्वयं अत्यन्त उन्नत होकर अपने आश्रित मध्यभागको अत्यन्त दीन बना दिया था ॥ २१ ॥ धन्य पुरुषोंके द्वारा उसका जो अङ्ग निर्वृतिधाम—सुखका स्थान [पक्षमें मुक्तिका स्थान] बताया जाता था वह उसका स्तनयुगल ही था । यदि ऐसा न होता तो वहाँ गुणों—तन्तुओंसे [पक्षमें सम्यग्दर्शनादि गुणोंसे] युक्त मुक्ता—मुक्ताफल [पक्षमें सिद्ध परमेष्ठी] कलङ्क रूपी पापसे निर्मुक्त होकर क्यों निवास करते ? ॥ २२ ॥

इस प्रकार उसके शरीरकी शोभाके अतिशयसे चमत्कृत हो चित्तमें कुछ-कुछ चिन्तन करनेवाले कौन-कौन राजा मानो कामदेवके शास्त्रोंसे आहत होकर ही अपने शिर नहीं हिला रहे थे ॥ २३ ॥ राजा लोग चुपचाप मन्त्र पढ़ रहे थे, तिलक कर रहे थे, ध्यान रख रहे थे, और इष्ट चूर्ण फेंक रहे थे इसप्रकार इस अनन्य सुन्दरीको वश करनेके लिए क्या-क्या नही कर रहे थे ? ॥ २४ ॥ राजाओंकी विविध चेष्टाएँ मानो शृङ्गारके लीलादर्पण थे इसीलिए तो उनमें कन्याके अनुरागसे युक्त राजाओंका मन प्रतिबिम्बित होता हुआ स्पष्ट दिखाई देता था ॥ २५ ॥ कोई एक रसीला राजकुमार कामदेवकी धनुपलताके समान भौहको ऊपर उठाकर मित्रोंके साथ करकिसलयके प्रयोगसे अभिनयपूर्ण विलास गोष्ठी कर रहा था ॥ २६ ॥ कोई दूसरा राजकुमार बार-बार गरदन टेढ़ीकर कन्धे पर लगा हुआ कस्तूरी का तिलक देख रहा था। उसका वह तिलक ऐसा जान पड़ता था मानो उत्कट शत्रुरूपी समुद्रसे पृथिवीका उद्धार करते समय लगा हुआ पङ्क ही हो ॥२७॥ कोई एक राजकुमार मुखमे चन्द्रमाकी बुद्धिसे आये हुए मृगका सम्बन्ध रोकनेके लिए ही मानो लीलापूर्वक हिलते हुए कुण्डलके रत्नोंकी कान्तिके द्वारा कर्ण-पर्यन्त खीचा हुआ इन्द्र-धनुष दिखला रहा था ॥२८॥ कोई दूसरा राजकुमार हाथका क्रीडा-कमल अपनी नाकके अग्रभागके समीप कर सूंघ रहा था अतः ऐसा जान पडता था मानो सभामें अलक्ष्य—गुप्तरूपसे कमल-वासिनी लक्ष्मीके द्वारा अनुरागवश चुम्बित ही हो रहा हो ॥ २९ ॥ कोई राजा अपने दोनो हाथोंके द्वारा नाखूनोंकी लालिमासे रक्तवर्ण अत-एव कामदेवके शस्त्रोंसे भिन्न हृदयमे लोगोंके रुधिरधाराका भारी भ्रम उत्पन्न करनेवाले हारको लीला-पूर्वक घुमा रहा था ॥३०॥ और कोई एक राजकुमार पानकी लालिमासे उत्कृष्ट ओष्ठबिम्बको हाथकी

लाल-लाल अंगुलियोंसे साफ कर रहा था अतः ऐसा जान पड़ता था मानो दाँतोंकी कान्तिके छलसे शृङ्गार-सुधाका पान ही कर रहा हो ॥ ३१ ॥

तदनन्तर जिसने समस्त राजाओंके आचार और वंश पहलेसे सुन रक्खे हैं तथा जिसके वचन अत्यन्त प्रगल्भ हैं ऐसी सुभद्रा नामक प्रतिहारी राजकुमारीको मालव-नरेशके पास ले जाकर इस प्रकार बोली ॥ ३२ ॥ यह निर्दोष शरीरका धारक अवन्ति देशका राजा है जो मध्यम न होकर भी [पक्षमे उत्तम होकर] मध्यम लोकका पालक है और जिस प्रकार समस्त ग्रह ध्रुव नक्षत्रका अनुगमन करते है उसी प्रकार समस्त राजा जिस सर्व शक्तिसम्पन्नका अनुगमन करते हैं ॥ ३३ ॥ जिसके प्रस्थानके समय समुद्रके तटवर्ती पर्वतोंके किनारे टूटने लगते हैं और ऊँचे-ऊँचे दिग्गजोंके मण्डल नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं अतः नगाड़ोंके शब्दोंसे दिशाएँ ऐसी सुशोभित होने लगती है मानो स्पष्ट अट्टहास ही कर रही हों ॥३४॥ क्षत्रियोंका अभाव होनेके कारण रणसे और याचक न होनेके कारण इच्छा-पूरक दानसे निवृत्त हुआ इसका हाथ केवल स्त्रियोंके स्थूल स्तन प्रदेशके भोगके योग्य रह गया है ॥३५॥ इसके इस चरण-युगलको कौन-कौन राजा प्रणाम नहीं करते ? प्रणाम करते समय राजाओंके झुके हुए मस्तकोंकी मालाओंसे जो भ्रमर निकल पड़ते हैं उनके छलसे ऐसा जान पड़ता है मानो पृथिवीके पृष्ठ पर लोटते हुए ललाटोंसे विकट भौंहे ही टूटकर नीचे गिर रही हों ॥ ३६ ॥ इस पतिको पाकर जब तुम उज्जयिनीके राजमहलकी शिखरके अग्रभाग पर अधिरूढ़ होओगी तब रात्रिकी बात जाने दो दिनके समय भी तुम्हारा यह मुखचन्द्र सिप्रा नदीके तटवर्ती उद्यानमें विद्यमान चकोरीके नेत्रोंको आनन्द करने वाला होगा ॥ ३७ ॥

तदनन्तर वचन समाप्त होने पर श्री मालव-नरेशसे जिसने अपनी दृष्टि हटा ली है ऐसी कन्याको अन्तरङ्गका अभिप्राय जाननेवाली सुभद्रा दूसरे राजाके पास ले जाकर पुनः इस प्रकार कहने लगी ॥३८॥ जो दुष्कर्मका विचार रोकनेके लिए ही मानो सदा प्रजाके मनमें प्रविष्ट रहता है और जो अन्याय रूपी अग्निको बुझानेके लिए जलके समान है ऐसे इस मगधराजको आगे देखिये ॥ ३९ ॥ समस्त क्षुद्र शत्रुरूपी कण्टकोंको दूर करनेवाले इस राजाकी कीर्ति तीनों लोकोंमें सुखसे भ्रमण करती है परन्तु विशाल वक्षःस्थल पर निवास करनेकी लोभी राजलक्ष्मी दूर-दूरसे आती रहती है ॥ ४० ॥ दया दाक्षिण्य आदि गुणोंसे वशीभूत गोमण्डल—पृथिवीमण्डल [पक्षमें रस्सियोंसे निबद्ध गोसमूह] का प्रयत्न पूर्वक पालन करनेवाले इस राजाने दूधके प्रवाहके समान उज्ज्वल यशके द्वारा समस्त ब्रह्माण्ड रूपी पात्रको भर दिया है ॥ ४१ ॥ चूँकि यह राजा स्वयं ज्ञातप्रमाण है परन्तु इसका यश अप्रमाण है यह स्वयं तरुण है परन्तु इसकी लक्ष्मी वृद्धा है [पक्षमें विस्तृत है] अतः हे कल्याणि ! दैववश अतुल्य परिग्रहको धारण करनेवाले इस राजाकी तुम्हीं अनुकूल भार्या हो ॥ ४२ ॥ जिस प्रकार विषम बाणोंकी शक्तिसे मर्मको विदारण करनेवाली धनुर्लता आकृष्यमाण होने पर भी शत्रुसे पराङ्मुख होती है उसी प्रकार विषमबाण—कामकी शक्तिसे मर्मको विदारण करने वाली वह राजकुमारी प्रतिहारीके द्वारा प्रयत्न पूर्वक आकृष्यमाण होने पर भी अनिष्ट रूपको धारण करनेवाले उस राजासे पराङ्मुख हो गई थी ॥ ४३ ॥

जिस प्रकार कोई सरोवरमें देदीप्यमान प्रतापकी धारक सूर्य-किरणोंके समूहके पास कुमुद्वती—कुमुदिनीको ले जाता है उसी प्रकार वह प्रतिहारी कुत्सित रूपको धारण करनेवाली उस इन्दुमतीको

देदीप्यमान प्रतापके धारक अङ्गराजके समीप ले जाकर निम्न वचन बोली ॥ ४४ ॥ यह राजा यद्यपि अङ्ग है—[अङ्ग देशका राजा है] फिर भी मृगनयनी स्त्रियोंके लिए अनङ्ग है—काम है ! स्वयं राजा चन्द्र है फिर भी शत्रुओंके लिए चण्डरुचि—सूर्य [प्रतापी] है और स्वयं भोगोंसे अहीन—शेषनाग [पक्षमें सहित] है फिर भी द्विजिह्वों—सर्पोंको नष्ट करनेवाला [पक्षमें—दुर्जनोंको नष्ट करने वाला] है अथवा ठीक ही तो है महापुरुषोंके चरित्रको कौन जानता है ॥ ४५ ॥ इसकी शत्रुस्त्रियोंके मुखोपर निर्गत अश्रुधाराओंके समूहके छलसे मूल उखड जानेके कारण ही मानो पत्र-लताएँ पुनः किसी प्रकार अङ्कुरको प्राप्त नही होती ॥ ४६ ॥ इसने युद्धके समय अपनी सेनाको साक्षी किया, तलवारको जामिनके रूपमें स्वीकार किया, और अन्तमे कृतकृत्यकी तरह पत्र—सवारी [पक्षमे दस्तावेज] लेकर शत्रुओंकी लक्ष्मीको अपना दास बना लिया है ॥ ४७ ॥ इसके मुख-चन्द्रकी शोभाको चाहता हुआ चन्द्रमा कभी तो गङ्गाकी उपासना करता है, कभी महादेवजीका आश्रय लेता है, कभी अपने आपके विभागकर देवोंके लिए दे देता है और कभी दौड़कर आकाशमें अधिरूढ़ होता है ॥ ४८ ॥ यदि 'यौवनसम्बन्धी विलास-लीलाके सर्वस्वका उपभोग करूँ' ऐसा तेरा मनोरथ है तो स्त्रियोंके मनरूपी मानसरोवरके राजहंस एवं अन्य शरीरको धारण करनेवाले कामदेव स्वरूप इस राजाको स्वीकार कर ॥ ४९ ॥ यद्यपि वह ग्रीष्मकालीन सूर्यके समान तेजस्वी कामके अस्त्रोंसे संतप्त थी फिर भी जिस प्रकार निर्मल मानसरोवरमें रहनेवाली राजहंसी पल्वल—स्वल्प जलाशयमे प्रेम नहीं करती भले ही उसमें कमल क्यों न खिले हों उसी प्रकार उसने उस राजासे प्रेम नहीं किया था भले ही वह वर्धमान कमला—लक्ष्मीसे सहित था ॥ ५० ॥

तदनन्तर द्वारपालिनी सुभद्रा, कुमारीको जिसका मुख संपूर्ण चन्द्रमाके समान है, कन्धे ऊँचे उठे हुए हैं, वक्षःस्थल विशाल है और नेत्र कमलके समान हैं ऐसे कलिङ्ग देशके राजाके पास ले जाकर इस प्रकार बोली ॥ ५१ ॥ हे चकोरके समान सुन्दर नेत्रों वाली राजकुमारी ! अत्यन्त प्रतापी सूर्यके देखनेसे बार-बार खेदको प्राप्त हुए चक्षु सुख-सन्तोष प्राप्त करनेके लिए नेत्रोंसे अमृत झराने वाले इस राजा पर [पक्षमें चन्द्रमा पर] साक्षात् डाल ॥ ५२ ॥ मन्दरगिरिके समान स्थूल शरीरवाले इस राजाके हाथियोंके द्वारा निरन्तर मथे गये समुद्रने, महादेवजीके द्वारा निपीत मरणके साधन-भूत कालकूट विषके प्रति बड़े दुःखके साथ शोक प्रकट किया है इसके उत्तुङ्ग हाथियोंकी चेष्टा देख यह यही सोचा करता है कि यदि विष बाहर होता और महादेवजीके द्वारा ग्रस्त न होता तो उसे खाकर मैं निश्चिन्त हो जाता—आत्मघात कर लेता ॥ ५३ ॥ चूँकि उसने युद्धमें हाथसे बाण छोड़नेवाली [पक्षमे भ्रमर छोड़नेवाली] धनुषरूपी लताको खींचा था अतः उससे तीनों जगत्को अलंकृत करनेके योग्य यशरूपी पुष्प प्राप्त किया था ॥ ५४ ॥ जिस प्रकार चित्तमे चमत्कार उत्पन्न करने वाले, अत्यन्त उदार, नवीन और रसोंसे अत्यन्त सुन्दर अर्थको पाकर सरस्वती अतिशय प्रसन्न [प्रसादगुणोपेत] और प्रशंसनीय हो जाती है उसी प्रकार चित्तमे आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली अत्यन्त उदार, नवीन एवं रसोंसे अत्यन्त सुन्दर इस पतिको पाकर तुम प्रसन्न तथा अत्यधिक प्रशंसनीय होओ ॥ ५५ ॥ यद्यपि वह राजकुमार वैभवके प्रयोगसे अत्यन्त निर्मल शरीरवाला एवं स्वयं सदाचारी था फिर भी राजकुमारीने उससे अपने निक्षिप्त चक्षु उस प्रकार खींच लिये जिस प्रकार कि चकोरी चन्द्र समझकर निक्षिप्त चक्षुको दर्पणके बिम्बसे खींच लेती है भले ही वह दर्पणका बिम्ब भस्मके प्रयोगसे अत्यन्त निर्मल और गोल क्यों न हो ॥ ५६ ॥

मनुष्योंकी प्रकर्षतारूपी उपनिषद्की परीक्षा करनेमें चतुर प्रतिहारी अब विदर्भराजकी पुत्रीको दक्षिण देशके राजाके आगे ले जाकर इस प्रकार कहने लगी ॥ ५७ ॥ जिसका मुख लीलापूर्वक चलते हुए कुण्डलोंसे मण्डित है एवं शरीरकी कान्ति उत्तम सुवर्णके समान है ऐसा यह पाण्ड्य देशका राजा उस उत्तुङ्ग सुवर्णगिरिके समान जान पड़ता है जिसकी कि शिखरके दोनों ओर सूर्य-चन्द्रमा घूम रहे हैं ॥ ५८ ॥ यह संताप दूर करनेके लिए पराक्रमसे राजाओंके समस्त वंशोंको निर्मूल उखाड़कर [पक्षमें-पर्वतोंके समस्त बांस जड़से उखाड़ कर] पृथिवी पर एकछत्र अपना राज्य कर रहा है ॥ ५९ ॥ इस धनुर्धारी राजाने युद्धके समय अपने असख्यात तीक्ष्ण बाणोंसे शीघ्र ही क्षत शरीर कर किस शत्रु-योद्धाको वीर रसका अपात्र नहीं बना दिया था ॥ ६० ॥ हे तन्वि ! तू इस युवाके द्वारा गृहीतपाणी होकर अपने श्वासोच्छ्वासकी समानता रखने वाली मलय-समीरकी उस जन्मभूमिका अवलोकन कर जो कि चन्दनसे श्रेष्ठ है और तेरी सखीके समान है ॥ ६१ ॥ हे तन्वि ! तू कबाकचीनी, इलायची, लवली और लौंगके वृक्षोंसे रमणीय, समुद्रके तटवर्ती पर्वतोंके उन किनारों पर क्रीड़ा करनेकी इच्छा कर जिनमें कि सुपारीके वृक्ष ताम्बूलकी लताओंसे लीलापूर्वक अवलम्बित हैं ॥ ६२ ॥ सुभद्राने सब कुछ कहा किन्तु जिस प्रकार सूर्यकी कान्ति देख कुमुदिनी और चन्द्रमाकी कान्ति देख कमलिनी आनन्दके समूहसे युक्त नहीं होती उसी प्रकार वह सुन्दरी भी उस राजाकी कान्तिको देख दैववश आनन्द-समूहसे युक्त नहीं हुई ॥ ६३ ॥

जो राजा उस शृङ्गारवतीके द्वारा छोड़ दिये गये थे वे सम्यग्दर्शनकी भावनासे त्यक्त जैनेतर लोगोंके समान शीघ्र ही पाताल [नरक] तलमें प्रवेश करनेके लिए ही मानो अत्यन्त नम्र मुख हो गये थे ॥ ६४ ॥

तदनन्तर जिस प्रकार उत्तम जलको धारण करनेवाली महानदी किन्हीं भी पर्वतोंसे न रुक कर अच्छी तरह समुद्रके पास पहुँचती है उसी प्रकार उत्तम स्नेहको धारण करनेवाली शृङ्गारवती कर्णाट, लाट, द्रविड़ और आन्ध्र आदि देशोंके किन्हीं भी मुख्य राजाओंसे न रुककर अच्छी तरह श्री धर्मनाथ स्वामीके समीप पहुँची ॥ ६५ ॥ चूँकि इसके नेत्र कानोंके उल्लङ्घन करनेमे उत्कण्ठित थे [पक्षमें वेदोंके उल्लङ्घन करनेमें उद्यत थे], इसकी भौंह कामदेवके धनुषके साथ द्वेष रखती थी [पक्षमे मनुस्मृति आदिमे प्रणीत धर्मके साथ द्वेष रखती थी], और इसके चरणोंका प्रचार [पक्षमे–वैदिक प्रसिद्ध पद पाठ] मूढ़ ब्राह्मणों और बुद्धके अद्वैतवादको नष्ट करता था [पक्षमें–हस पक्षियोके सुन्दर गमनकी अद्वैतताको नष्ट करता था] अतः यह धर्मविषयक कलङ्कको धारण करनेवाले अन्य प्रजापति, श्रीपति और वाक्पतिके दर्शनों—सिद्धान्तोंको छोड़ [पक्षमे-बैलका चिह्न धारण करनेवाले प्रजापति, लक्ष्मीपति और विद्वानोंके अवलोकनोंको छोड़] सर्वाङ्ग रूपसे एक जिनेन्द्र भगवान्में ही अनुरक्त हुई थी ॥६६—६७॥ [युग्म] दोनों ओरसे निकलते हुए हर्षाश्रुओंकी धारासे सहित वह मृगाक्षी ऐसी जान पड़ती थी मानो लम्बी-लम्बी भुजाओंके अग्रभाग फैलाकर बड़ी उत्कण्ठाके साथ इन धर्मनाथका आलिङ्गन ही कर रही हो ॥ ६८ ॥

तदनन्तर आकारवश उसके कामसम्बन्धी विकारका चिन्तन करनेवाली सुभद्राने जिनेन्द्रभगवानके गुण-समूहकी कथामे अपने वाणीको कुछ विस्तृत कर लिया ॥ ६९ ॥ गुणाधिक्यकी प्रतिपत्तिसे इन्द्रकी प्रतिभाको कुण्ठित करनेवाले इन स्वामी धर्मनाथका मेरे वचनोंके द्वारा जो वर्णन है वह मानो दीपकके द्वारा सूर्यका दर्शन करना है ॥ ७० ॥ इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न महासेन नामसे प्रसिद्ध राजा

पृथिवीका शासन करते हैं। पृथिवीका भार धारण करनेवाले धर्म-नामा राजकुमार उन्हींके विजयी कुमार हैं—सुपुत्र हैं ॥७१॥ इनके जन्मके पन्द्रह माह पहले घर पर वह रत्नवृष्टि हुई थी कि जिससे दरिद्रता-रूपी धूलि मनुष्योंके स्वप्नगोचर भी नहीं रह गई थी ॥७२॥ देवोंके द्वारा लाये हुए क्षीर-समुद्रके जलसे जब इनका जन्माभिषेक हुआ था तब तर हुआ सुवर्णगिरि [सुमेरु] भी कैलास हो गया था ॥ ७३ ॥ सौन्दर्य-लक्ष्मीके द्वारा कामको जीतनेवाले इन धर्मनाथ स्वामीके रूपके विषयमें क्या कहें ? क्योंकि उसे देखकर ही इन्द्र स्वभावसे दो नेत्र वाला होकर भी आश्चर्यसे सहस्र नेत्र वाला हो गया था ॥ ७४ ॥ लक्ष्मी यद्यपि चञ्चल है तथापि प्रकृष्ट गुणोंमें अनुरक्त होनेके कारण इनके वक्षःस्थलसे विचलित नहीं हुई यह उचित ही है परन्तु कीर्ति बड़े-बडे प्रबन्धोंके द्वारा बद्ध होने पर भी तीनों लोकोंमें घूम रही है यह आश्चर्यकी बात है ॥७५॥ इनकी बुद्धि वक्षःस्थलके समान विशाल है, चरित्र लोचनके समान निर्मल है, और कीर्ति दाँतोंकी प्रभाके समान शुक्ल है, प्रायः इनके गुण इनके शरीरके अनुसार ही हैं ॥ ७६ ॥ हे सुन्दरी ! जिनके चरण-कमल-युगलकी धूलि देवाङ्गनाओंको भी दुर्लभ है उन गुणसागर धर्म-नाथ स्वामीकी गोदको पाकर तुम तीन लोकके द्वारा वन्दनीय होओ ॥७७॥ इस प्रकार कुमारी शृङ्गारवतीने अपने शरीरमें देखने मात्रसे प्रकट हुए वह रोमाञ्च दिखलाये जो कि सुभद्राके द्वारा उपर्युक्त वर्णन होनेपर दूने हो गये थे और ऐसे जान पड़ते थे मानो जिनेन्द्र-विषयक मूर्तिधारी अभिलाषा ही हो ॥ ७८ ॥ इस प्रकार जानकर भी जब सखी हँसकर हस्तिनीको आगे बढ़वाने लगी तब चञ्चल हस्त-कमलवाली कुमारीने लज्जा छोड़ शीघ्र ही उसके वस्त्रका अञ्चल खींच दिया ॥ ७९ ॥ जिसके हस्ताग्र रूपी कमल कम्पित हो रहे हैं

ऐसी कुमारी इन्दुमतीने सुन्दर शरीरके धारक श्री धर्मनाथ स्वामीके कण्ठमें प्रतिहारीके हाथों-द्वारा ले जाई हुई वरमाला डाल दी ॥८०॥

सीमारहित सौभाग्य-रूपी समुद्रकी वेलाकी तरङ्गके समान जिनेन्द्रदेवके वक्षःस्थल-रूपी तट पर समुल्लसित होनेवाली वह वर-माला इन्दुमतीके पुण्यरूपी पूर्ण चन्द्रका उदय कर रही थी ॥ ८१ ॥ ऐसा जान पड़ता है कि प्रयत्नशाली विधाताने स्त्री और मनुष्यरूपी रत्नोंका खजाना मानो अभी-अभी ही खोला हो क्योंकि इस युगलके समान अन्य रूप पहले न कभी दिखा था और न अभी दिख रहा है ॥ ८२ ॥ इस प्रकार जिनके आगे-आगे विदर्भराज चल रहे हैं ऐसे धर्मनाथ स्वामी नागरिक लोगोंकी परस्परकी कथाओंको सुनते हुए नगरमे राजपुत्रीके साथ उस प्रकार प्रविष्ट हुए जिस प्रकार कि आत्मा अपनी कर्म-चेष्टाओंके साथ शरीरमें प्रविष्ट होता है ॥ ८३ ॥

अन्य राजा लोग उस वरको वधू द्वारा वृत देख निष्प्रभ होते हुए उस प्रकार यथा-स्थान चले गये जिस प्रकार कि नक्षत्रोंके समूह कान्ति-सम्पन्न सूर्यको देखकर यथा-स्थान चले जाते है ॥ ८४ ॥ स्वयंवर देखनेके लिए आये हुए देव विद्याधरोंकी उन्नत ध्वजाओंके वस्त्रोंसे वह विदर्भराजकी राजधानी ऐसी जान पड़ती थी मानो विविध प्रकारके वस्त्र समर्पण करनेमे तत्पर ही हो ॥ ८५ ॥

तदनन्तर मेघ-गर्जनाके समान गम्भीर बाजोंके बजने पर नगर-निवासिनी स्त्रियोंकी चेष्टाएँ ठीक मयूरियोंकी चेष्टाओंके समान अन्तः-करणको उत्कण्ठित करनेवाली हुई थीं ॥ ८६ ॥ उन्हें देखनेके लिए उत्सुक किसी विशालाक्षीने हाथमें नूपुर, चरणमें कङ्कण, मुखमें लाक्षारस और नेत्रोंमे कस्तूरी धारण की थी ॥८७॥ आओ, आओ, इधर आगे इनका, जगत्के मनको मोहित करनेवाला, रूप देखो— इस प्रकार उन्हें लक्ष्यकर नगरनिवासिनी स्त्रियोंका कोई महान्

कोलाहल उत्पन्न हुआ था ॥८८॥ उन्हें देखनेके लिए अट्टालिकाओं, शालाओं, बाजारों, चौराहों और गलियोंमें घूमनेवाली एवं बिखरे हुए केशपाशोंसे युक्त कितनी ही कमलनयना स्त्रियाँ अपने आपको कामदेवरूपी पिशाचके वशीभूत बतला रही थीं ॥ ८९ ॥ मुक्तामय, [पक्षमें रोगरहित] निर्मल रुचि, [पक्षमें निर्मल श्रद्धासे युक्त], और गुणोंसे युक्त [पक्षमे सूत्रसे सहित] उन धर्मनाथरूपी सुन्दर हारके हृदयमें अवतीर्ण होने पर मनुष्योंकी भीड़-भाड़में ईर्ष्यासे ही मानो टूटते हुए हारको स्त्रियोंने छुआ भी नहीं था ॥९०॥ कोई एक स्त्री पत्र-रचनाओंके अंकुरोंसे एक कपोलको और अञ्जनसे एक नेत्र को सुशोभित कर एक स्तनको खोले हुए उनके सन्मुख जा रही थी जिससे ऐसी जान पड़ती थी मानो अर्धनारीश्वरपना ही धारण कर रही हो ॥९१॥ राजभवनको जानेवाले उन धर्मनाथका आश्चर्यकारी रूप देखकर मार्गमें स्त्रियाँ अपने शिर हिला रही थीं सो मानो आगे जानेका निषेध करनेके लिए ही हिला रही थीं ॥९२॥ मनुष्यों-द्वारा नेत्रोंका मार्ग रुक जाने पर कोई स्त्री निर्भय हो बहुत ऊँचे जा चढ़ी थी सो ठीक ही है क्योंकि कामके पौरुषसे युक्त स्त्रियोंको असाध्य है ही क्या ? ॥ ९३ ॥ यद्यपि स्त्रियोंके शरीर पर श्रीधर्मनाथ स्वामीके दर्शनसे प्रकट हुए रोमाञ्च-समूहरूपी कवच विद्यमान थे फिर भी सुदृढ़ प्रहार करनेवाले कामदेव-रूपी वीरने बाणोंके द्वारा उनके मर्मस्थान भिन्न—खण्डित कर दिये थे ॥९४॥ कोई एक स्त्री व्यर्थका कोलाहल कर अपने आपको उनके दृष्टि-पथमें ले गई थी सो ठीक ही है क्योंकि दृढ़ उपाय देखनेके लिए स्त्रियोंके कामरूपी तीसरा नेत्र उत्पन्न ही होता है ॥ ९५ ॥ उनके शरीरका सौन्दर्य-रूपी रसका प्रवाह यद्यपि वास्तविक अमृतका सहोदर था फिर भी नेत्रके अर्ध भागसे पिया गया था अतः नगरनिवासिनी स्त्रियोंकी तृप्तिके लिए

नहीं हुआ था ॥ ९६ ॥ बालकका आलिङ्गन कर उसके लिए मुखसे सुपारीका टुकड़ा समर्पित करनेवाली किसी स्त्रीने न केवल भगवद्विषयक स्नेहकी परम्परा ही कही थी किन्तु अपनी चुम्बनविषयक चतुराई भी प्रकट की थी ॥ ९७ ॥ धीवरता—मल्लाहपनेको [पक्षमें विद्वत्ताको] प्राप्त श्री धर्मनाथ स्वामीके, सब ओर फैलनेवाली कान्ति रूपी जालमें रसवती स्त्रियोंकी मछलीके समान चञ्चल दृष्टि बँधनेके लिए सहसा जा पड़ी ॥९८॥ जिसने ऊपर उठाई हुई भुजासे द्वारके ऊपरका काष्ठ छू रक्खा है, जो झरोखेमे खड़ी है, जिसके पलकोंका गिरना दूर हो गया है तथा जिसका नाभिमण्डल दिख रहा है ऐसी कोई गौरवर्ण वाली स्त्री क्षण भरके लिए सुवर्णकी पुतलीका भ्रम कर रही थी ॥ ९९ ॥ चूँकि व्याकुल स्त्रियोंने अपना कामान्ध मन ही शीघ्रतासे वहाँ फेंका था अतः अन्य सहायकोंका अभाव होनेसे वह पुनः लौटनेके योग्य नहीं रह गया था ॥ १०० ॥ क्या यह चन्द्रमा है ? क्या यह कामदेव है ? क्या यह नारायण है और क्या यह कुबेर है ? अथवा संसारमे ये सभी शरीरकी शोभासे विकल हैं, विशिष्ट शोभाको धारण करनेवाला यह तो कोई अन्य ही विलक्षण पुरुष है ? उस शृङ्गारवतीके चिरसञ्चित पुण्य कर्मकी रेखाको कौन उल्लङ्घन कर सकती है ? जिसने कि निश्चित ही यह मनोरथोंका अगम्य प्राणपति प्राप्त किया है—इस प्रकार अमृतधाराके समान स्त्रियोंके वचनोंसे जिनके कान भर गये हैं ऐसे उत्तम कीर्तिके धारक श्री धर्मनाथ राजकुमार सम्बन्धीके ऊँचे-ऊँचे तोरणों से सुशोभित द्वार पर पहुँचे ॥ १०१–१०३ ॥ [कुलक] वहाँ यह हस्तिनीसे नीचे उतरे, सुवासिनी स्त्रियोंने मङ्गलाचार किये, यक्षराज–कुबेरने हस्तावलम्बन दिया और इस प्रकार क्रमशः श्वसुरके उत्तम एवं ऊँचे भवनमें प्रविष्ट हुए ॥ १०४ ॥ वहाँ श्वसुरने जिनके

विवाह-दीक्षासम्बन्धी समस्त महोत्सव अच्छी तरह सम्पन्न किये हैं ऐसे श्रीधर्मनाथ स्वामी चौकके बीच वधूके साथ सुवर्णका सिंहासन अलंकृत कर रहे थे ॥ १०५ ॥ इसी समय उन्होंने द्वारपालके द्वारा निवेदित तथा पिताजीके द्वारा प्रेषित एक दूतको सामने देखा और उसके द्वारा प्रदत्त लेखका समाचार भी अवगत किया ॥१०६॥

तदनन्तर उन्होंने सुषेण सेनापतिको बुलाकर इस प्रकार आदेश दिया कि मुझे पिताजीने प्रयोजनवश बिना कुछ स्पष्ट किये ही राजधानीके प्रति बुलाया है अतः मैं वधूके साथ मनके समान अत्यन्त वेगसे रत्नपुर जाना चाहता हूँ और तुम शरीरकी तरह कार्यको पूरा कर सेनासहित धीरे-धीरे मेरे पीछे आओगे ॥१०७–१०८॥ इस प्रकार उस अनुयायी सेनापतिको आदेश देकर श्वसुरकी सम्मत्यनुसार ज्यों ही प्रभु अपने नगरकी ओर जानेके लिए उत्सुक हुए त्यों ही कुबेरने उन्हें भक्तिपूर्वक अम्बरपुष्पके समान एक विमान समर्पित कर दिया ॥ १०९ ॥ तदनन्तर आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली शृङ्गारवतीके द्वारा जिनका मुख-कमल अत्यन्त विकसित हो रहा है ऐसे इन्द्रसे भी श्रेष्ठ श्रीधर्मनाथ स्वामीने सूर्यके समान उस विमान पर आरूढ़ होकर उत्तर दिशाकी ओर प्रयाण किया और शीघ्र ही उस रत्नपुरनगरमे जा पहुँचे जो कि विरहके कारण खेदसहित था तथा मकानों पर फहराती हुई चञ्चल ध्वजाओंसे ऐसा जान पड़ता था मानो उन्हें बुला ही रहा हो ॥ ११० ॥

इस प्रकार महाकवि श्री हरिचन्द्र द्वारा विरचित धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्यमें सत्रहवां सर्ग समाप्त हुआ



अष्टादश सर्ग

तदनन्तर समस्त सुख-समाचार सुनने एवं आनन्द धारण करने वाले महासेन महाराजके द्वारा जिसमें अनेक महोत्सव प्रवृत्त हुए हैं ऐसे रत्नपुर नगरमें श्रीधर्मनाथ स्वामीने हृदयवल्लभाके साथ प्रवेश किया ॥ १ ॥ जिस प्रकार चन्द्रिकासे सहित चन्द्रमा कुमुदिनियोंके कुमुदोंको आनन्दित करता है उसी प्रकार उस कान्तासे सहित अतिशय सुन्दर श्रीधर्मनाथ स्वामीने नगरनिवासिनी स्त्रियोंके नेत्र रूपी कुमुदोंके वनको आनन्दित किया था ॥ २ ॥ मङ्गलाचारसे सुशोभित राजमहलमें प्रवेशकर सिंहासन पर बैठे हुए इन प्रभावशाली दम्पतिने उस समय कुलकी वृद्धाओंके द्वारा आरोपित अक्षतारोहणविधिका अनुभव किया था ॥ ३ ॥ वधू-वरके देखनेमें जिनके नेत्र सतृष्ण हो रहे हैं ऐसे माता-पिताको उस समय एक ही साथ वह सुख हुआ था जो कि अल्पपुण्यात्मा मनुष्योंको सर्वथा दुर्लभ था और पहले जिसका कभी अनुभव नहीं हुआ था ॥ ४ ॥ राजाने वह दिन स्वर्गरूपी नगरके समान समझा था क्योंकि जिस प्रकार स्वर्गरूपी नगरमे नन्दनवनको देखनेसे आनन्द उत्पन्न होता है उसी प्रकार उस दिन भी नन्दन–पुत्रके देखनेसे आनन्द उत्पन्न हो रहा था, जिसप्रकार स्वर्गरूपी नगरदेवियाँ कल्पवृक्षोंकी क्रीड़ासे अलस होती हैं उसी प्रकार उस दिन भी तरुण स्त्रियाँ सुन्दर रागकी लीलासे अलस थीं और स्वर्गरूपी नगर जिस प्रकार प्रारब्ध संगीतसे मनोहर होता है उसी प्रकार वह दिन भी प्रारब्ध संगीतसे मनोहर था ॥ ५ ॥

तदनन्तर महाराज महासेनने दूसरी श्रृङ्गारवतीके समान

पृथिवीको कौतुकयुक्त हाथसे ग्रहण करानेके लिए सभामें बैठे हुए पुत्र श्रीधर्मनाथसे बड़े आदरके साथ निम्न प्रकार कहा ॥ ६ ॥ मेरा जो मन आपके जन्मके पहले जङ्गली प्राणीकी तरह अन्यकी बात जाने दो राज्य रूपी तृणमें भी रोककर पाला गया था आज वह बन्धनरहित हो विषयोंमें निःस्पृह होता हुआ बनके लिए ही दौड़ रहा है ॥ ७ ॥ मैंने राजाओंके मुकुटोंमें लगी हुई रत्नमयी पाषाण-पट्टिकाओंके समूहमें वज्रके समान कठोर प्रताप रूपी टांकीके द्वारा अपने देदीप्यमान आज्ञाक्षरोंकी मालारूप प्रशस्ति अङ्कित की है ॥८॥ मैंने यशको समस्त संसारका आभूषण बनाया है, सम्पत्तिके द्वारा कुशल मनुष्योंको कृतकृत्य किया है और आपके द्वारा हम पुत्रवान् मनुष्योंमे प्रधानताको प्राप्त हुए हैं इससे बढ़कर और कौनसी वस्तु है जो मुझे इस जीवनमें प्राप्त नहीं हुई हो ॥ ९ ॥ एक चतुर्थ पुरुषार्थ—मोक्ष ही अवशिष्ट रह गया है अतः मेरा मन वास्तवमें अब उसे ही प्राप्त करना चाहता है अथवा अन्य कोई वस्तु आदर-पूर्वक प्राप्त करने योग्य हो तो आप उसका अच्छी तरह योग्य विचार कीजिए ॥ १० ॥ जब तक आँधीके समान बुढ़ापा आकर शरीर-रूपी कुटियाको अत्यन्त जर्जर नहीं कर देता है तब तक मै श्रीजिनेन्द्रदेवके द्वारा बतलाये हुए मार्गसे शीघ्र ही अविनाशी गृह—मुक्ति-धामको प्राप्त करनेका प्रयत्न करूँगा ॥ ११ ॥ साधुजन उसी अपत्यकी इच्छा करते हैं जिससे कि उसके पूर्वज पतित न होते हों। चूँकि आप अपत्यके गुणोंकी इच्छा रखते हैं अतः आपके द्वारा संसारमें पतित होता हुआ मैं उपेक्षणीय नहीं हूँ ॥ १२ ॥ इसलिए हे नीतिज्ञ ! अनुमति दो जिससे कि मैं अपना मनोरथ सिद्ध करूँ। इस पृथिवी-मण्डलके चिरकाल तक आपके भुजदण्डमें शयन करने पर शेषनाग भार रहित हो—सुख वृद्धिको प्राप्त हो ॥ १३ ॥

आप लोकत्रयके गुरु हैं अतः आपको शिक्षा देना सूर्यको दीपक की किरण दिखाना है—यह जानकर मेरे द्वारा जो कहा जा रहा है उसमें ममताजनित मोह ही कारण है ॥ १४ ॥ गुणोंका खूब अर्जन करो क्योंकि उत्तमगुणोंसे युक्त [पक्षमें उत्तम डोरीसे युक्त] मनुष्य ही कार्योंमें धनुषके समान प्रशंसनीय होता है, गुणोंसे रहित [पक्षमें डोरीसे रहित।] मनुष्य बाणके समान अत्यन्त भयंकर होने पर भी क्षणभरमें वैलक्ष्य-दुःख [पक्षमें लक्ष्यभ्रष्टता] को प्राप्त हो जाता है ॥ १५ ॥ यद्यपि आप समस्त अङ्गोंकी रक्षा करनेमें विद्वान् हैं फिर भी मन्त्रियोंका सामीप्य छोड़नेके योग्य नहीं हैं। क्योंकि पिशाचीके समान लक्ष्मीके द्वारा राज्यरूपी आंगनमें स्खलित होता हुआ कौन राजा नहीं छला गया ॥ १६ ॥ भ्रमरोंका समूह जिस प्रकार कोष-कुड्मलरहित कमलको आक्रान्त कर देता है उस प्रकार बद्धकोप-कुड्मलसहित कमलको आक्रान्त नहीं कर पाता अतः राजाको चाहिए कि वह शत्रुजनित तिरस्कारके रोकनेमें समर्थ कोषसंग्रह-खजानेका संग्रह करे ॥ १७ ॥ स्नेहका भार न छोड़ने वाले [पक्षमें तेलका भार न छोड़ने वाले] आश्रित जनको विभूति प्राप्त करनेके लिए सिद्धार्थसमूह-कृतकृत्य [पक्षमें पीतसर्षप] बनाओ। क्योंकि उसे पीडित किया नहीं कि वह स्नेह [पक्षमें तेल] छोड़कर तत्क्षण खल-दुर्जन [पक्षमें खली] होता हुआ पुनः किसके द्वारा रोका जा सकता है ? ॥ १८ ॥ उस प्रसिद्ध समुद्रको मन्दरागोपहृत-मन्दरगिरिके द्वारा उपहृत होनेके कारण [पक्षमें मन्दस्नेह मनुष्योंके द्वारा उपहृत होनेके कारण] तत्काल हस्ती तथा लक्ष्मीका भी त्याग करना पड़ा था—ऐसा जानते हुए ही मानो आप कभी भी मन्दराग-मन्दस्नेह [पक्षमें मन्दराचल] जनोंको अपने पास न करेंगे ॥ १९ ॥ जो निर्लज्ज रांगामें उत्तम मणिके

समान अयोग्य कार्यमें योग्य पुरुषको लगाता है वह विवेकसे विकल एवं औचित्यको न जाननेवाला राजा सत्पुरुषोंका आश्रय कैसे हो सकता है ? ॥ २० ॥ तुम निरन्तर उस कृतज्ञताका आश्रय लो जो कि धन-सम्पदाओंके लिए अचिन्त्य चिन्तामणि है, कीर्ति-रूपी वृक्षका अविनाशी मुख्य स्थान है और राज-परिवारकी माता है ॥ २१ ॥ निजका खजाना रहने पर भी जो परका आश्रय लेता है वह केवल तुच्छताको प्राप्त होता है । जिसका उदर अपने आपमें समस्त संसारको भरने वाला है ऐसा विष्णु बलि राजाकी आरा-धना करता हुआ क्या वामन नहीं हो गया था ? ॥ २२ ॥ जो कार्यके कर्णधारकों–निर्वाहकों [पक्षमें खेवटियों] का अनादर कर नौकाकी तरह इस नीतिका आश्रय लेते हैं वे दीन-जन विरोधीरूपी आँधीसे विस्तृत–लहराती हुई विपत्तिरूपी नदीको नहीं तिर पाते हैं ॥ २३ ॥ तुम इस संसारमें भयकर तेजके द्वारा क्रम-क्रमसे कूपदेश-कुत्सित उपदेश वालोंके समान [पक्षमे कूप प्रदेशके समान] अन्य जड़ाशयों–मूर्खों [पक्षमे तालाबों] को सुखा दो जिससे कि घट-धारिणी–पनहारिनके समान लक्ष्मीके द्वारा तुम्हारी खड्गधाराका जल न छोड़ा जा सके ॥२४॥ ये तेजस्वी जन भी किसी समयकी अपेक्षा कर ही अधिक एवं शीघ्र प्रकाशमान हो पाते हैं । क्या पौष माहमें सूर्य उस हिमके द्वारा कृत तिरस्कारको नहीं सहता ? ॥ २५ ॥ जिसकी पिछली सेना शुद्ध–निश्छल है ऐसा राजा मन्त्री आदि प्रकृति-वर्गको कुपित न करता हुआ विजयके लिए शत्रुमण्डलकी ओर प्रयाण करे । जो इस प्रकार बाह्य व्यवस्थाको धारण करता हुआ भी अन्तरङ्ग शत्रुओंको नहीं जीतता वह विजयी किस प्रकार हो सकता है ? अतः विजयके इच्छुक विजिगीषु राजाको सर्वप्रथम अन्तरङ्ग शत्रुओंको जीतनेका प्रयत्न करना चाहिये क्योंकि कुशल

मनुष्य अग्निसे प्रज्वलित घरकी उपेक्षा कर अन्य कार्योंमें कैसे व्यवसाय कर सकता है ? ॥ २६–२७ ॥ सन्धि, विग्रह आदि छह गुण भी उसी राजाके लिए गुणकारी होते हैं जो कि उनका यथायोग्य आरम्भ करना जानता है। विना विचारे कार्य करनेवाले मनुष्यका निःसन्देह उस प्रकार नाश होता है जिस प्रकार कि तक्षक सर्पसे मणि ग्रहण करनेके इच्छुक मनुष्यका होता है ॥ २८ ॥ जिसका आशय मद–गर्वसे मोहित हो रहा है ऐसा राजा कर्तव्य कार्योंमें पद-पद पर स्खलित होता हुआ यह नहीं जानता कि शरद् ऋतुके चन्द्रमाकी कान्ति तथा कुन्दके फूलके समान उज्वल मेरा यशरूपी वस्त्र सब ओरसे नीचे खिसक रहा है ॥२९॥ जो हृदयको आनन्दित करनेवाली, धर्मद्वारा प्रदत्त लक्ष्मीका उपभोग करता हुआ भी धर्मको नष्ट करता है वह मूढ़ अकृतज्ञ चित्तवाले दुर्जनोंके आगे प्रतिष्ठाको प्राप्त हो ॥ ३० ॥ राज्यपदका फल सुख है, वह सुख कामसे उत्पन्न होता है और काम अर्थसे। यदि तुम इन दोनोंको छोड़कर केवल धर्मकी इच्छा करते हो तो राज्य व्यर्थ है। उससे अच्छा तो यही है कि वनकी सेवा की जाय ॥ ३१ ॥ जो राजा अर्थ और कामप्राप्तिकी लालसा रख अपने धर्मके मर्मोंका भेदन करता है वह दुर्मति फलकी इच्छासे समूल वृक्षको उखाड़ना चाहता है ॥ ३२ ॥ जो इस समय नतवर्गसम्पदा–सेवकादि समूहकी-सम्पत्तिकी और आगामी कालमें अपवर्ग–मोक्षकी इच्छा करता है [पक्षमें तवर्ग और पवर्गकी इच्छा नहीं करता] वह बुद्धिमान् निर्बाध रूपसे क्रमशः सर्वप्रथम त्रिवर्ग–धर्म, अर्थ और कामकी ही सेवा करता है [पक्षमें—कवर्ग, चवर्ग और टवर्ग] इन तीन वर्गोंकी ही सेवा करता है ॥ ३३ ॥ गुरुओंकी विनयको प्रकाशित करता हुआ राजा इस लोक तथा परलोक–दोनों ही जगह मङ्गलका स्थान होता है। यदि

वही राजा अविनीत–विनयहीन [पक्षमें–मेषरूप वाहन पर भ्रमण करनेवाला] हुआ तो अग्निके समान प्रज्वलित होता हुआ अपने समस्त आश्रयको जला देता है ॥ ३४ ॥ चूँकि राजा धन देता हुआ भी उस प्रकार संतुष्ट नहीं होता जिस प्रकार कि सामका प्रयोग करता हुआ संतुष्ट होता है अतः अर्थसिद्धिके विषयमे अन्य उपाय सामके साम्राज्यकी तुलापर नहीं बैठ सकते ॥ ३५ ॥ सत्पात्रके लिए इच्छित पदार्थ प्रदान करते हुए तुम इस लोकमे प्रसिद्धिके परम पात्र होगे। जिसकी तृष्णा समाप्त नही हुई ऐसे समुद्रके विषयमें याचक-जन 'यह रामचन्द्रजीके द्वारा बाँधा गया', और 'अगस्त्यमुनिके द्वारा पिया गया' आदि क्या–क्या अपवाद नहीं करते ? ॥ ३६ ॥ यदि कृपण मनुष्यके धनके द्वारा किया हुआ अत्यन्त भयङ्कर पाप न फैलता तो यह पृथिवी लोक-व्यवहारसे रहित हो प्रतिदिन आभ्यन्तरकी ऊष्मासे क्यों पचती ?–सतप्त होती रहती ? ॥ ३७ ॥ शत्रुके किसी भी प्रयोगसे भेदको प्राप्त होने वाला यह सुमन्त्ररूपी बीजोंका समूह फलकी इच्छा करनेवाले चतुर मनुष्योंके द्वारा अच्छी तरह रक्षा करने योग्य है क्योंकि भेदको प्राप्त हुआ यह सुमन्त्ररूपी बीजोंका समूह पुनः जम नहीं सकता ॥ ३८ ॥ बलपूर्वक दिया हुआ दण्ड अस्थान निवेशी भ्रमसे राजाओंके विषय-मार्गमें प्रवृत्त हुए अपने आपको अन्ध सिद्ध करता है और दण्डधारीको गिरा भी देता है ॥३९॥ जो अर्थ-रूप सम्पत्तिके द्वारा न मित्रोंको सन्तुष्ट करता है, न प्रजाकी रक्षा करता है, न भृत्योंका भरण-पोषण करता है, और न भाई-बन्धुओंको अपने समान ही बनाता है तो वह राजा कैसे कहलाता है ? ॥४०॥ इस लोकमे मृत्युको प्राप्त हुआ भी राजा जिनके सुभाषित-रूपी अमृतके कणोंसे शीघ्र ही जीवित हो जाता है उन महाकवियोंसे भी बढ़कर यदि उसके कोई बान्धव हैं तो इसका विचार करो ॥४१॥

यह पृथिवी किन-किनके द्वारा उपभुक्त नहीं हुई परन्तु किसीके भी साथ नहीं गई फिर भी समस्त राजाओंके देदीप्यमान गुण-समूहकी विजयसे उत्पन्न सुयश उस पृथिवीका फल कहा जा सकता है ॥४२॥ अधिक क्या कहा जाय ? तुम उन अनन्यतुल्य गुणरूपी रत्नमयी आभूषणोंसे अपने आपको विभूषित करो जिनके कि द्वारा लुभाई हुई लक्ष्मियाँ स्वभावसे चञ्चल होनेपर भी कभी समीपता नहीं छोड़तीं ॥ ४३ ॥ इस प्रकार हर्षके साथ उपदेश देकर महासेन महाराजने ज्योतिषियोंके द्वारा बतलाये हुए उसी दिन श्री धर्मनाथको उनकी स्वयं इच्छा न होनेपर भी अभिषेकपीठ पर जबरदस्ती बैठाया ॥ ४४ ॥

तदनन्तर, जब कि मृदङ्ग और झल्लरीके शब्द बढ़ रहे थे तथा मङ्गलध्वनि सब ओर फैल रही थी तब राजा महासेनने सुवर्ण-कलशाके जलसे स्वयं ही उनका महाभिषेक किया ॥ ४५ ॥ स्वयं ही आभूषण सहित वस्त्र पहिनाकर सिंहासनपर बैठाया] और स्वयं ही सुवर्णका दण्ड लेकर उनके आगे प्रतिहारकी ड्यूटी देने लगे ॥ ४६ ॥ दृष्टि द्वारा प्रसन्न होओ, यह नैषध स्वयं ही नमस्कार कर रहा है, यह अवन्तीश्वर स्वय सेवा कर रहा है, यह सामने अङ्ग देशके राजाकी भेंट रखी है और यह कीर देशका राजा विनयपूर्वक भाषण कर रहा है। यह द्रविडनरेश सफ़ेद छत्र धारण कर रहा है और ये केरल तथा कुन्तल देशके राजा चमर लिये हुए है—इस प्रकार अनुचित स्थानपर विद्यमान पिताके वचन यद्यपि प्रिय थे फिर भी वह धर्मनाथ उनसे शोकको ही प्राप्त हो रहे थे ॥ ४७–४८ ॥ [युग्म] उस समय एक ओर तो प्रभाके आकर भगवान् धर्मनाथरूपी सूर्य वृद्धिको प्राप्त हो रहे थे और दूसरी ओर कलाओंके निधि राजा महासेनरूपी

चन्द्रमा निवृत्तिको प्राप्त हो रहे थे अतः वह राज्य रात्रिके अवसानके समान सुशोभित नहीं हो रहा था क्योंकि जिस प्रकार रात्रिका अवसानकाल नक्षत्र-विशेषसे खास-खास नक्षत्रोंसे सुशोभित होता है उसी प्रकार वह राज्य भी नक्षत्र-विशेष सुशोभित—क्षत्रिय विशेषसे सुशोभित नहीं था ॥ ४९ ॥

पहले तीनों लोकोंमें श्रेष्ठ सुमेरु पर्वतपर देवोंके द्वारा इनका अभिषेक किया जा चुका है फिर यह बार-बार क्या प्रकट हो रहा है इस प्रकार दाँतोंकी कान्तिसे ही सुशोभित निर्मल आकाश नगाड़ोंके शब्दोंके बहाने मानो अट्टहास ही कर रहा है ॥ ५० ॥ जिसका अभिषेक किया जा चुका है ऐसे भगवान् धर्मनाथने केवल इसी पृथिवीको ही नहीं किन्तु पुष्प गन्धोदक और रत्नवृष्टिके द्वारा आकाश अथवा स्वर्गको भी निःसन्देह दोह डाला था सो ठीक ही है क्योंकि पुण्यात्मा पुरुषोंको क्या असाध्य है ॥५१॥ पिंजरोंसे क्रीड़ाके मनोहर पक्षियोंको और [कारावाससे] शत्रु बन्दियोंको मुक्त कराते एवं मनोरथसे भी अधिक धन देते हुए उन्होंने किसका आनन्द नहीं बढ़ाया था ॥ ५२ ॥ उस समय वह नगर लोगोंके गानेपर प्रतिध्वनिके द्वारा स्वयं गा रहा था, और नृत्य करने पर चञ्चल पताकाओंके द्वारा नृत्य भी कर रहा था। इस प्रकार प्रभुके उत्सवमें हर्षित हो कर आनन्दसे क्या-क्या नहीं कर रहा था ॥ ५३ ॥ इस प्रकार कुछ दिन व्यतीत कर जब वह महोत्सव पुराना हो गया तब महासेन महाराज पुत्रसे पूछकर तप करनेकी इच्छासे वनमें चले गये ॥ ५४ ॥ यद्यपि भगवान् धर्मनाथके मोहरूपी बन्धन शिथिल थे तथापि वह पिताके वियोगसे बहुत संतप्त हुए थे। तदनन्तर संसारका स्वरूप समझ उन्होंने स्वयं कर्तव्य-मार्गका निश्चय किया और प्रजाकी चिन्ता करने लगे ॥ ५५ ॥

वह प्रजा प्रशंसनीय है जो कि पापको नष्ट करनेवाले इन जिनेन्द्रका सदा स्मरण करती है परन्तु उस प्रजाके पुण्यकी हम किस प्रकार स्तुति करें जिसकी कि चिन्ता वह जिनेन्द्र ही स्वयं करते हैं ॥ ५६ ॥ उन्होंने न तो कभी करवालकर्षण—तलवारका कर्षण किया था [पक्षमें हस्त और बाल पकड़कर खींचे थे] और न कभी चापराग—धनुषमें प्रेम [पक्षमें अपराग-विद्वेष] ही किया था। केवल कोमल कर—टैक्स [पक्षमे हाथ] से ही लालन कर स्त्रीके समान पृथिवीको वश कर लिया थ ॥ ५७ ॥ जिनके चरण नम्रीभूत मनुष्य, देव और नागकुमारोंके देदीप्यमान मुकुटोंके समूहसे चुम्बित हो रहे थे ऐसे गुणसागर श्री धर्मनाथ स्वामीको पति पाकर यह पृथिवी अन्य दोनों लोकोंसे सदाके लिए श्रेष्ठ हो गई थी ॥५८॥ महान् वैभवके धारक भगवान् धर्मनाथ जब पृथिवीका शासन कर रहे थे तब न अकालमरण था, न रोगोंका समूह था, और न कहीं दुर्भिक्षका भय ही था। आनन्दको प्राप्त हुई प्रजा चिरकाल तक समृद्धिको प्राप्त हो रही थी ॥ ५९ ॥ उस समय भगवान्के प्रभावसे समस्त पृथिवी-तल पर प्राणियोंको सुखका कारण वायु बह रहा था, सर्दी और गरमीसे भी किसीको भय नहीं था और मेघ भी इच्छानुसार वर्षा करनेवाला हो गया था ॥ ६० ॥ ऐसा जान पड़ता है कि इन धर्मनाथ स्वामीने गुणोंके द्वारा [पक्षमे रस्सियोंके द्वारा] अपने भुजा रूप स्तम्भमे अतिशय निबद्ध पृथिवीको करिणी—हस्तिनी [पक्षमें टैक्स देनेवाली] बना लिया था यदि ऐसा न होता तो राजाओंके उप-हारके छलसे कामके मदसे उद्धृत हस्ती क्यों आते ? ॥६१॥ अति-शय तेजस्वी भगवान् धर्मनाथके सब ओर सज्जनोंकी रक्षा करने पर घने संपदागम—मेघ रूपी सम्पत्तिका आगम [पक्षमे अधिक संपत्तिकी

प्राप्ति] निरन्तर रहता था किन्तु वारिसम्पत्ति—जल-रूप सम्पदा [पक्षमें शत्रुओंकी सम्पदा] कहीं नहीं दिखाई देती थी और सदा परा भूति—अत्यधिक धूलि अथवा अपमान [पक्षमे उत्कृष्ट वैभव] ही दिखती थी—यह भारी आश्चर्यकी बात थी ॥ ६२ ॥ अधर्मके साथ द्वेष करनेवाले भगवान् धर्मनाथके राजा रहने पर नीरसत्त्व—जलका सद्भाव जलाशयके सिवाय किसी अन्य स्थानमें नहीं था, [पक्षमें नीरसता किसी अन्य मनुष्यमें नहीं थी], सद्गुणोंको—मृणाल तन्तुओंको कमल ही नीचे धारण करता था, अन्य कोई सद्-गुणों—उत्तमगुणवान् मनुष्योंका तिरस्कार नहीं करता था और अजिनानुरागिता—चर्मसे प्रीति महादेवजीमे ही थी, अन्य किसीमें अजिनानुरागिता—जिनेन्द्र-विषयक अनुरागका अभाव नहीं था ॥ ६३ ॥ यद्यपि भगवान् धर्मनाथ अखण्डित नीतिकी रक्षा करते थे फिर भी लोग अनीति—नीतिरहित [पक्षमें ईतिरहित] होकर सुखके पात्र थे और वे यद्यपि पृथिवीमे सब ओर भयका अपहरण करते थे फिर भी प्रभयान्वित—अत्यधिक भयसे सहित [पक्षमें प्रभासे सहित] कौन नहीं था ॥ ६४ ॥ अत्यधिक हाव-भाव चेष्टाएं दिखलानेवाली देवाङ्गनाएँ इन्द्रकी आज्ञासे तीनों संध्याओंके समय इनके घर आकर सुखके लिए कामवर्धक संगीत करती थीं ॥ ६५ ॥

तदनन्तर सुषेण सेनापतिके द्वारा भेजा, अनेक राजाओंके द्वारा प्रवर्तित युद्धके वृत्तान्तको जाननेवाला वह दूत उनकी सभामें आया जो कि अपने खिले हुए मुख-कमलके द्वारा पहले तो विजय-लक्ष्मीको अप्रकट रूपसे दिखला रहा था और तत्पश्चात् हस्तमें उठाई हुई विजय-पताकाके द्वारा उसे स्पष्ट ही प्रकट कर रहा था ॥ ६६ ॥ उस नतमस्तक दूतने जगदीश्वरकी आज्ञा प्राप्त कर जब प्रारम्भसे ही

युद्धके पराक्रमका वर्णन करना शुरू किया तब सभासदोंकी इन्द्रियां उसी एकके सुननेमें अत्यधिक स्नेह होनेके कारण अन्य-अन्य विषयोंसे व्यावृत्त होकर श्रवणमयताको प्राप्त हुई थीं—मानो कर्ण रूप हो गईं थीं ॥ ६७ ॥

इस प्रकार महाकवि श्री हरिचन्द्र द्वारा विरचित धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्यमें अठारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।



एकोनविंश सर्ग*

तदनन्तर जो वक्र है और अलक्ष्मी का मूल कारण है ऐसे शत्रु राजाओंके युद्ध-क्रमको वह दूत प्रारम्भसे ही भगवान् धर्मनाथके आगे निम्न प्रकार कहने लगा ॥१॥ उसने कहा कि समस्त कार्योंको जाननेवाला सुषेण सेनापति अवशिष्ट कार्यको पूरा कर ज्योंही अपनी सेनाके साथ सम्बन्धीके देशसे बाहर निकला त्योंही स्त्री-सम्बन्धी मानसिक व्यथासे प्राप्त हुई कुटिल बुद्धिसे उपलक्षित एवं उत्कृष्ट भुजाओंसे युक्त अङ्ग आदि देशोंके राजा उसके पीछे हो लिये ॥२–३॥ तदनन्तर युद्धकी इच्छा रखनेवाले उन राजाओंने सर्व प्रथम एक दूत भेजा और वह दूत साक्षात् अहंकारके समान सेनापति सुषेणके पास आकर कहने लगा ॥ ४ ॥ कि चूँकि आप स्वयं तेजस्वी हैं और उस पर भी जगत्के स्वामी भगवान् धर्मनाथके द्वारा आपकी सेनाके समूह

*महाकाव्यके किसी एक सर्गमे शब्दालंकारकी प्रधानतासे वर्णन होता है अतः इस सर्गमे कविने भी शब्दालंकारकी प्रधानतासे युद्धका वर्णन किया है। क्षुद्र राजाओंके साथ भगवान् धर्मनाथका युद्ध संभव नहीं है अतः उनके सुषेण सेनापतिके साथ युद्धका वर्णन किया है और वह भी प्रत्यक्ष नही एक दूतके मुखसे युद्ध समाचार सुननेके रूपमे किया है। शब्दालंकारमे जब तक शब्दका मूल रूप सामने नहीं आता तब तक उसके मात्र हिन्दी अनुवादसे आनन्द नहीं आता परन्तु जब अन्य सर्गोंके मूल श्लोक नहीं दिये गये तब एक सर्गके क्या दिये जायँ यह सोचकर मात्र अनुवाद ही दिया है। पाठक यदि आनन्द लेना चाहें तो मूल श्लोक अन्य पुस्तकसे देख सकते हैं।

पर स्वयं ही उत्कृष्ट प्रभा विस्तृत की जा रही है अतः आप सब तरहसे समर्थ हैं ॥५॥ किन्तु जिस प्रकार सूर्यकी जो प्रभुत्व-शक्ति आकाशमें नई-नई और अधिक-अधिक होती रहती है उसकी वही शक्ति समुद्रमें निमग्न होते समय क्या उसके अग्रेसर नहीं होती ? अवश्य होती है। उसी प्रकार आपकी जो प्रभुत्व-शक्ति आकाशकी तरह शून्य जन-प्रदेशमें प्रतिक्षण नई-नई और अधिक-अधिक होती रहती है अथवा किसीसे बाधित नहीं होती है आपकी वही शक्ति शत्रुओंके समूह में निमग्न होते समय—नष्ट होते समय क्या आपके अग्रेसर नहीं होगी ? अवश्य होगी अर्थात् शत्रुओंके बीच आते ही आपकी समस्त प्रभुत्व-शक्ति नष्ट हो जावेगी ॥ ६ ॥ जो धर्मनाथ प्रकृष्ट भयसे युक्त हो प्रभा मात्रसे ही अधिक रक्षा करनेवाली चतुरङ्ग सेनाको छोड़कर चले गये वे चतुरताके साथ पृथ्वीकी रक्षा किस प्रकार करेंगे यह समझमें नहीं आता ॥ ७ ॥ इस प्रकार भागते हुए भगवान् धर्मनाथने राज-समूहको ऐसी आशङ्का उत्पन्न कर दी है कि उन्होंने शूर-वीरताके कारण शृङ्गारवतीको नहीं विवाहा है किन्तु अपने अनुकूल कर्मोदयसे ही विवाहा है ॥ ८ ॥ अतः जिसका पुण्य कर्म उत्कृष्ट है, जो धन खर्च कर रहा है और जिसके हाथियोंकी सेना आपके समान ही है ऐसा राजाओंका समूह आपके साथ युद्ध करनेके लिए कुछ-कुछ तैयार हो रहा है ॥ ९ ॥ वह राज-समूह लक्ष्मी ग्रहण करनेकी इच्छा से आपका अपराध नहीं कर रहा है—आपके विरुद्ध खड़ा नहीं हो रहा है किन्तु जिस प्रकार वैदर्भी रीति गौडी रीतिसे रचित काव्यके प्रति ईर्ष्या रखती है उसी प्रकार वह राज-समूह शृङ्गारवतीके प्रति ईर्ष्या रखता है—वह शृङ्गारवतीको चाहता है ॥१०॥ जिसका आकार कामदेवके सर्वस्वके समान है, जिसकी शोभा पूर्णिमाके समान है और जो रसवती है ऐसी वह हँसमुखी स्त्री शृङ्गारवती चूंकि धर्म-

नाथके साथ चली गई है इस अपराधसे वह राज-समूह असहिष्णु हो उठा है ॥११॥ विश्वस्त प्राणियोंका लोभ करनेमें समर्थ एवं नये-नये अपराध करनेवाले स्वामी धर्मनाथने आपको जो इस कार्यमें नियुक्त किया है सो इससे केवल भस्म ही उनके हाथ लगेगी—कुछ लाभ होनेवाला नहीं [पक्षमें—समस्त पृथिवीतलका उपकार करनेमें समर्थ एवं अपराध नहीं करनेवाले अथवा नये-नये अपराधों को छेदनेवाले भगवान् धर्मनाथने आपको जो इस कार्यमें नियुक्त किया है सो यह कार्य केवल विभूतिका कारण है—इससे वैभव ही प्राप्त होगा] ॥१२॥ जिसे तलवारके विषयका मान नहीं है ऐसे हे सेनापति ! इन धर्मनाथकी समस्त सेनाएँ अत्यधिक प्रमाणवाले शत्रुओंके द्वारा नये संग्रामसे बाहर खदेड़ दी जावेंगी। तलवारोंके अपरिमित प्रहारोंसे क्या तुम इनकी रक्षा करनेके लिए समर्थ हो ? ॥१३॥ एक ओर तो आप शत्रुओंसे भय खाते हैं और दूसरी ओर अपने स्वामीकी भक्ति प्रकट कर रहे हैं इसलिए निश्चित ही आप अपने वंशको उखाड़ फेंकनेमें समर्थ होंगे। [पक्षमें चूंकि आप नरकादि परलोकसे डरते हैं और अर्हन्त जिनेन्द्रकी भक्तिको प्राप्त हैं इसलिए यह निश्चित है कि आप अपने कुलका उद्धार करनेमें समर्थ होंगे] ॥१४॥ अत्यन्त अभयसे युक्त—निर्भय कार्तिकेय भी जब उन सेनाओंकी बड़े कष्टसे रक्षा कर पाता है तब निरन्तर भयसे युक्त रहनेवाले तुम उन सेनाओंकी रक्षा कर सकोगे यह दूरकी बात है ॥१५॥ इन्दुमती स्त्रीको पाकर धर्मनाथने सेना सहित तुम्हें छोड़ दिया है इसलिए तुम आश्रयहीन हो गये हो। पर हे धीर वीर ! व्यग्र होनेकी क्या बात है ? तुम उन राजाओंके समूहका आश्रय ले लो ॥१६॥ तुम रथ और घोड़े देकर इन राजाओंसे चतुर्वर्ग प्राप्त करनेकी प्रार्थना करो तो ठीक है अन्यथा यदि युद्ध प्राप्त करोगे तो नियमसे

उत्कृष्ट पञ्चता—मृत्युको प्राप्त करोगे ॥ १७ ॥ अत्यधिक स्नेह करनेवाले एवं उत्कृष्ट दान करनेमें उद्यमशील वे सब राजा प्रकृष्ट धनके द्वारा उत्कृष्ट पदोंसे युक्त आपकी उन्नति चाहते हैं अर्थात् तुम्हें बहुत भारी धन देकर उत्कृष्ट पद प्रदान करेंगे। [पक्षमें वे सब राजा आपके साथ अत्यन्त अस्नेह रखते हैं और दूसरे लोगोंका खण्ड-खण्ड करनेके लिए सदा उद्यमी रहते हैं अतः युद्धके द्वारा आपको हर्षाभावसे युक्त महती आपत्तिकी प्राप्ति हो ऐसी इच्छा करते हैं] ॥१८॥ अच्छी-अच्छी शोभावाले घोड़ोंसे युक्त वे राजा संसार भरमें प्रसिद्ध हैं। ऐसा कौन है जिसे उनके क्रोधके कारण अतिशय शोभायमान नूतन चर्मको धारण कर वनमें नहीं रहना पड़ा हो ? ॥ १९ ॥ वह राजाओंका समूह, दयालु मनुष्योंकी रीति—मर्यादाका धारण करता है अतः अपने घरमें तुम्हें बहुत भारी धन प्रदान करेगा और शीघ्र ही स्त्रियोंके स्नेहसे युक्त आश्रय देगा। [पक्षमे वह राजाओंका समूह तलवार सहित स्थितिको धारण करता है—सदा तलवार लिये रहता है इसलिए अपने तेजके द्वारा तुम्हे निधन—मरण प्राप्त करा देगा और शीघ्र ही वनका आश्रय प्रदान करेगा अर्थात् खदेड़ कर वनमें भगा देगा] ॥ २० ॥ सारभूत श्रेष्ठ हाथियोंसे सहित जो मानसिक व्यथासे रहित दुःसह—कठिन युद्धमे पहुंचकर किसके लिए अनायास ही स्वर्ग प्रदान नही करा देते अर्थात् सभीको स्वर्गके सुख प्रदान करा देते हैं। उन राजाओंके परम संतोषसे तुम संपत्तिके द्वारा अधिक रागको प्राप्त होओगे तथा अपनी उन्नतिसे सहित स्वामित्वको धारण करते हुए शीघ्र ही श्रेष्ठ पृथ्वीके इन—स्वामी हो जाओगे [पक्षमें सारभूत श्रेष्ठ हाथियोंसे सहित हुए जो राजा मानसिक व्यथाओंसे परिपूर्ण कठिन युद्धमें किसके लिए दुःखका संचय प्रदान नहीं करते अर्थात् सभीके लिए प्रदान करते हैं उन

राजाओंको यदि तुमने अत्यन्त असंतुष्ट रखा तो तुम्हें उनका पदाति—सेवक बनना पड़ेगा, असंगत—अपने परिवारसे पृथक् एकाकी रहना पड़ेगा, अपनी उन्नतिको छोड़ देना पड़ेगा और इस तरह तुम सद्महीन—गृहरहित हो जाओगे] ॥२१-२२॥

हे वानरके समान बुद्धिवाले सुषेण सेनापति ! ऐसा कौन मनुष्य होगा जो इन राजाओंके अनेक शस्त्रोंके आघातसे अनेकवार त्रास पाकर भी पहाड़के मध्यमे क्रीड़ा न करता हो—इनके शस्त्रोंकी मारसे भयभीत हो पहाड़मे नहीं जा छिपता हो ? ॥ २३ ॥ अरे तुम दास बनकर किसी राजाके पास क्यों रहना चाहते हो ? असंख्य कार्य करते हुए यदि तुम उससे कुछ पुरस्कार पा सकोगे तो एक कम्बल ही पा सकोगे, अधिक मिलनेकी आशा नहीं है। [पक्षमें तुम उदास रहकर क्या किसी पहाड़ पर रहना चाहते हो ? वहां रहकर असंख्य कार्य करते हुए भी तुम अपनी शक्ति अथवा सेनाका कौन-सा उत्सव प्राप्त कर लोगे ''जान नहीं पड़ता] ॥२४॥ जो स्वच्छ तेजका धारक होता है वह तेजस्वियोंके युद्धमें अनेक तेज पूर्ण युद्ध करनेकी इच्छासे शत्रुको निर्भय होकर देखता है और जो कायर होता है वह प्रायः मरनेकी इच्छासे ही शत्रुको देखता है अर्थात् ऐसी आशङ्का करता रहता है कि यह शत्रु मुझे मार देगा ॥ २५ ॥ हे सेनापते ! ये सब राजा लोग हाथियों, घोड़ों और तलवारके धारक सैनिकोंसे युक्त सेनाओंके साथ तुम्हें बाँधनेके लिए आ रहे हैं—[पक्षमें हाथियों, सिंहों और गेंड़ाओंसे सहित कटकों—किनारोंसे सुशोभित ये पर्वत समुद्र बाँधनेके लिए आ रहे हैं।] ॥ २६ ॥ हे निवारण करनेके योग्य सेनापति ! देखो, यह विष्णुके समान मुरल देशका राजा आ रहा है, यह भाला लिये हुए कुन्तल देशका राजा आ रहा है और यह मालव देशका राजा है। देखूं, युद्धमें जरा-सी लक्ष्मीका अहं-

कार करनेवाले तेरे कौन लोग इनका निवारण करते हैं—इन्हें आगे बढ़नेसे रोकते हैं ? ॥२७॥ जिसका हाथी अत्यन्त उत्कट है—बलवान् है ऐसा यह कलिङ्ग देशका राजा, आज धर्म—धर्मनाथकी ध्वजा धारण करनेवाले तुमको तुम्हारे शिरमें अर्धचन्द्र बाण देकर अथवा एक तमाचा देकर हाथीसे रहित कर देगा—हाथीसे नीचे गिरा देगा। [पक्षमें—उद्दण्ड हाथीवाला कलिङ्ग देशका राजा आज तुम्हें तुम्हारे शिरमें अर्धचन्द्र देकर अगजा—पार्वतीके आश्रय में रहनेवाला वृषध्वज—महादेव बना देगा] ॥२८॥ अथवा आप हाथीसे रहित हो अङ्गदेशके राजासे नाशको प्राप्त होओगे अथवा अनेक पापोंमें रक्तरागी हो कर स्वय ही अपने शरीरसे नष्ट हो जाओगे–मर जाओगे ॥२९॥ राजाओंका दूत, धर्मनाथके सेनापति सुषेणसे कहता है कि हे सेना पते ! इस प्रकार मैने तुम्हारे लिए हितकारी वचन कहे सो ठीक ही है क्योंकि जो सत्पुरुष होते हैं वे शत्रुके लिए भी विरुद्ध उपदेश नहीं देते हैं ॥३०॥

इतना कहनेके बाद दूतने यह और कहा कि संक्षेपमें मेरा कहने का अभिप्राय यह है कि तुम यदि अधिक भयको प्राप्त हुए हो तो यशको छोड़ पहाड़की गुफाओंमे जा छिपो, अथवा ऊँचे पहाड़ोंपर जा पहुँचो अथवा अन्यथा शरण न होनेसे उन्हीं राजाओंके पास जा पहुँचो—उन्हींकी शरण प्राप्त करो ॥ ३१ ॥ इस प्रकार अधिक क्रोध अथवा अधिक उपकार करनेमें समर्थ राजाओंके विषयमे दोनों उपाय बतलाकर वह दूत चुप हो रहा ॥ ३२ ॥ तदनन्तर जो धनको देनेवाला है, शत्रुओंको कम्पित करने वाले सुभटोमें सबसे महान् है, कार्तिकेयके समान इच्छावाला है, चतुर एवं उग्र बुद्धिका धारक है, और विस्तृत लक्ष्मीको प्राप्त होनेवाला है ऐसा सुषेण सेनापति उस राजदूतसे इस प्रकार मर्मभेदी शब्द कहने लगा ॥ ३३ ॥

हे दूत! जिस प्रकार सर्पिणीके पद अर्थात् चरण अत्यन्त गूढ़ रहते हैं उसी प्रकार तेरे वचनोंके पद भी अत्यन्त गूढ़ हैं, जिस प्रकार सर्पिणीका अभिप्राय भयंकर होता है उसी प्रकार तेरे वचनों का अभिप्राय भी भयंकर है और जिस प्रकार सर्पिणी बाहरसे कोमल दिखती है उसी प्रकार तेरे वचन भी बाहरसे कोमल दिखते हैं इस तरह तेरे वचन ठीक सर्पिणीके समान जान पड़ते हैं फिर भला वे किसे विश्वास उत्पन्न कर सकते हैं? ॥ ३४ ॥ दुर्जन स्वभावसे ही सज्जनोंकी श्रेष्ठ सभाको नहीं चाहता सो ठीक ही है क्योंकि क्या उल्लू अंधकारको नष्ट करनेवाली सूर्यकी प्रभाको सहन करता है? अर्थात् नहीं करता है ॥ ३५ ॥ अहो, लोगोंकी धृष्टता तो देखो, जो भगवान् समस्त संसारके स्वामी हैं, सौभाग्य और भाग्यकी मानो सीमा हैं और जिन्होंने अपनी शोभासे कामदेवको संभावित किया है अर्थात् क्या यह कामदेव है ऐसी संभावना प्रकट की है उन भगवान्के लिए भी दुर्जन इस कार्यमें ऐसा कहते हैं ॥ ३६ ॥ प्रभा और प्रभावको प्राप्त होनेवाले उन भगवान्ने जिस भाग्यसे शृङ्गारवतीका हस्त फैलाया था उस भाग्यसे उनके गलेमें वरमाला पड़ी थी इसलिए व्यर्थका बकवाद मत करो ॥ ३७ ॥ ये भक्त लोग गुण और दोषोंको जाने बिना ही अपने स्वामीकी ऊँची-नीची क्या क्या स्तुति नहीं करते हैं? अर्थात् सब लोग अपने स्वामियोंकी मिथ्या प्रशंसामें लगे हुए हैं ॥ ३८ ॥ ऐसा कौन दयालु पुरुष होगा जो धर्मविषयक बुद्धिको छोड़कर परसे रक्षा करने वाले हाथियोंको आपत्तिमें डालनेके लिए अनेक प्रकारके पापोंको देने वाले अधर्ममें बुद्धि लगावेगा? [पक्षमें ऐसा कौन भाग्यशाली पुरुष होगा जो भगवान् धर्मनाथमें आस्था छोड़कर अनेक प्रकारके पाप प्रदान करनेवाले अन्य राजाओंमें आस्था उत्पन्न करेगा?] ॥ ३९ ॥ जगत्के मणि स्वरूप

सूर्यके तेजकी बात जाने दो, क्या उसके सारथि स्वरूप अमूरुके तेजका भी सब तारागण तिरस्कार कर सकते हैं ? अर्थात् नहीं कर सकते। अर्थात्—भगवान् धर्मनाथका पराभव करना तो दूर रहा, ये सब राजा लोग उनके सेनापति सुषेणका भी पराभव नहीं कर सकते हैं ॥ ४० ॥ मेरे धनुषरूपी लताको देखकर नवीन चञ्चलताको धारण करनेवाला यह राजाओंका समूह युद्धके अनुरागसे क्या यम-राजके आंगनमें जानेकी इच्छा करता है ? अर्थात् मरना चाहता है ? ॥ ४१ ॥ सज्जनतारूपी बाँधको तोड़नेवाले इन राजाओंके समूहको चूँकि तुमने मना नहीं किया—रोका नहीं अतः अब यह राजाओंका समूह मेरे क्रोधरूपी समुद्रके प्रवाहसे अवश्य ही बह जायगा ॥ ४२ ॥ ये अहंकारी शत्रु, मुझपर यहां क्या आपत्ति ला देंगे ? जरा यह भी तो सोचो। क्या एक ही सिंहके द्वारा बहुतसे हरिण नहीं रोक लिये जाते ? ॥ ४३ ॥

तदनन्तर आपके प्रतापरूपी अग्निकी साक्षीपूर्वक विजय-लक्ष्मीका विवाह करनेके लिए युद्धमें ही धन प्रदान करनेवाले सुषेण सेनापति ने राजाओंके दूतको वापिस कर दिया ॥ ४४ ॥ कि युद्धके क्रमका आमूल वर्णन करनेके लिए जो दूत भगवान् धर्मनाथके सामने आया था वह उनसे कहता है कि यद्यपि सुषेण सेनापतिने मोहान्धकारसे भरी हुई युद्ध-सम्बन्धी अपनी कोई भी इच्छा प्रकट नहीं की थी अपितु कोयलके शब्दको जीतनेवाली मीठी वाणीसे समता भावका ही विस्तार किया था ॥ ४५ ॥ तथापि संसारमें यह बात प्रसिद्ध है कि जिस प्रकार समुद्रके बहुत भारी जलसे बड़वानल शान्त नहीं होता उसी प्रकार अनुनय पूर्ण वचनोंसे दुर्जन शान्त नहीं होता ॥ ४६ ॥ इसलिए हे दोषरहित भगवन् ! हमारे युद्धके भयंकर नगाड़े बज उठे और जिसमें मद झर रहा था ऐसे बहुत भारी हाथी

विजय प्राप्त करनेके लिए जोरसे गर्जना करने लगे—चिङ्घाड़े मारने लगे ।। ४७ ।। उस समय हर्षके कारण शूर-वीरोंके शरीरों पर बहुत भारी रोमाञ्च निकलकर कवचके समान लग गये थे अतः उन पर वे जो सचमुचके कवच पहनते थे वे तंग हो जानेके कारण ठीक नहीं बैठ रहे थे ।। ४८ ।। जो अपने बाहुतुल्य दांतोंके द्वारा प्राप्त हुई लक्ष्मी अथवा शोभामें लीन हैं, जिनकी कान्ति मेघसमूहके समान श्यामल है, और जो प्राणियोंका विघात करनेवाले हैं ऐसे बहुतसे हाथी बड़े वेगसे शत्रु-सेनाकी ओर चल पड़े ।। ४९ ।।

जिन्होंने पृथिवीतलपर रहनेवाले समस्त शत्रुओंकी रुचिका हरण कर लिया है ऐसे हे भगवन् धर्मनाथ ! निर्दोष एवं उज्ज्वल लक्ष्मीको धारण करनेवाला सुपुष्ट सेनापति सुषेण अनेक राजाओंके उत्कृष्ट सैन्यबलसे दीन नही हुआ था प्रत्युत उन्हें ही भय देनेवाला हुआ था ।। ५० ।। उस समय रथों पर लगी हुई ध्वजाएँ अनुकूल वायुसे चञ्चल हो रही थीं और साथ ही उनमें लगी हुई छोटी-छोटी घंटियां शब्द कर रही थीं जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो रथ, युद्ध करने के लिए शत्रुओंको बुला ही रहे हों ।। ५१ ।। अपने नये प्रियतमोंमें समागमके प्रेमको धारण करनेवाली कहाँ कौन-सी पति-रहित स्त्रियाँ युद्धमें साथ जानेके लिए उत्कण्ठित नहीं हो रही थीं ? अथवा हमारे प्रियतम युद्धमें न जावें, इसके लिए बेचैन नहीं हो रही थीं ? ।।५२।। हे भगवन् ! जिसप्रकार किसी उत्तम दशा—बातीसे युक्त दीपकपर पतंगे केवल मरनेके लिए पड़ते हैं उसीप्रकार इस सेनाके बीच अच्छी दशा—अवस्थासे युक्त आपके प्रताप रूपी दीपकपर जो शत्रु पड़ रहे थे—आक्रमण कर रहे थे वे सब मरनेके लिए ही कर रहे थे ।। ५३ ।। जो गङ्गा नदी, शेषनाग और शिवके शरीरके समान धवल वाणीके द्वारा बृहस्पतिके समान है, जिसके बाण अथवा किरण अत्यन्त तीक्ष्ण हैं, एवं जिसकी आवाज बहुत

भारी है ऐसा सुषेण सेनापति, रागरूपी गृहस्वामियोंको नष्ट करनेके लिए विषके समान अपनी चतुरङ्ग सेनाके साथ अङ्गदेशके राजाके साथ युद्ध करनेके लिए आगे गया ।।५४।। जिस प्रकार आँधी मेघ-समूहका सामना करती है उसी प्रकार सुषेणकी सेनाने ऊंचे हाथीपर बैठकर आते हुए अङ्ग देशके राजाका सामना किया ।।५५।। जिनका मान कोई भी नष्ट नहीं कर सका ऐसे लोगोंका भी मान जिसने नष्ट कर दिया है और साथ ही जिसके हाथी मद जलकी वर्षा कर रहे हैं ऐसे युद्धमें स्वामीसहित, समीचीन पराक्रम-सहित एवं शब्द-सहित सुषेणकी सेनाने अङ्ग देशके राजाको व्याप्त कर लिया—घेर लिया ।।५६।। जिसमें पङ्खों सहित अनेक पर्वत आकर डूबे हुए हैं ऐसे समुद्रको जिसप्रकार अगस्त्य ऋषिने क्षण भरमे उलीच दिया था—खाली कर दिया था इसीप्रकार जिसमें सहायकोंके साथ अनेक राजा लोग आकर निमग्न हो गये हैं--मिल गये हैं ऐसे अङ्ग देशके राजारूपी विशाल समुद्रको सुषेणने क्षण भरमें उलीच डाला—सुभटोंसे खाली कर दिया ।।५७।। उस युद्धमे तलवारके द्वारा विदारण किये शत्रुओंके हृदयरूपी पर्वतसे निकली, हाथियोंके कन्धे प्रमाण गहरी जो खूनकी नदी बह रही थी उसे दीन—कायर मनुष्य पार नहीं कर सके थे ।। ५८ ।। जिसप्रकार स्नेह अर्थात् तेलका प्रवाह क्षीण हो जाने पर जो दीपक बुझना चाहते हैं वे कुछ उद्रेकको—विशिष्ट प्रकाशको व्याप्त होते है उसी प्रकार स्नेह अर्थात् प्रेमका प्रवाह क्षीण हो जानेसे जो राजा अस्त होना चाहते थे-मरना चाहते थे वे अन्त समय कुछ उद्रेकको—विशिष्ट पराक्रमको व्याप्त हुए थे ।। ५९ ।।

उस समय शत्रु-सेनाओंके सुवर्णमय कवचों पर तलवारके आघातसे जो अग्नि निकल रही थी उससे सुषेणने शत्रु-सेनाओंको

ऐसा देखा था मानो उत्सुक होकर चिताकी अग्निने ही उन्हें व्याप्त कर लिया हो ॥ ६० ॥ शत्रु राजारूपी मेघोंके द्वारा ऊपर उठाई हुई दुर्वार तलवारें ही जिनमें जलकी बड़ी-बड़ी लहरें उठ रहीं हैं ऐसी शत्रु राजाओंकी सेनारूपी नदियां युद्ध-भूमिमे आ पहुँची। भावार्थ— जिस प्रकार मेघोंसे दुर्धर जलकी वर्षा होनेके कारण बड़ी-बड़ी लहरोंसे भरी पहाड़ी नदियां थोड़ी ही देरमें भूमिपर आकर बहने लगती हैं इसीप्रकार शत्रु राजाओंकी सेनाएँ तलवाररूपी बड़ी-बड़ी लहरोंके साथ युद्धके मैदानमें आ निकलीं ॥ ६१ ॥ जिसका उत्साह प्रशंसनीय था, तथा जो हर्ष एवं अहंकार सहित आकारको धारण कर रही थी ऐसी सारपूर्ण आरम्भ करनेवाले आपकी सेना उस समय बड़े वेगसे चल रही थी ॥ ६२ ॥ उस समय धनुर्दण्डसे छूटे हुए बाणोंसे आकाश आच्छादित हो गया था और सूर्यका प्रकाश कम हो गया था जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो सूर्यने तीव्र भय से ही अपने किरणोंका संकोच कर लिया हो ॥ ६३ ॥ सेनाके जोर-दार शब्दोंसे भरे हुए युद्धके मैदानमें, जिनके दोनों गण्डस्थलोंसे एक सदृश रेखाके आकारसे मदजलकी नदियां बह रही थीं ऐसे हाथी इसप्रकार इधर-उधर दौड़ रहे थे जिसप्रकार कि युद्धसे उद्धत हुए घोड़े इधर उधर दौड़ने लगते हैं ॥ ६४ ॥ रणरूपी सागरमें जहाँ-जहाँ छत्ररूपी सफेद कमल ऊँचे उठे हुए दिखाई देते थे वहीं-वहीं पर योद्धाओंके बाणरूपी भ्रमर जाकर पड़ते थे ॥ ६५ ॥ हे भगवन्! सेनापतिसे सहित आपकी सेनाने, नये-नये शब्द करनेवाले बाणोंके द्वारा, मानकी बाधासे अन्धे, शीघ्रतासे भरे हुए एवं परा-क्रमके पुञ्ज स्वरूप किन मनुष्योंको नष्ट नहीं कर दिया था ॥ ६६ ॥

हे स्वामिन्! शत्रुओंकी सेना तो सदा काल सूर्यकी दीप्तिको आच्छादित करनेवाले बाणोंसे भरी रहती थी और आपकी सेना

देवोंके द्वारा वर्षाये हुए अत्यन्त सुगन्धित फूलोंके समूहसे पूर्ण रहती थी ॥ ६७ ॥ उस युद्धमें बाणोंके द्वारा घायल हुए योद्धा अपना मस्तक हिला रहे थे उससे ऐसा जान पड़ता था मानो वे अपने स्वामीका कार्य समाप्त किये बिना ही जो प्राणोंका निर्गम हो रहा था उसे रोक ही रहे थे ॥ ६८ ॥ शत्रुओंके कण्ठ और पीठकी टूटनेवाली हड्डियोंके टात्कार शब्दके समूहसे जो अत्यन्त भयंकर दिखाई देता था ऐसे उस युद्ध-स्थलमें प्रभासे परिपूर्ण—चमकते हुए बाण ही गिरते थे, भयसे युक्त पक्षी नहीं गिरते थे ॥ ६९ ॥ बाणोंके घातसे दीन शब्द करते हुए हाथी इधर-उधर भाग रहे थे और रुधिरके सागरमें कट कट कर गिरे हुए हाथियोंके शुण्डादण्ड नील कमलके समान जान पड़ते थे ॥ ७० ॥ उस युद्धमें जो वेताल थे वे प्याससे पीड़ित होनेपर भी बाण चलानेकी शीघ्रताको देखते हुए आश्चर्यवश अपने हाथरूपी पात्रमे रखे हुए भी रुधिरको नही पी रहे थे ॥ ७१ ॥ विषम शत्रुओंके मारनेसे जिनका पराक्रम अत्यन्त प्रकट है ऐसी आपकी सेनाओंने, आकाशको पक्षियों अथवा विद्याधरोंसे रहित करनेवाले बाणोंके द्वारा उस समय युद्धकी भूमिको आच्छादित कर दिया था ॥७२॥ हे स्वामिन् ! संसारकी लक्ष्मी स्वरूप शृङ्गारवतीने जो आपको स्वीकृत किया था उससे ईर्ष्याके कारण आपकी शत्रु-परम्पराका उत्साह बढ़ गया था। यद्यपि वह शत्रु-परम्परा अन्य पुरुषों के द्वारा अविजित थी—उसे कोई जीत नहीं सका था तो भी आप कल्याणोंसे सहित थे अतः आपकी प्रयत्नशील, सेनापति युक्त एवं अहंकारिणी सेनाने उसे शीघ्र ही पराजित कर दिया ॥ ७३—७४ ॥

तदनन्तर जब अन्य सेना पराजित होकर नष्ट हो गई तब जिसके सैनिक हर्षसे रोमाञ्चित हो रहे थे ऐसा कुन्तल देशका राजा मालव नरेशके साथ एक-दम उठकर खड़ा हुआ ॥७५॥ सेनापति सुषेणने वर्तमान युद्धको पुष्ट करनेवाले एवं सुवर्णनिर्मित कवचोंसे युक्त शरीर

को धारण करनेवाले उन दोनों राजाओंके सैन्य-व्यूहको बड़े हर्षसे देखा और युद्धके मैदानमें शत्रु-सम्बन्धी चतुरङ्ग सेनाके इधर-उधर चलने पर कुछ घबड़ाई हुई अपनी सेनाको आश्वासन दिया—धीरज बँधाया ॥ ७६-७७ ॥ जिसका तेज स्फुरायमान हो रहा है ऐसा सुषेण, तलवार धारण करता हुआ बड़े वेगसे संभ्रमपूर्वक घोड़ों और हाथियोंके समूहके सामने जा दौड़ा और जोरका शब्द करने लगा ॥ ७८ ॥ तीव्र प्रताप और तीक्ष्ण शस्त्रको धारण करनेवाले सुषेणने, क्रोधवश हाथियों, रथो, घोड़ों एवं पैदल चलनेवाले सिपाहियोंके साथ सब ओरसे शत्रुदलका सामना किया ॥ ७९ ॥ जिसमें हाथी जुदे प्रहार कर रहे हैं और सब ओर एक जैसा कोलाहल हो रहा है ऐसे युद्धमें समीचीन बलके धारक सुषेण सेनापतिने खण्ड-खण्ड कर शत्रुको भगाना शुरू किया ॥ ८० ॥ जिसप्रकार प्रलय कालमें लहरोंसे भयकर दिखनेवाला समुद्र, किनारे खड़े पर्वतोंसे नहीं रोका जाता उसीप्रकार तलवारसे भयंकर दिखनेवाला सुषेण उस युद्धमें अन्य राजाओंसे नहीं रोका जा सका था ॥ ८१ ॥ सो ठीक ही है क्योंकि क्या बगुला चकवा और हंसके समान चल सकता है ? अथवा कौआ मयूर जैसा हो सकता है ? वह सुषेण स्वर्ग, पृथिवी तथा जलमें रहनेवाले सब लोगोंमें एक ही था—अद्वितीय था, कार्तिकेयकी समानता करनेवाले उस सुषेणके साथ भला कौन कुटिल व्यवहार कर सकता था ? अर्थात् कोई भी नहीं ॥ ८२ ॥ जिसप्रकार अनेक धातुओंके रङ्गोंसे युक्त और लतागृहोंसे दुर्गम पहाड़ोंको भेदन करता हुआ इन्द्रका वज्र सुशोभित होता था उसी प्रकार अनेक प्रकारके घोड़ोंसे युक्त एवं हाथियोंके युद्धसे दुर्गम शत्रुओं को भेदन करता हुआ विजयी सुषेणका खड्ग सुशोभित हो रहा था ॥ ८३ ॥ बलवान् सुषेणने तलवारके घातसे शत्रुओंकी समस्त सेना नष्ट कर दी इसलिए निराधार होकर समस्त पृथिवी आपके हाथ आ

गई है। आप सचमुच ही उसके वर हो गये हैं ॥ ८४ ॥ हे नाथ ! हे शत्रु समूहकी लक्ष्मीको दमन करनेवाले ! आपके अनुजीवी रण-वीर सुषेणने पैनी तलवारके द्वारा एक ही साथ अनेक शत्रुओंके लिए अच्छी तरह यमराजका आंगन प्रदान किया था अर्थात् उन्हें मारकर यमराजके घर भेज दिया था इसलिए पुण्यके प्रारम्भसे अनुरक्त हुई उनकी वह अखण्ड लक्ष्मी जो कि गर्व प्राप्त करनेके योग्य थी सुषेण को ही प्राप्त हुई है ॥ ८५–८६ ॥ जिसका मातङ्गों अर्थात् हाथियों [पक्षमें चाण्डालों] के साथ समागम देखा गया है ऐसी शत्रुओंकी लक्ष्मीको सुषेणका कृपाण, कान्तिरूपी धाराके जलसे मानो सींच-सींच कर ग्रहण कर रहा था ॥ ८७ ॥ जो देवोंको आनन्दित करनेके लिए चन्द्रमाके समान हैं तथा विवाद करनेवाले वादियोंके वाद रूपी दावानलको शान्त करनेके लिए मेघके समान हैं ऐसे हे धर्मनाथ जिनेन्द्र ! सुषेणने भाग्यहीन शत्रुओंके समूहमेंसे कितनों ही को स्वर्ग प्रदान किया और कितनों ही को संतापित किया ॥ ८८ ॥ शत्रुओंका खून पीकर तत्काल ही दूधके समान श्वेतवर्ण यशको उगलनेवाली उसकी तलवार मानो इच्छानुसार जादूका खेल प्रकट कर रही थी ॥८९॥ हे नाथ ! शत्रुओंको कम्पन प्रदान करनेवाले आपके प्रसादसे सुषेणने सम्पदा प्राप्त करनेके लिए शत्रुओंकी सेनाको बड़े उत्साहसे एक ही साथ अनायास ही जीत लिया था ॥ ९० ॥ अन्धकारसे भरे हुए स्थानमें सूर्यके समान मालव, चोल, अङ्ग और कुन्तल देशके राजाओंसे भरे हुए युद्धमे सुषेणने अपने तेजके द्वारा क्या क्या नहीं किया था ॥९१॥ हे देवोंके स्वामी ! अकेले सेनापति सुषेणने कुत्सित मुखवाले एवं युद्धके मैदानमें चमकनेवाले किन किन लोगोंको स्वर्गके उपवनमें नहीं भेज दिया है—नहीं मार डाला है ? ॥ ९२ ॥ हे भगवन् ! चाहे समुद्र हो; चाहे पृथिवी हो, चाहे वन हो और चाहे

विशाल संग्राम हो, सभी जगह आपकी भक्ति कामधेनुके समान किसके लिए मनोवाञ्छित पदार्थ नहीं देती ? अर्थात् सभीके लिए देती है ॥९३॥ हे स्वामिन् ! इन्द्रका अनादर कर आपमें अपनी भावनाओंको रोके बिना वह सुषेण शत्रुओंको नष्ट कर विजयी नहीं हो सकता था अतः उसका मन आपमें ही लगा हुआ है। भावार्थ— आपके ही ध्यानसे उसने शत्रुओंका नाशकर विजय प्राप्त की है अतः वह अपना मन आपमें ही लगाये हुए है ॥९४॥

तदनन्तर तलवारकी धारसे बाकी बची हुई शत्रुकी सेना जब भाग खड़ी हुई है तब महाबलवान् सुषेणने रणभूमिका शोधन किया—निरीक्षण किया ॥ ९५ ॥ हाथियों और घोड़ोंके वेग पूर्ण युद्धमें जिसने बड़े उत्साहसे विजय प्राप्त की है साथ ही अपनी बलवत्तासे जिसने कीर्तिका वैभव प्राप्त किया है ऐसा यह सुषेण सेनापति, क्रमयुक्त तथा पृथिवीकी रक्षा करनेवाले आपकी सेवा करनेके लिए यहीं आ रहा है ॥ ९६ ॥ हे भुवनभूषण ! आपका शरीर चन्द्रमाकी किरणों तथा चन्दनके रससे भी कहीं अधिक शीतल है और आपकी दृष्टि मानो अमृतके पूरको उगल रही है फिर शत्रुओंके वंशरूपी—कुलरूपी वंशोंको जलानेवाला आपका यह प्रताप कहाँ रहता है ? ॥९७॥ अनेक युद्धोंमें जिसने शत्रुओंकी संततिको लक्ष्मी और कीर्तिसे रहित तथा भयभीत आकृतिको धारण करनेवाली किया है; तीक्ष्ण तलवारको धारण करनेवाला वह सुषेण इष्ट मित्रकी तरह आपकी पृथिवीकी रक्षा कर रहा है। हे पृथ्वीके मित्र ! हे कुशल शिरोमणे ! इससे अधिक और क्या कहूँ ? ॥ ९८ ॥ हे सम्पत्ति और श्रेष्ठ गुणोंके भवन ! ऐसा कौन जितेन्द्रिय पुरुष है जो हर्ष प्राप्त करनेके लिए आपके सुखदायी एवं पापका भय हरनेवाले नूतन चरित्रका स्मरण नहीं करता हो ? तथा ऐसा कौन कान्तिमान् है जो

अमृतके द्रवसे भी अधिक शोभायमान आपकी कान्तिको प्राप्त कर सकता हो ? अर्थात् कोई नहीं है ॥९९॥ [विशेष—९८ और ९९ वें श्लोकोंसे सोलह दलका एक कमलाकार चित्र बनता है उसमें कवि और काव्यका नाम आ जाता है जैसे "हरिचन्द्र कृत धर्मजिनपति-चरितम्" हे उत्सव प्रदान करने वाले स्वामी ! जिन्होंने मोहरूपी अन्धकारकी गतिको नष्ट कर दिया है ऐसे आपके नयनगोचर देशमें सुशोभित रहकर ही वह सुषेण लक्ष्मीके साथ-साथ उत्तम भाग्यको प्राप्त हुआ है इसलिए लक्ष्मी कमलके समान कान्तिको धारण करने-वाले आपकी ओर निहार रही है ॥ १०० ॥ हे भगवन् ! आप भयकी पीडाको हरने वाले हैं, आपकी किरणें देदीप्यमान सूर्यकी बहुत भारी प्रभाको जीतने वाली हैं, आप अतिशय सुन्दर हैं, आप अपने बाह्य हृदय पर देखनेके योग्य कौस्तुभ मणिरूप अनुपम चिह्नको और आभ्यन्तर हृदयमें अनुपम शौच धर्मको धारण करते हैं, आप अपने स्थूल तथा उन्नत शरीरमें बहुत भारी हित धारण कर रहे हैं इसीलिए तो आपके इस अल्पकालीन दर्शनमे ही मै रमणीय एवं निर्विघ्न किसी मनोज्ञ महोत्सवका अनुपम स्थान बन गया ॥ १०१ ॥ हे देव ! आपके गुणोंने दम्भ, लोभ तथा भ्रम आदि दुर्गुणको ऐसा रोका है कि वे आपका मुख देखनेमें भी समर्थ नहीं रह सके। इसीलिए हे उत्तमश्रुतके जानकार स्वामी ! वे दुर्गुण आपको छोड़ कर इस प्रकार चले गये हैं कि आपकी बात तो दूर रही, आपके सेवकोंकी भी सेवा नहीं करते हैं। भावार्थ—हे भगवन् ! जिस प्रकार आप निर्दोष हैं उसी प्रकार आपके भक्त भी निर्दोष हैं ॥ १०२ ॥ [विशेष १०१ और १०२ नम्बरके श्लोकोंसे चक्र रचना होती है उसकी पहली तीसरी छठवीं और आठवीं रेखाके अक्षरोंसे कविके नामको सूचित करनेवाला निम्न श्लोक निकल आता है—"आर्द्रदेव-

सुतेनेदं काव्यं धर्मजिनोदयम् । रचितं हरिचन्द्रेण परमं रसमन्दिरम् ॥"
जिसका अर्थ इस प्रकार है कि आर्द्रदेवके पुत्र हरिचन्द्र कविने धर्मनाथ जिनेन्द्रके अभ्युदयका वर्णन करनेवाला रसका मन्दिर स्वरूप यह उत्कृष्ट काव्य रचा है।

इस प्रकार स्पष्ट समाचार कहकर और सत्कार प्राप्त कर जब वह दूत अपने घर चला गया तब सुषेण सेनापतिने शीघ्र ही साथ आकर शत्रुओंको जीत लेनेसे प्राप्त हुआ धन भक्तिपूर्वक भगवान् धर्मनाथके लिए समर्पित किया ॥ १०३ ॥ जिन्हें प्रशस्त उपायोंसे आमदनी होती है, जिन्होंने मानसिक व्यथाएं नष्ट कर दी हैं, जो सदा आलस्यरहित होकर देदीप्यमान रहते हैं और जो अतिशय तेजस्वी हैं ऐसे भगवान् धर्मनाथने विचार किया कि चूँकि यह लक्ष्मी युद्धभूमिमें क्षुद्र शत्रुओंको मारकर प्राप्त की गई है अतः कितनी ही अधिक क्यों न हो, धर्मसे रहित होनेके कारण निन्दनीय है–इसे धिक्कार है! ऐसा विचारकर उन्होंने उसे ग्रहण करनेमें अपनी इच्छा नहीं दिखाई और विद्वानोंके आनन्दके लिए सुवर्णके समान कान्तिको धारण करनेवाले उन्होंने वह शत्रुओंसे प्राप्त हुई समस्त सम्पत्ति दान कर दी ॥ १०४ ॥ [विशेष—यह भी चक्रबन्ध है इसकी रचना करने पर चित्रकी तीसरी और छठवीं रेखाके मण्डलसे काव्य और कविका नाम निकलता है जैसे श्री धर्मशर्माभ्युदयः । हरिचन्द्रकाव्यम् ।]

इसप्रकार महाकवि श्री हरिचन्द्र विरचित धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्यका उन्नीसवां सर्ग समाप्त हुआ।

विंश सर्ग

इस प्रकार जिन्होंने समस्त क्षुद्र शत्रुओंको नष्ट कर दिया है और जिनका प्रभाव बढ़ रहा है ऐसे श्री धर्मनाथ देवने समुद्रके वेलावनान्त विशाल राज्यका पाँच लाख वर्ष पर्यन्त पालन किया ॥ १ ॥ एक समय उन्होंने स्फटिक मणिमय उत्तुङ्ग महलकी शिखर पर रात्रिके समय वह गोष्ठी की जो कि चन्द्रमाकी चाँदनीमें महलके अन्तर्हित हो जाने पर प्रभावसे आकाशमें स्थित देवसभाके समान सुशोभित हो रही थी ॥ २ ॥ बहुत समयसे जीर्ण हो जानेके कारण ही मानो जिसमें छिद्र उत्पन्न हो गये हैं ऐसे ताराओंसे व्याप्त आकाश-भागकी ओर भगवान् धर्मनाथ देख रहे थे । उसी समय उन्होंने प्रलयाग्निकी ज्वालाकी लीलाको धारण करनेवाली शीघ्र पड़ती हुई वह उल्का देखी ॥३॥ जो कि बहुत भारी मोहरूपी अन्धकारसे आवृत अत्यन्त दुर्गम मुक्तिका मार्ग प्रकट करनेके लिए सद्भाग्यके द्वारा सर्व प्रथम प्रकटित दीपककी जलती हुई बत्तीके समान शोभा धारण कर रही थी ॥ ४ ॥ वह उल्का ऐसी जान पड़ती थी मानो तीनों लोकोंको खानेके लिए देदीप्यमान विशाल तारा रूपी दाँतोंकी श्रेणीसे भयंकर मुख खोल कर कालके द्वारा श्रद्धासे आकाशमें शीघ्र फैलाई हुई जिह्वा ही हो ॥ ५ ॥ क्या यह काल-रूपी नागेन्द्रके चूडामणिकी कान्ति है ? क्या गगनमूर्ति महादेवजीकी पीली जटा है अथवा क्या कामदेवके बन्धु चन्द्रमाको जलानेके लिए दौड़ी हुई उन्हीं महादेवजीके ललाटगत लोचनाग्निकी ज्वाला है ? अथवा क्या पुनः त्रिपुर-दाह करनेके लिए उन्हीं महादेवजीके द्वारा छोड़ा हुआ संतप्त बाण है—

आकाशमें दूर तक फैलनेवाली उल्काने मनुष्योंके चित्तको इस प्रकारकी आशङ्काओंसे व्याकुल किया था ॥ ६-७ ॥ देव भगवान् धर्मनाथ न केवल अपना अपितु समस्त संसारका कार्य करनेके लिए तपस्या धारण करेंगे—इस आनन्दसे आकाशके द्वारा प्रारम्भ की हुई आरतीके समान वह उल्का सुशोभित हो रही थी ॥ ८ ॥ आकाशसे पड़ती एवं निकलती हुई किरणोंकी ज्वालाओंसे दिशाओंको प्रकाशित करती उस उल्काको देखकर जिन्हें चित्तमें बहुत ही निर्वेद और खेद उत्पन्न हुआ है ऐसे श्री धर्मनाथ स्वामी नेत्र बन्दकर इस प्रकार चिन्तवन करने लगे ॥ ९ ॥

जब कि ज्योतिषी देवोंका मध्यवर्ती एवं आकाशरूपी दुर्गमे निरन्तर रहनेवाला यह कोई देव दैववश इस अवस्थाको प्राप्त हुआ है तब संसारमे दूसरा कौन विनाशहीन हो सकता है ? ॥ १० ॥ यह गर्वीला कालरूपी हस्ती किनके द्वारा सहा जा सकता है जो कि आयु कर्मरूपी स्तम्भके भङ्ग होने पर इधर-उधर फिर रहा है, आपत्तिकी परम्परा-रूपी विशाल भुजदण्डसे जो तीक्ष्ण है, और जीवन-रूपी उद्यानकी जड़ोंको उखाड़ रहा है ॥ ११ ॥ प्राणियोंका जो शरीर क्षीर-नीर-न्यायसे मिलकर अत्यन्त अन्तरङ्ग हो रहा है वह भी जब आयुकर्मका छेद होनेसे दूर चला जाता है तब अत्यन्त बाह्य स्त्री पुत्रादिकमें क्या आस्था है ? ॥१२॥ जो सुख व्यतीत हो चुकता है वह लौटकर नहीं आता और आगामी सुखकी केवल भ्रान्ति ही है अतः मात्र वर्तमान कालमें उपस्थित सुखके लिए कौन चतुर मनुष्य संसारमें आस्था—आदर-बुद्धि करेगा ? ॥ १३ ॥ जब कि यह जीवन वायुसे हिलती हुई कमलिनीके दल पर स्थित पानीकी बूँदकी आभाके समान नश्वर है तब समुद्रकी तरङ्गके समान तरल संसारके असार सुखके लिए यह जीव क्यों दुखी होता है ॥ १४ ॥ खेद है कि तत्काल दिख

कर नष्ट हो जानेवाली मनुष्योंकी यौवन-लक्ष्मी मानो मृगलोच-नाओंके चञ्चल कटाक्षोंसे पूर्ण नेत्रसमूहकी लीलाके देखनेसे ही संक्रामित चञ्चलताको धारण करती है ॥ १५ ॥ सच है कि लक्ष्मी मदिराकी क्रीड़ा सखी और मन्दराग—मन्दरगिरी [पक्षमे मन्द राग] से उत्पन्न हुई है यदि ऐसा न होता तो वह चित्तके मोहका कारण कैसे होती ? और लोक मन्दराग—मन्दरगिरी [पक्षमें अल्प स्नेह] क्यों धारण करता ॥ १६ ॥ स्त्रियोंका मध्यभाग मल मूत्र आदिका स्थान है, उनकी इन्द्रियाँ मलमूत्रादिके निकलनेका द्वार हैं और उनका नितम्ब-बिम्ब स्थूल मांस तथा हड्डियोंका समूह है फिर भी धिक्कार है कि वह कामान्ध मनुष्योंकी प्रीतिके लिए होता है ॥ १७ ॥ जो भीतर चर्बी मज्जा और रुधिरसे पङ्किल है, बाहर चर्मसे आच्छादित है, जिसकी हड्डियोंकी सन्धियां स्नायुओंसे बँधी हुई हैं, जो कर्मरूपी चाण्डालके रहनेका घर है और जिससे दुर्गन्ध निकल रही है ऐसे शरीरमें कौन साधु स्नेह करेगा ॥ १८ ॥ जो कोई इन्द्र उपेन्द्र ब्रह्मा रुद्र अहमिन्द्र देव मनुष्य अथवा नागेन्द्र हैं वे सभी तथा अन्य लोग भी कालरूपी दुष्ट व्यालसे आक्रान्त प्राणीकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ १९ ॥ जिस प्रकार अग्नि समस्त वनको खा लेती है—जला देती है उसी प्रकार सबको ग्रसनेवाला यह विवेकहीन एक यम बालक, वृद्ध, धनाढ्य, दरिद्र, धीर, कायर, सज्जन और दुर्जन सभीको खा लेता है—नष्ट कर देता है ॥ २० ॥ जागते रहने पर भी जिनकी निर्मलदृष्टि [पक्षमे सम्यग्दर्शन] को धूलिसे [पक्षमें पापसे] आच्छादित कर चोररूपी समस्त दोषोंने जिनका कल्याणकारी रत्न [पक्षमें मोक्षरूपी रत्न] छीन लिया है वे बेचारे इस संसारमें नष्ट हो चुके हैं—लुट चुके हैं ॥ २१ ॥ धन घरसे, शरीर ऊँची चिताकी अग्निसे और भाई-बान्धव श्मशानसे लौट जाते हैं ; केवल नाना

जन्मरूपी लताओंका कारण पुण्य-पापरूप द्विविध कर्म ही जीवके साथ जाता है ॥ २२ ॥ इसलिए मैं तीक्ष्ण तपश्चरणोंके द्वारा कर्मरूपी समस्त पाशोंको जड़-मूलसे काटनेका यत्न करूँगा। भला, ऐसा कौन बुद्धिमान् होगा जो अपने शुद्ध आत्माको कारागारमें रुका हुआ देखकर भी उसकी उपेक्षा करेगा ॥ २३ ॥ इस प्रकार वैराग्यभावको प्राप्त होकर भगवान् धर्मनाथ जबतक चित्तमें ऐसा चिन्तवन करते हैं तबतक कोई लोकोत्तर लौकान्तिकदेव स्वर्गसे आकर निम्नप्रकार अनुकूल निवेदन करने लगे ॥ २४ ॥

हे देव! इस समय आपने समस्त आपत्तियोंके मूलको नष्ट करनेवाला यह ठीक चिन्तवन किया। इस चिन्तवनसे आपने न केवल अपने आपको किन्तु समस्त जीवोंको भी संसार-समुद्रसे उद्धृत किया है ॥ २५ ॥ सम्यग्दर्शन नष्ट हो गया, इष्ट चरित्र नष्ट हो गया, ज्ञान नष्ट हो गया और उत्तम धर्मादि भी नष्ट हो गये। अब सज्जन पुरुष इस मिथ्यात्वरूप अन्धकारमें आपके केवलज्ञानरूपी दीपकसे अपनी नष्ट हुई समस्त वस्तुओंको देखें ॥ २६ ॥ ऐरावत हाथीपर बैठे हुए इन्द्र जिनमें मुख्य हैं और जो दुन्दुभि बाजोंके शब्दोंसे युक्त हैं ऐसे देवोंके चारों निकाय लौकान्तिक देवोंके द्वारा पूर्वोक्त प्रकारसे आनन्द्यमान भगवान् धर्मनाथके समीप बड़े आनन्दसे पहुँचे ॥ २७ ॥

तदनन्तर अतुच्छ प्रेमको धारण करनेवाले भगवान् धर्मनाथने पुत्रके लिए विशाल राज्य दिया। फिर भाई-बन्धुओंसे पूछकर इन्द्रोंके द्वारा उठाई हुई शिविकामें आरूढ हो सालवनकी ओर प्रस्थान किया ॥ २८ ॥ वहाँ उन्होंने सिद्धोंको नमस्कार कर तेलाका नियम ले कर्मरूपी वृक्षोंके मूलके समान सिरपर स्थित बालोंके समूहको पञ्च-मुष्टियोंके द्वारा क्षणभरमें उखाड़ डाला ॥ २९ ॥ इन्द्रने भगवान्के उन केशोंको क्षीरसमुद्रमें भेजनेके लिए मणिमय पात्रमें रख लिया

सो ठीक ही है क्योंकि भगवान्‌ने जिन्हें अपने मस्तकपर धारणकर किसी प्रकार छोड़ा है उन्हें कौन विद्वान् आदरसे नहीं ग्रहण करेगा ॥ ३० ॥ जिस दिन चन्द्रमा पुष्य नक्षत्रकी मित्रताको प्राप्त था ऐसे माघमासके शुक्ल पक्षकी जो उत्तम त्रयोदशी तिथि थी उसी दिन सायंकालके समय श्री धर्मनाथ भगवान् एक हजार राजाओंके साथ दीक्षित हुए थे ॥ ३१ ॥ उस वनमें जिन्होंने वस्त्र और आभूषण छोड़ दिये हैं तथा जो तत्कालमें उत्पन्न बालकके अनुरूप नग्न वेष धारण कर रहे हैं ऐसे श्री धर्मनाथ स्वामी वर्षाकालीन मेघसमूह से मुक्त सुमेरु पर्वतकी उपमा धारण कर रहे थे ॥ ३२ ॥ इन्द्र आदि सभी देव अपनी शक्तिके अनुसार मनोहर गीत, वादित्र और नृत्य कर सातिशय पुण्य प्राप्त करते हुए अर्हन्त देवको नमस्कारकर अपने-अपने स्थानों पर चले गये ॥ ३३ ॥

आचारको जाननेवाले भगवान् धर्मनाथने पाटलिपुत्र नामके नगरमें धन्यसेन राजाके घर हस्तरूप पात्रमें क्षीरान्नके द्वारा पञ्चाश्चर्य करनेवाला पारणा किया। तदनन्तर पवित्र वनके किसी प्रासुक स्थानमें नासाग्रभाग पर निश्चल नेत्र धारण करनेवाले, कायोत्सर्गके धारक एवं स्थिर चित्तसे युक्त भगवान्‌ने लोकमे चित्रलिखितकी शङ्का उत्पन्न की ॥ ३४-३५ ॥ [युग्म] ध्यान मुद्रामें स्थित, आलस्य रहित और विशाल भुजाओंको लटकाये हुए स्वामी धर्मनाथ ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो जो मिथ्यादर्शनसे अन्धे होकर नरकरूपी अन्धकूप में निमग्न हैं उनका उद्धार ही करना चाहते हों ॥३६॥ वे देव धर्मनाथ मुक्ताहार थे—आहार छोड़ चुके थे [पक्षमें मोतियोंके हारसे युक्त थे] सर्वदोपत्यकान्तारव्धप्रीति थे—हमेशा पर्वतोंकी तलहटियोंके अन्तमें प्रीति रखते थे [पक्षमें सर्व इच्छित वस्तुओंको देने वाले थे एवं पुत्र तथा स्त्रियोंमें प्रीति करते थे], स्वीकृतानन्तवासा थे—आकाश

रूपी वस्त्रको स्वीकृत करनेवाले थे [पक्षमें अनन्त वस्त्रोंको स्वीकृत करनेवाले थे] और विग्रहस्थ—शरीरमें स्थित [पक्षमें युद्धस्थित] शत्रुओं को नष्ट करते थे—इस प्रकार वनमें भी उत्तम राज्यकी लीलाको प्राप्त थे ॥३७॥ वे भगवान् श्रेष्ठ सम्पत्ति रूपी फलके लिए शान्ति-रूपी विशाल मेघोंकी जलधाराके वर्षणसे अतिशय उत्कृष्ट संयम रूपी उपवनोंके समूहको सींचते हुए क्रोध-रूपी दावानलकी शान्ति करते थे ॥ ३८ ॥ वे मार्दवसे मानको भेदते थे, आर्जवसे मायाको छेदते थे और निःस्पृहतासे लोभको नष्ट करते थे, इस प्रकार कर्मरूपी शत्रुओंको जड़से उखाड़नेकी इच्छा करते हुए उनके आस्रव रूप द्वारका निरोध करते थे ॥ ३९ ॥ अतिशय श्रेष्ठ वचनगुप्ति, मनोगुप्ति और कायगुप्तिको करते हुए, समिति रूपी अर्गलाओंके द्वारा अपने आपकी रक्षा करते हुए और दीर्घ गुणोंके समूहसे [पक्षमें रस्सियोंके समूहसे] इन्द्रियोंको बाँधते हुए वह भगवान् धर्मनाथ मोक्षके लिए बिलकुल बद्धोद्यम—तत्पर थे ॥ ४० ॥ वनमें ध्यानसे निश्चल शरीरको धारण करनेवाले उन भगवान् धर्मके मुखकी सुगन्धिको सूँघनेकी इच्छासे ही मानो उनके स्कन्धोंपर सर्प निश्चिन्तताके साथ उस प्रकार रहने लगे थे जिस प्रकार कि किसी चन्दन वृक्षके स्कन्धोंपर रहने लगते हैं ॥ ४१ ॥ कल्याण-मार्गमें स्थित भगवान् धर्मनाथ चूँकि आत्माको पुद्गलसे भिन्न स्वरूप देखकर शरीरमें आत्म-बुद्धि नहीं करते थे अतः उन्होंने पानी, ठण्ड और गर्मसे पीड़ित शरीरको काष्ठके समान दूर ही छोड़ दिया था ॥ ४२ ॥ वे भगवान् विघ्नोंको नष्ट करते और दोषोंको दूर हटाते हुए क्षमाके पात्र थे अतः उनकी वह अनुपम चतुराई हमारे चित्तमें अब भी आश्चर्य प्रदान करती है ॥ ४३ ॥ वह भगवान् जबसे संसार है तबसे साथ साथ रहनेवाले रागको दुःखी करते थे और तत्काल प्राप्त हुए योगमें

मित्रता तथा मोक्षमें पक्षपात धारण करते थे इस प्रकार आश्चर्यकारी अपना चरित्र स्वयं कह रहे थे ॥४४॥ वह भगवान् स्वयं धीवर थे— बुद्धिसे श्रेष्ठ थे [पक्षमें ढीमर थे] ज्योंही उन्होने मानस—मन रूपी मानसरोवरसे मोह रूप जालको खींचा त्योंही उसके पाशके भीतर मीनकेतु—कामदेवका मीन फँस कर फड़फड़ाने लगा इसी भयसे मानो वह निकल भागा था ॥ ४५ ॥ जिनके व्रत प्रलय कालके समय उदित द्वादश सूर्य-समूहके तेजःपुञ्जके समान अत्यन्त तीव्र थे ऐसे इन भगवान् धर्मनाथ पर मोहलक्ष्मी कभी भी नेत्र नहीं डाल सकती थी मानो दर्शन—दृष्टि [पक्षमें दर्शनमोह] के व्याघातसे उसका चित्त भयभीत ही हो गया था ॥ ४६ ॥ जिस प्रकार अच्छी तरह प्रारम्भ किया हुआ शाणोल्लेख यद्यपि अत्यन्त रमणीय कान्तिको बढ़ाता है तो भी पृथिवीको अलंकृत करनेके लिए मणिके शरीरमें कुछ कृशता ला देता है उसी प्रकार अच्छी तरह प्रारम्भ किया हुआ संयम यद्यपि अत्यन्त रमणीय कान्तिको बढ़ाता था तो भी उसने भूलोकको अलंकृत करनेके लिए उनके शरीरमें कुछ कृशता ला दी थी ॥४७॥ वे भगवान् यद्यपि सुकुमारताके एक मुख्य पात्र थे फिर भी तेजके पुञ्जसे युक्त तीव्र तपश्चरणमें वर्तमान थे अतः सूर्य-मण्डलके आतिथ्यको प्राप्त क्षीणकाय चन्द्रमाकी शोभाको प्राप्त हो रहे थे ॥४८॥ महादेव आदिके भारी अहंकारको नष्ट करनेवाला बेचारा कामदेव श्री धर्मनाथ स्वामीके विषयमे क्या सामर्थ्य रखता था ? क्योंकि अग्निके विषयमें प्रौढ़ता दिखलानेवाला जलका सिञ्चन क्या रत्नकी ज्योतिमें बाधा कर सकता है ? ॥४९ ॥ भ्रुकुटि रूपी धनुषसे कान तक खींचकर देवाङ्गनाओंके द्वारा छोड़े हुए दीर्घ कटाक्ष, हृदयका संतोष ही जिनका कवच प्रकट हो रहा है ऐसे श्री धर्मनाथ स्वामीके विषयमे कामदेवके बाणोंके समान विफलताको प्राप्त हुए थे ॥ ५० ॥

यद्यपि भगवान् भोगमे रोगमें, सुवर्णमें तृणमें, मित्रमें शत्रुमें और नगर तथा वनमें विशेषतारहित—समान दृष्टि रखते थे फिर भी विशेषज्ञता [पक्षमें वैदुष्य] की अद्वितीय सीमा थे ॥५१॥ वे यदि कुछ बोलते थे तो सत्य और हितकारी, यदि कुछ भोजन करते थे तो पक्व शुद्ध तथा दूसरेके द्वारा दिया हुआ, और यदि गमन करते थे तो रात्रिको छोड़कर देखते हुए—इस प्रकार उनका सभी कुछ शास्त्रानुकूल था ॥ ५२ ॥ उनके समीप एकेन्द्रिय वायु भी प्रतिकूलता को प्राप्त नहीं थी तब सिंहादि पञ्चेन्द्रिय जीवोंका दुष्ट स्वभाव नहीं था इसमे क्या आश्चर्य था ? ॥ ५३ ॥ बड़ी कठिनाईसे पकने योग्य कर्म-रूपी लताओंके फलोंको देदीप्यमान अन्तरङ्ग-बहिरङ्ग तपश्चरण रूपी अग्निकी ज्वालाओंसे शीघ्र ही पकाकर उनका उपभोग करने वाले भगवान् धर्मनाथ थोड़े ही दिनोंमे प्रशंसनीय हो गये थे ॥५४॥ वे व्यामोहरहित थे, निर्मद थे, प्रपञ्चरहित थे, निष्परिग्रह थे, निर्भय थे और निर्मम थे। इस प्रकार प्रत्येक देशमें विहार करते हुए किन संयमी जीवोंके लिए मोक्षविषयक शिक्षाके हेतु नहीं हुए थे ?॥५५॥ यह भगवान् छद्मस्थ अवस्थामें एक वर्ष विहार कर शाल वृक्षोंसे सुशोभित दीक्षावनमे पहुँचे और वहाँ शुक्ल ध्यानका अच्छी तरह आलम्बन कर सप्तपर्ण वृक्षके नीचे विराजमान हो गये ॥ ५६ ॥ भगवान् धर्मनाथ माघमासकी पूर्णिमाके दिन पुष्य नक्षत्रके समय घातिकर्मोंका क्षयकर उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य रूप वस्तुके स्वभावको प्रकाशित करनेवाले केवलज्ञानको प्राप्त हुए ॥ ५७ ॥

जिस समय आनन्दको देने वाला केवलज्ञान-रूपी चन्द्रमा कर्म-रूपी अन्धकारको नष्ट कर उदित हुआ उसी समय उत्पन्न होने वाले दुन्दुभि बाजोंके शब्दोंके बहाने आकाश-रूपी समुद्र भारी गर्जना करने लगा ॥ ५८ ॥ मनुष्योंके चित्त आकाशके समान निर्मल

हो गये, उनकी आशाएं पूर्वादि दिशाओंके समान प्रसन्न हो गईं—उज्वल हो गईं। यही नहीं, वायु भी शत्रुके समान अनुकूलताको प्राप्त हो गया सो ठीक ही है क्योंकि उस समय कौन-कौन सी वस्तु निष्कलङ्क नहीं हुई थी? ॥ ५९ ॥ उनके माहात्म्यके उत्कर्षसे ही मानो उत्तम गन्धोदककी वृष्टिके द्वारा हर्षको धारण करती हुई पृथिवी तत्कालमें उत्पन्न धान-रूपी सम्पत्तिके छलसे बड़े-बड़े रोमाञ्च धारण कर रही थी ॥६०॥ निरन्तर कामदेवकी युद्ध-लीलामें सहायता देनेसे जिसका अपना अपराध प्रकट है ऐसा ऋतुओंका समूह डरसे ही मानो दुष्ट कामदेवके शत्रु-स्वरूप इन भगवान्‌की सेवा कर रहा था ॥ ६१ ॥ मैं ऐसा मानता हूँ कि चतुर्वर्ण संघके लिए भाषाओंके चार भेदोंके द्वारा चार प्रकारसे संसारकी अपरिमित दुःख-दशाका वर्णन करनेके लिए ही मानो श्रीधर्मनाथ देव चतुर्मुख हुए थे ॥६२॥ असातावेदनीयका तीव्र उदय नष्ट हो जानेसे न उनके कवलाहार था, न कभी कोई उपसर्ग था। निश्चल ज्ञानदृष्टिकी ईर्ष्यासे ही मानो उनके नेत्र पलकोंके संचारको प्राप्त नहीं थे ॥ ६३ ॥ जब कि योग रूपी निद्रामें स्थित भगवान्‌के रोम [केश] और नख भी वृद्धिको प्राप्त नहीं होते थे तब अन्तरङ्गमें स्थित उन कर्मोंकी बात ही क्या थी जिनकी कि रेखा नाममात्रकी शेष रह गई थी ॥६४॥ सेवासे नम्रीभूत प्राणियोंके पास जाना ही जिसका लक्ष्य है ऐसी लक्ष्मी चरण-न्यासके समय सब ओर रखे जानेवाले कमलोंसे अपने निवास-गृहकी आशासे ही मानो इनके चरणोंकी समीपताको नहीं छोड़ती थी ॥ ६५ ॥ उनके माहात्म्यसे दो सौ योजन तक न दुर्भिक्ष था, न ईतियाँ थी, न उपसर्ग थे, न दरिद्रता थी, न बाधा थी, न रोग थे और न कहीं कोई अनिष्ट कार्य ही था ॥ ६६ ॥ घंटा, सिंह, शङ्ख और भेरियोंके शब्दोंसे कल्पवासी, ज्योतिष्क, भवनवासी और व्यन्तरोंके

इन्द्र हृदयमें लगे हुए इसके गुणोंके समूहसे खिंचे हुएके समान इनकी सेवा करनेके लिए चल पड़े ॥ ६७ ॥ उस समय स्वर्गसे आने वाले वैमानिक देवोंकी कोई पङ्क्ति बीचमें ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो ऊँचे मञ्चपर बैठे हुए देवोंकी कीर्ति सम्पत्ति-रूपी सुधाके द्वारा आकाशको सफेद करनेके लिए ही आ रही हो ॥६८॥

उस समय इन्द्रके आदेशसे कुबेरने आकाशमें श्री धर्मनाथ स्वामीकी वह धर्मसभा बनाई थी जो नानारत्नमयी थी और आगमके जानकार जिसका प्रमाण पाँच सौ योजन कहते हैं ॥ ६९ ॥ हृदय-वल्लभ श्रीधर्मनाथ स्वामीके साथ विरहकी व्याख्या करनेमें समर्थ वेणी खोलकर मुक्ति-रूपी लक्ष्मीने इस निकटवर्ती धर्मसभाके समीप धूलिसालके छलसे मानो अपना मुद्रा-रूपी कङ्कण ही डाल रक्खा था ॥ ७० ॥ वहाँ प्रत्येक दिशामें वायुके द्वारा जिनकी ध्वजाओंके अग्र-भाग फहरा रहे हैं ऐसे वे चार मानस्तम्भ थे जो क्रोधादि चार कषायोंके निराकरणमें सभालक्ष्मीके तर्जनीके कार्यको प्राप्त थे ॥७१॥ उनके समीप रत्नोंकी सीढ़ियोंसे मनोहर वे चार-चार वापिकाएँ सुशोभित हो रही थीं जिनमें कि रात्रिके समय अर्हन्त भगवान्‌के प्रौढ़ तेजके द्वारा चकवा स्त्रीके वियोगसे शोकको प्राप्त नहीं होता था ॥ ७२ ॥ जिनमें स्फटिकके समान स्वच्छ जल भरा हुआ है ऐसे चार सरोवर सालकान्त-प्राकारसे सुन्दर [पक्षमें अलकोंके अन्त भागसे सहित] मुखको धारण करनेवाली एवं अपनी शरीरगत शोभा देखनेके लिए इच्छुक उस धर्मसभाकी लीला-दर्पणताको प्राप्त हो रहे थे ॥ ७३ ॥ उनसे आगे चलकर जलसे भरी हुई वह परिखा थी जिसमें कि मन्द-मन्द चलनेवाली वायुसे चञ्चल तरङ्गें उठ रही थीं और उनसे जो ऐसी जान पड़ती थी मानो जिनेन्द्र भगवान्‌के व्याख्यानसे विदित संसारके दुःखसे डरकर बाहर निकले हुए सर्प

ही उसके मध्यमें आ मिले हों ॥ ७४ ॥ उसके आगे चलकर वह पुष्पवाटिका थी जिसके कि कुछ-कुछ हिलते हुए फूलोंके भीतर एक-एक निश्चल भौंरा बैठा हुआ था और उनसे जो ऐसी जान पड़ती थी मानो लोकत्रयको आश्चर्य देने वाली श्री जिनेन्द्रदेवकी लक्ष्मीको देखनेके लिए उसने नेत्र ही खोल रक्खे हों ॥ ७५ ॥ उस समवसरण सभाके समीप नक्षत्रमाला जिसकी शिखरोंका आलम्बन कर रही है ऐसा यह विशाल कोट नहीं था किन्तु उस समय इन्द्रके क्षोभसे गिरा हुआ स्वर्गलक्ष्मीका रत्नखचित कुण्डल था ॥ ७६ ॥ यद्यपि भगवान निःस्पृह थे फिर भी प्रत्येक द्वार पर रखे हुए भृङ्गार आदि मङ्गल-द्रव्योंके समूहसे, शङ्खध्वनिसे और उत्तमोत्तम निधियोंसे उनका समस्त ऐश्वर्य प्रकट हो रहा था ॥ ७७ ॥ उस प्रकारके ऊँचे चारो गोपुरोंकी दोनों ओर दो दो नाट्यशालाएँ सुशोभित हो रही थीं जिनमें कि मृगनयनी स्त्रियोंका वह नृत्य हो रहा था जो कि मनुष्योंके ऊपर निरक्षर कामदेवका शासन प्रकट कर रहा था ॥७८॥ प्रत्येक मार्गमें दो-दो धूमघट थे जिनके कि मुखोंसे निकली हुई धूमपङ्क्ति ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो ज्ञानवान् भगवान्का शरीर छोड़ आकाशमे घूमती हुई कर्मोंकी कालिमा ही हो ॥ ७९ ॥ वहाँ जो धूपसे उत्पन्न हुआ सुगन्धित धुवाँ फैल रहा था वह ऐसा जान पड़ता था मानो मच्छरके बच्चेके बराबर रूप बनाकर भयसे लोकके किसी कोनेमे स्थित पापके हटानेके लिए ही फैल रहा था ॥ ८० ॥ तदनन्तर जिनके बहुत ऊँचे पल्लव लहलहा रहे हैं ऐसे वे चार क्रीड़ावन थे जिन्होंने कि चार चैत्यवृक्षोंके बहाने इन्द्रका उपवन जीतनेके लिए मानो अपने-अपने हाथ ही ऊपर उठा रक्खे थे ॥ ८१ ॥ उनमें सुवर्णमय वे क्रीड़ापर्वत भी सुशोभित हो रहे थे जिनके कि हिलते हुए दोलाओं पर आसीन देव मनुष्योंके द्वारा

सेवनीय जलधारासे युक्त धारायन्त्रों और लता-मण्डपोंसे मनुष्योंके मन और नेत्र रूपी मृग स्वच्छन्दता पूर्वक क्रीड़ा कर रहे थे ॥ ८२ ॥ तदनन्तर अनेक रत्नमय स्तम्भोंसे सुसज्जित तोरणोंसे अलंकृत वह स्वर्णमय वेदी थी जो कि रात्रिके समय चन्द्रमा आदि ग्रहोंके भीतर प्रतिबिम्बित हो जाने पर कल्याणकी भूमिके समान सुशोभित हो रही थी ॥ ८३ ॥ उसके ऊपर गरुड़, हंस और वृषभ आदिके मुख्य सात चिह्नोंसे युक्त वे दश पताकाएँ सुशोभित हो रही थीं जिसमें कि लगे हुए मुक्ताफलोंकी आभा आकाशमें सञ्चलनसे खींची हुई गङ्गा की भ्रान्ति कर रही थीं ॥ ८४ ॥ तदनन्तर कर्णाकार चार गोपुरोंको धारण करता हुआ सुवर्णमय दूसरा कोट था जो कि ऐसा जान पड़ता था मानो अर्हन्त भगवान्के धर्मका व्याख्यान सुननेकी इच्छा करता हुआ सुमेरु पर्वत ही कुण्डलाकार होकर स्थित हो गया हो ॥ ८५ ॥ यद्यपि भगवान् इच्छासे अधिक देनेवाले थे और कल्पवृक्ष इच्छा प्रमाण ही त्याग करते थे फिर भी खेद है कि वे उनके समीप अपनी ऊँची शाखा तानकर खड़े हुए थे सो ठीक ही है क्योंकि अचेतनोंको क्या लज्जा ? ॥८६॥ उनके आगे चार गोपुरोंसे युक्त एवं सबके आनन्दको उज्जीवित करनेवाली वह वज्रमय वेदिका थी जिसकी कि रत्नोंकी ज्योतिसे जगमगाती हुई दश तोरणोंकी पङ्क्ति सुशोभित हो रही थी ॥ ८७ ॥ उन तोरणोंके बीच-बीचमें बहुत ऊँचे-ऊँचे वे नौ स्तूप थे जो कि प्रत्येक प्रतिमाओंसे सुशोभित थे तथा उन्हीं पर उत्तमोत्तम मुनियोंके ऊँचे-ऊँचे अनेक मनोहर सभामण्डप थे ॥ ८८ ॥ तदनन्तर जिसके आगे दुष्ट कामदेवके शस्त्रोंका प्रचार रुक गया है ऐसा स्फटिकका प्राकार था और उसके भीतर चन्द्रकान्त-मणि निर्मित बारह श्रेष्ठ कोठे थे ॥ ८९ ॥ इन कोठोंमें क्रमसे निर्ग्रन्थ-मुनि, कल्पवासिनी देवियाँ, आर्यिकाएँ, ज्योतिष्क देवियाँ, व्यन्तर

देवियाँ, भवनवासिनी देवियाँ, व्यन्तर देव, ज्योतिष्क देव, कल्पवासी देव, मनुष्य और तिर्यञ्चोंके समूह बैठते थे ॥ ९० ॥

उन सबसे ऊपर नेत्रोंके लिए प्रिय गन्धकुटी नामक दिव्य स्थान था और उसके भीतर उत्तम मणि-रूपी दीपकोंसे युक्त सुवर्णमय सुन्दर सिंहासन था ॥९१॥ रत्नोंकी कान्तिसे सुशोभित सिंहासन पर उज्ज्वल भामण्डलके बीच स्थित श्री जिनेन्द्रदेव ऐसे जान पड़ते थे मानो उन्नत सुमेरु पर्वत पर क्षीरसमुद्रके जलसे पुनः अभिषिक्त हो रहे हों ॥९२॥ उन भगवान्का अन्य वृत्तान्त क्या कहें । अशोक वृक्ष भी भ्रमरियोंके शब्दसे मानो गान कर रहा था, चञ्चल पल्लवोंके समूहसे मानो नृत्य कर रहा था और उनके गुणसमूहसे मानो रक्त वर्ण हो गया था ॥ ९३ ॥ जब कि आकाशमें पुष्पोंका होना संभव नहीं है तब उससे पुष्पवृष्टि कैसे सम्भव थी ? अथवा पता चल गया, अर्हन्त भगवान्के भयसे कामदेवके हाथसे बाण छूट-छूट कर गिर रहे थे ॥ ९४ ॥ भगवान्के भूत भविष्यत् और वर्तमान पदार्थों के ज्ञानके आकार चन्द्रत्रयके तुल्य जो छत्रत्रय प्रकट हुआ था वह उनकी त्रिलोकसम्बन्धी निर्बाध लक्ष्मीको प्रकट कर रहा था ॥९५॥ सेवाके लिए आये हुए सूर्यमण्डलके समान भामण्डलके द्वारा यदि भगवान्के शरीरकी छाया अपने भीतर न डाल ली जाती तो वह तीव्र प्रभा मानसिक संतापरूपी सम्पत्तिकी शान्तिको कैसे प्राप्त होती ? ॥९६॥ मुक्ति लक्ष्मीकी कटाक्षपरम्पराके समान आभा वाली चमरोंकी पङ्क्ति श्री जिनेन्द्र भगवान्के समीप ऐसी सुशोभित होती थी मानो ज्ञानका प्रकाश फैलने पर निष्फल अतएव ऊँचे दण्डमें नियन्त्रित चन्द्रमाकी किरणोंकी पङ्क्ति ही हो ॥ ९७ ॥ जिसे मयूर ग्रीवा उठा-उठा कर सुन रहे थे, जो कानोंके समीप अमृतकी विशाल धाराके समान थी और जो चार कोश तक फैल रही थी ऐसी दिव्य

ध्वनि किसके सुखके लिए नहीं थी ॥ ९८ ॥ भगवज्जिनेन्द्रको केवल-ज्ञान होने पर आकाशमें बजती हुई दुन्दुभि मानो यही कह रही थी कि रे रे कुतीर्थो ! जरा कहो तो यह लक्ष्मी कहां ? और ऐसी निःस्पृहता कहाँ ? यह ज्ञान कहाँ और यह अनुद्धतता—नम्रता कहाँ ? ॥ ९९ ॥ वहाँ स्थान-स्थान पर नृत्यको उल्लासित करनेवाले वे वे वाद्यविद्याके विलास और कानोंमें अमृतधाराका काम करनेवाले वे वे संगीत हो रहे थे जिनकी कि यहाँ छाया भी दुर्लभ है ॥१००॥ इस प्रकार आठ प्रातिहार्योंसे सुशोभित केवलज्ञान-रूपी सूर्यसे युक्त एवं धर्मतत्त्वको कहनेके इच्छुक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्र समवसरणके मध्य देवसभामें विराजमान हुए ॥१०१॥

इस प्रकार महाकवि श्री हरिचन्द्र द्वारा विरचित धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्यमें बीसवा सर्ग समाप्त हुआ।



एकविंश सर्ग

तदनन्तर गणधरने अतुच्छ ज्ञान रूप विक्रेय वस्तुओंके बाजार रूप त्रिजगद्गुरु भगवान् धर्मनाथसे जगत्त्रय ज्ञान प्राप्त करनेके लिए तत्त्वका स्वरूप पूछा ॥ १ ॥ तत्पश्चात् समस्त विद्याओंके अधिपति भगवान्से दिव्यध्वनि प्रकट हुई । वह दिव्यध्वनि भूत, वर्तमान और भविष्यत् पदार्थोंका साक्षात् करनेवाली थी, समस्त दोषोंसे रहित थी, मिथ्या मार्गकी स्थितिको छोड़नेवाली थी, प्रतिपक्षी—प्रतिवादियोंके गर्वको दूरसे ही नष्ट करनेके लिए दुन्दुभिके शब्दके समान थी, अपार पापरूप पर्वतोंको नष्ट करनेके लिए वज्र तुल्य थी, स्याद्वाद सिद्धान्तरूप साम्राज्यकी प्रतिष्ठा बढ़ानेवाली थी, धर्मरूपी अनुपम मल्लकी ताल ठोंकनेके शब्दके समान थी, भौंहोंका विलास, हाथका संचार, श्वास तथा ओठोंके हलन-चलनसे रहित थी, अक्षरोंके विन्याससे रहित होकर भी वस्तु ज्ञानको उत्पन्न करनेवाली थी, स्वयं एक रूप होकर भी भिन्न भिन्न अभिप्राय कहनेवाले अनेक प्राणियोंके अभिलषित पदार्थको एक साथ सिद्ध करनेवाली थी, समस्त आश्चर्यमयी थी और कानोंमें अमृतवर्षा करनेवाली थी ॥ २–७ ॥

उन्होंने कहा कि जिनशासनमे सात तत्त्व हैं—१ जीव, २ अजीव, ३ आस्रव, ४ बन्ध, ५ संवर, ६ निर्जरा और ७ मोक्ष ॥ ८ ॥ बन्ध तत्त्वके अन्तर्भूत होनेवाले पुण्य और पापका यदि पृथक् कथन किया जावे तो वही सात तत्त्व लोकत्रयमें नव पदार्थ हो जाते हैं ॥ ९ ॥ उनमेंसे जीव तत्त्व अमूर्तिक है, चेतना लक्षणसे सहित है । कर्ता है, भोक्ता है, शरीर प्रमाण है, ऊर्ध्वगामी है और

उत्पाद व्यय तथा ध्रौव्य रूप है ॥ १० ॥ सिद्ध और संसारीके भेद से वह दो प्रकारका कहा गया है और नरकादि गतियोंके भेदसे संसारी जीव चार प्रकारके हैं ॥ ११ ॥

सात पृथिवियोंके भेदसे नारकी जीव सात प्रकारके हैं। और उनमें अधिक-अधिक संक्लेश प्रमाण और आयुकी अपेक्षा विशेषता होती है ॥ १२ ॥ रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमःप्रभा ये नरककी सात भूमियां हैं ॥ १३ ॥ उनमेंसे पहली पृथिवी तीस लाख, दूसरी पच्चीस लाख, तीसरी पन्द्रह लाख, चौथी दश लाख, पांचवीं तीन लाख, छठवीं पांच कम एक लाख और सातवीं केवल पांच बिलोंसे अत्यन्त भयंकर है ॥ १४–१५ ॥ इस प्रकार सब चौरासी लाख नरक—बिल हैं। उनमें जो दुःख हैं उनकी संख्या बुद्धिमान् मनुष्य भी नहीं जान पाते ॥ १६ ॥ प्रथम पृथिवीके प्राणियोंके शरीरका प्रमाण सात धनुष तीन हाथ छह अंगुल है ॥ १७ ॥ इसके आगे द्वितीयादि अन्य पृथिवियोंके जीवोंके शरीरकी ऊँचाई पांच सौ धनुष तक क्रमशः दूनी-दूनी होती जाती है ॥ १८ ॥ बढ़ते हुए दुःखोंका समूह छोटे शरीरमें समा नहीं सकता था इसीलिए मानो नीचे-नीचे की पृथिवियोंमें नारकियोंका शरीर बड़ा-बड़ा होता जाता है ॥१९॥ प्रथम नरकमे एक सागर, द्वितीयमें तीन सागर, तृतीय में सात सागर, चतुर्थमें दश सागर, पञ्चममें सत्रह सागर, षष्ठमें बाईस सागर और सप्तममें तैंतीस सागर प्रमाण आयु है। ये सभी नरक दुःख के घर हैं ॥२०–२१॥ प्रथम नरकमें दश हजार वर्षकी जघन्य आयु है और उसके आगे पिछले नरकमें जो उत्कृष्ट आयु है वही जघन्य आयु जानना चाहिये ॥ २२ ॥ दैव इन दुःखी प्राणियोंके मनोवांछित कार्यको कभी पूरा नहीं करता और आयुको जिसे वे नहीं चाहते

मानो बढ़ाता रहता है ॥ २३ ॥ बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह रखनेवाले जीव रौद्र ध्यानके सम्बन्धसे उन नरकोंमें उत्पन्न होते हैं। वहाँ उत्पन्न होनेवाले जीवोंका उपपाद जघन्य होता है और सभी दुःखकी खान रहते हैं ॥ २४ ॥ उनके शरीर सदा दुःखरूप सम्पदा के द्वारा आलिङ्गित रहते हैं अतः ईर्ष्यासे ही मानो सुखरूपी लक्ष्मी कभी उनका मुख नहीं देखती ॥ २५ ॥ दयालु मनुष्य उनके दुःखोंका वर्णन कैसे कर सकते हैं क्योंकि वर्णन करते समय नेत्र आँसुओंसे भर जाते हैं, वाणी गद्गद हो जाती है और मन विह्वल हो उठता है ॥ २६ ॥ उनका शरीर यद्यपि खण्ड-खण्ड हो जाता है फिर भी चूँकि दुःख भोगनेके लिए पारेकी तरह पुनः मिल जाता है अतः उनकी चर्चा ही मेरे चित्तको दुःखी बना देती है ॥ २७ ॥ मधु मांस और मदिरामें आसक्ति होनेसे तूने जो कौल आदि कपटी गुरुओंकी पूजा की थी, उसीका यह पका हुआ फल भोग—इसप्रकार कह कर असुर कुमारदेव उन्हींका मांस काट-काट कर उनके मुखमें डालते हैं ॥ २८–२९ ॥ और अतिशय क्रूर परिणामी असुरकुमार बार-बार गरम रुधिर पिलाते हैं, मारते हैं, बाँधते हैं, मथते हैं और करोतोंसे चीरते हैं ॥ ३० ॥ खोटे कर्मके उदयसे वे नारकी वहां काटा जाना, पीटा जाना, छीला जाना और कोल्हूमें पेला जाना। क्या-क्या भयंकर दुःख नहीं सहते ? ॥३१॥ इस प्रकार नरकगतिके स्वरूपका निरूपण किया अब कुछ तिर्यञ्चगतिका भी भेद कहता हूँ ॥ ३२ ॥

त्रस और स्थावरके भेदसे तिर्यञ्चजीव दो प्रकारके हैं और त्रस द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय तथा पञ्चेन्द्रियके भेदसे चार प्रकारके हैं ॥३३॥ इनमें स्पर्शन इन्द्रिय तो सभी जीवोंके हैं। हां, रसना घ्राण चक्षु और कर्ण ये एक एक इन्द्रियाँ द्वीन्द्रियादि जीवोंके क्रमसे

बढ़ती जाती हैं ॥ ३४ ॥ द्वीन्द्रिय जीवकी उत्कृष्ट आयु बारह वर्ष है और शरीरकी उत्कृष्ट अवगाहना बारह योजन है ॥ ३५ ॥ त्रीन्द्रिय जीवकी उत्कृष्ट आयु उनचास दिनकी है और शरीरकी उत्कृष्ट अवगाहना तीन कोस है—ऐसा श्रीजिनेन्द्र देवने कहा है ॥ ३६ ॥ केवलज्ञान-रूपी लोचनको धारण करनेवाले जिनेन्द्रदेवने चतुरिन्द्रिय जीवकी उत्कृष्ट आयु छह माहकी और शरीरकी उत्कृष्ट अवगाहना एक योजन प्रमाण कही है ॥ ३७ ॥ पञ्चेन्द्रिय जीवोंकी उत्कृष्ट आयु एक करोड़ वर्ष पूर्व तथा शरीरकी अवगाहना एक हजार योजन कही गई है ॥३८॥ पृथिवी, वायु, जल, तेज और वनस्पतिके भेदसे एकेन्द्रिय जीव पाँच प्रकारके हैं ये सभी स्थावर कहलाते हैं ॥ ३९ ॥ इनमें पृथिवीकायिककी बाईस हजार वर्ष, वायुकायिककी तीन हजार वर्ष, जलकायिककी सात हजार वर्ष, अग्निकायिककी सिर्फ तीन दिन और वनस्पतिकायिककी दशहजार वर्षकी आयु है। वनस्पतिकायिककी उत्कृष्ट अवगाहना पञ्चेन्द्रियकी अवगाहनासे कुछ अधिक है ॥४०-४१॥ आर्तध्यानके वशसे जीव इस तिर्यञ्चयोनिमें उत्पन्न होता है और शीत, वर्षा, आतप, वध, बन्धन आदिके क्लेश भोगता है ॥४२॥ इस प्रकार आगमके अनुसार तिर्यञ्च गतिका भेद कहा। अब कुछ मनुष्यगतिकी विशेषता कही जाती है ॥ ४३ ॥

भोगभूमि और कर्मभूमिके भेदसे मनुष्य दो प्रकारके माने गये हैं। देवकुरु आदि तीस भोगभूमियाँ प्रसिद्ध हैं। वे सभी जघन्य मध्यम और उत्कृष्टके भेदसे तीन तीन प्रकारकी हैं। इनमें मनुष्योंकी ऊँचाई क्रमसे दो हजार, चार हजार और छह हजार धनुष है ॥४४-४५॥ जघन्य भोगभूमिमें एक पल्य, मध्यममें दो पल्य और उत्तममें तीन पल्य मनुष्योंकी आयु होती है। वहाँके मनुष्य अपने जीवन भर दश प्रकारके कल्पवृक्षोंसे प्राप्त पात्रदानका फल भोगते रहते हैं

॥४६॥ कर्मभूमिके मनुष्य भी आर्य और म्लेच्छोंके भेदसे दो प्रकारके हैं। भरत क्षेत्र आदि पन्द्रह कर्मभूमियाँ कहलाती हैं ॥ ४७ ॥ इनमें मनुष्य उत्कृष्टतासे पाँच सौ पचीस धनुष ऊँचे और एक कोटीवर्ष पूर्वकी आयु वाले होते हैं ॥४८॥ भरत और ऐरावत क्षेत्र उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी कालमें क्रमसे वृद्धि और हानिसे युक्त होते हैं परन्तु विदेहक्षेत्र सदा एक-सा रहता है ॥४९॥ आगमके ज्ञाताओंने दश कोड़ाकोड़ी सागर वर्षोंकी उत्सर्पिणी और उतने ही वर्षोंकी अवसर्पिणी कही है ॥ ५० ॥ सुषमा-सुषमा, सुषमा, सुषमा-दुःषमा, दुःषमा-सुषमा, दुःषमा और दुःषमा-दुःषमा—इस प्रकार उन दोनोंके ही कालकी अपेक्षा छह-छह भेद हैं ॥ ५१-५२ ॥ प्रारम्भके तीन कालोंका प्रमाण जिनागममें क्रमसे चार कोड़ाकोड़ी, और दो कोड़ाकोड़ी सागर कहा गया है ॥ ५३ ॥ चौथे कालका प्रमाण बयालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागर कहा गया है ॥५४॥ तत्त्वके ज्ञाताओंने पाँचवें और छठवे कालका प्रमाण इक्कीस-इक्कीस हजार वर्ष बतलाया है ॥५५॥ कर्मभूमिके मनुष्य असि मषी आदि छह कार्यों के भेदसे छह प्रकारके और गुणस्थानोंके भेदसे चौदह प्रकारके होते हैं। क्षेत्रज म्लेच्छ पाँच प्रकारके हैं ॥ ५६ ॥ थोड़ा आरम्भ और थोड़ा परिग्रह रखनेवाले मनुष्य स्वभावकी कोमलतासे इस मनुष्यगतिमें उत्पन्न होते हैं। मनुष्य पुण्यकी प्राप्ति और पापका क्षय करनेवाले होते हैं ॥५७॥ यह मनुष्य स्त्रीके उस गर्भमें कृमिकी तरह उत्पन्न होता है जो कि अत्यन्त घृणित है, कफ अपक्व रुधिर और मलसे भरा है, तथा जिसमें कुम्भीपाकसे भी अधिक दुःख है ॥ ५८ ॥ इस प्रकार मनुष्यगतिका वर्णन किया। अब कामके आनन्दसे उज्जीवित रहनेवाली देवगतिका भी कुछ वर्णन किया जावेगा ॥ ५९ ॥

भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिकोंके भेदसे देव चार प्रकारके है। उनमें भवनवासी, असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार और उदधिकुमारके भेदसे दश प्रकारके कहे गये हैं ॥६०-६१॥ उनमेंसे एक सागरकी उत्कृष्ट आयुवाले असुरकुमारोंका शरीर पच्चीस धनुष ऊँचा है और शेष नौ कुमारोंका दश धनुष ॥ ६२ ॥ व्यन्तर किन्नर आदिके भेदसे आठ प्रकारके हैं, उनके शरीरका प्रमाण दश तथा सात धनुष प्रमाण है और उत्कृष्ट आयु एक पल्य प्रमाण है ॥ ६३ ॥ सूर्य चन्द्र आदिके भेदसे ज्योतिषी देव पाँच प्रकारके हैं। इनकी आयु व्यन्तरोंकी तरह ही कुछ अधिक एक पल्य प्रमाण हैं ॥६४॥ व्यन्तर और भवनवासी देवोंकी जघन्य आयु दश हजार वर्षकी है तथा ज्योतिषियोंकी पल्यके आठवें भाग ॥६५॥ कल्पोपपन्न और कल्पातीतकी अपेक्षा वैमानिक देवोंके दो भेद हैं। कल्पोपपन्न तो वे हैं जो अच्युत स्वर्गके पहले रहते है और कल्पातीत वे हैं जो उसके आगे रहते हैं ॥ ६६ ॥ धार्मिक कार्योंके प्रारम्भमें महान् उद्यम करनेवाले सौधर्म-ऐशान, सानत्कुमार-माहेन्द्र, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव-कापिष्ठ, शुक्र-महाशुक्र, शतार-सहस्रार, आनत-प्राणत एवं आरण-अच्युत ये सोलह स्वर्ग कहे गये हैं। अब इन स्वर्गोंमें रहनेवाले देवोंकी आयु शरीरका प्रमाण कहते हैं ॥६७-६९॥ आदिके दो स्वर्गोंमें देवोंकी ऊँचाई ७ हाथ, उसके आगे दो स्वर्गोंमें ६ हाथ, फिर चार स्वर्गोंमें पांच हाथ, फिर चार स्वर्गोंमें चार हाथ, फिर दोमें साढ़े तीन हाथ और फिर दो में ३ हाथ है। यह सोलह स्वर्गोंकी अवगाहना कही। इसी प्रकार अधोग्रैवेयकोंमें अढ़ाई हाथ, मध्यम ग्रैवेयकोंमें दो हाथ, उपरिम ग्रैवेयकोंमें डेढ़ हाथ और उनके आगे अनुदिश तथा अनुत्तरविमानोंमें एक हाथ प्रमाण देवोंकी अवगाहना जाननी चाहिये ॥ ७०-७२ ॥ सौधर्म और ऐशान स्वर्गमें

दो सागर, सानत्कुमार और माहेन्द्रमें सात सागर, ब्रह्म और ब्रह्मोत्तरमें दश सागर, लान्तव और कापिष्ठमें चौदह सागर, शुक्र और महाशुक्रमें सोलह सागर, शतार और सहस्रारमें अठारह सागर, आनत और प्राणतमें बीस सागर, आरण और अच्युतमें बाईस सागर तथा इनके आगे ग्रैवेयकसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्तके विमानोंमें तैंतीस सागर तक एक-एक सागर बढ़ती हुई आयु है ॥ ७३–७७ ॥ अकामनिर्जरा और बालतप रूप संपत्तिके योगसे जीव इन स्वर्गोंमें उत्पन्न हो सुख प्राप्त करते हैं ॥ ७८ ॥ यहां पर देव शृङ्गार रसके उस साम्राज्यका निरन्तर उपभोग करते रहते हैं जो कि विलाससे परिपूर्ण और रति-सुखका कोष है ॥ ७९ ॥ इस प्रकार चतुर्गतिके भेदसे जीवतत्त्वका वर्णन किया। अब अजीव तत्त्वका कुछ स्वरूप कहा जाता है ॥ ८० ॥

सम्यक् प्रकारसे तत्त्वोंको जाननेवाले जिनेन्द्रदेवने धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गलके भेदसे अजीव तत्त्वको पांच प्रकारका कहा है ॥ ८१ ॥ जीव सहित उक्त पांच भेद छह द्रव्य कहलाते हैं और कालको छोड़ अवशिष्ट पांच द्रव्य पञ्चास्तिकायताको प्राप्त होते हैं ॥ ८२ ॥ मछलियोंके चलनेमें पानीकी तरह जो जीवादि पदार्थोंके चलनेमें कारण है उसे तत्त्वज्ञ पुरुषोंने धर्म कहा है ॥ ८३ ॥ घामसे संतप्त मनुष्योंको छायाकी तरह अथवा घोड़े आदिको पृथिवीकी तरह पुद्गलादि द्रव्योंके ठहरनेमे जो कारण है वह अधर्म कह-कहलाता है ॥ ८४ ॥ ये दोनों ही द्रव्य लोकाकाशमें व्याप्त होकर स्थित हैं, क्रियारहित हैं, नित्य हैं, अप्रेरक कारण हैं और अमूर्तिक हैं ॥ ८५ ॥ पुद्गलादि पदार्थोंको अवगाह देनेवाला आकाश लोकाकाश और उसके बाहर सर्वत्र व्याप्त रहनेवाला आकाश शुद्धाकाश कहलाता है ॥ ८६ ॥ सर्वज्ञ देवने धर्म अधर्म और एक जीव द्रव्यके

असंख्यात तथा आकाशके अनन्त प्रदेश कहे हैं ॥ ८७ ॥ जीवादि पदार्थोंके परिवर्तनमें उपयोग आनेवाला वर्तनालक्षण सहित काल द्रव्य है। यह द्रव्य अप्रदेश तथा निश्चयकी अपेक्षा नित्य है ॥८८॥ सूर्य आदिकी उदय अस्त क्रिया रूप जो काल है वह औपचारिक ही तथा मुख्य काल द्रव्यका सूचक है ॥ ८९ ॥ जो स्पर्श रस गन्ध और वर्णसे सहित हैं वे पुद्गल हैं। ये स्कन्ध और अणुके भेदसे दो प्रकारके हैं तथा त्रिलोककी रचनाके कारण हैं ॥९०॥ पृथिवी, तैल, अन्धकार, गन्ध, कर्म और परमाणुके समान स्वभाव रखनेवाले वे पुद्गल जिनागममें स्थूलस्थूल आदिके भेदसे छह प्रकारके होते हैं ॥ ९१ ॥ शब्द, आहार, शरीर, इन्द्रिय तथा श्वासोच्छ्वासादि जो कुछ भी मूर्तिमान् पदार्थ हैं वह सब स्थूल तथा सूक्ष्म भेदको लिये हुए पुद्गल ही हैं ॥ ९२ ॥ इस प्रकार आगमके अनुसार अजीव तत्त्वका निरूपण किया। अब कुछ आस्रव तत्त्वका रहस्य खोलता हूँ ॥ ९३ ॥

काय, वचन और मनकी क्रिया रूप योग ही आस्रव माना गया है। पुण्य और पापके योगसे उसके शुभ और अशुभ-दो भेद होते हैं ॥ ९४ ॥ गुरुका नाम छिपाना, उनकी निन्दा करना, मात्सर्य तथा आसादन आदि ज्ञानावरण और दर्शनावरणके आस्रव जानना चाहिये ॥९५॥ स्व पर तथा दोनोंके आश्रयसे होनेवाले दुःख, शोक, भय, आक्रन्दन, संताप और परिदेवनसे यह जीव असातावेदनीयका बन्ध करता है ॥ ९६ ॥ क्षमा, शौच, दया, दान तथा सरागसंयम आदि सातावेदनीयके आस्रव होते हैं ॥ ९७ ॥ मूर्खतावश केवली, श्रुत, संघ तथा अर्हन्तदेव द्वारा प्रणीत धर्मका अवर्णवाद करना— उनके अविद्यमान दोष कहना दर्शनमोहका आस्रव है ॥ ९८ ॥ तेजस्वी मनुष्योंका कषायके उदयसे जो तीव्र परिणाम हो जाता है

वह चारित्र मोहनीय कर्मका कारण है ॥ ९९ ॥ बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह रखना नरकायुके निमित्त हैं, माया और आर्तध्यान तिर्यञ्चयोनिका कारण है ॥१००॥ अल्प आरम्भ और अल्प परिग्रह मनुष्यायुका कारण है तथा सरागसंयमादि देवायुका आस्रव है ॥ १०१ ॥ विसंवाद और निरन्तर रहनेवाली योगोंकी कुटिलता अशुभ नाम कर्मका तथा अविसंवाद और योगोंकी सरलता शुभ नामकर्मका आस्रव है ॥ १०२ ॥ दर्शनविशुद्धि आदि सोलह भावनाएं तीर्थंकर नाम-कर्मकी कारण हैं और स्वप्रशंसा तथा परनिन्दा आदि नीच गोत्रके निमित्त हैं ॥१०३॥ आत्मनिन्दा और परप्रशंसा उच्चगोत्रके साधक हैं तथा विघ्न करना दानान्तराय आदि अन्तराय कर्मके कारण हैं ॥ १०४ ॥ इस प्रकार आस्रवतत्त्वका कुछ रहस्य कहा। अब विधिपूर्वक बन्धतत्त्वका ज्ञान कहा जाता है ॥१०५॥

यह जीव सकषाय होनेसे कर्मरूप होनेके योग्य असंख्यात प्रदेशात्मक पुद्गलोंको जो ग्रहण करता है वही बन्ध कहलाता है ॥ १०६ ॥ मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये जीवके कर्मबन्धके पाँच कारण माने गये हैं ॥ १०७ ॥ जैन वाङ्मयके जाननेवाले आचार्योंने प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशके भेदसे बन्धतत्त्व चार प्रकारका कहा है ॥ १०८ ॥ कर्मोंकी निम्नलिखित आठ प्रकृतियाँ हैं—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय ॥ १०९ ॥ इनके क्रमसे निम्न प्रकार भेद हैं—पाँच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, बयालिस, दो और पाँच ॥ ११० ॥ आदिके तीन तथा अन्तराय कर्मकी उत्कृष्टस्थिति विद्वानोंने तीस कोड़ाकोड़ी सागर बतलाई है ॥ १११ ॥ मोहनीयकी सत्तर कोड़ाकोड़ी और नाम तथा गोत्रकी बीस कोड़ाकोड़ी सागरकी स्थिति है। आयु कर्मकी स्थिति केवल तैंतीस सागर है ॥ ११२ ॥

वेदनीयकी जघन्य स्थिति बारह मुहूर्त, नाम और गोत्रकी आठ मुहूर्त, तथा अवशिष्ट समस्त कर्मोंकी अन्तर्मुहूर्त्त है ॥ ११३ ॥ भाव तथा क्षेत्र आदिकी अपेक्षासे कर्मोंका जो विपाक होता है उसे केवलज्ञान-रूप सूर्यसे सम्पन्न जिनेन्द्र भगवान्ने अनुभाग बन्ध कहा है ॥११४॥ आत्माके समस्त प्रदेशोंमें सब ओरसे कर्मके अनन्तानन्त प्रदेशोंका जो सम्बन्ध होता है उसे विद्वानोंने प्रदेशबन्ध कहा है ॥ ११५ ॥ इस प्रकार चार प्रकारके बन्धतत्त्वका क्रम कहा। अब कुछ पद्योंके द्वारा संवर-तत्त्वके विस्तारका संक्षेप किया जाता है ॥ ११६ ॥

जिससे कर्म रुक जावें ऐसी निरुक्ति होनेसे समस्त आस्रवोंका रुक जाना संवर कहलाता है ॥ ११७ ॥ [जिसके द्वारा आस्रवका द्वार रुक जानेसे शुभ-अशुभ कर्मोंका आना बन्द हो जाता है वह संवर कहलाता है ॥ ११८ ॥] पाठान्तर। यह संवर धर्मसे, समितिसे, गुप्तिसे, अनुप्रेक्षाओंके चिन्तनसे, चारित्रसे और छह इन्द्रियोंको जीतनेसे उत्पन्न होता है ॥ ११९ ॥ अन्य विस्तारसे क्या लाभ ? जिन-शासनका रहस्य इतना ही है कि आस्रव संसारका मूल कारण है और संवर मोक्षका ॥ १२० ॥ इस प्रकार संवरका वर्णन किया। अब कर्मरूप लोहेके पञ्जरको जर्जर करनेवाली निर्जरा कही जाती है ॥ १२१ ॥

आत्मा जिसके द्वारा शुभाशुभ भेद वाले दुर्जर कर्मोंको जीर्ण करता है वह निर्जरा है। इसके सकाम निर्जरा और अकाम निर्जराकी अपेक्षा दो भेद हैं ॥ १२२ ॥ जिनेन्द्र भगवान्के द्वारा प्रतिपादित व्रताचरणसे जो निर्जरा होती है वह सकाम निर्जरा है, और नारकी आदि जीवोंके अपना फल देते हुए जो कर्म खिरते हैं वह अकामनिर्जरा ॥ १२३ ॥ जैनाचार्योंने सागार और अनगारके भेदसे व्रत दो प्रकारका कहा है। सागारव्रत अणुव्रतसे होता है

और अनगारव्रत महाव्रतसे। उन दोनोंमेंसे यहाँ सागार व्रतका वर्णन किया जाता है ॥ १२४ ॥ जिनागममें गृहस्थोंके पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत कहे गये हैं ॥ १२५ ॥ सम्यग्दर्शन इन व्रतोंकी भूमि है क्योंकि उसके विना संसारके दुःख रूप आतपको दूरसे ही नष्ट करनेवाले व्रत रूप वृक्ष सिद्ध नहीं होते—फल नहीं देते ॥ १२६ ॥ धर्म आप्त गुरु तथा तत्त्वोंका शङ्कादि दोष रहित जो निर्मल श्रद्धान है वह सम्यग्दर्शन कहलाता है ॥ १२७ ॥ धर्म वही है जो आप्त भगवान्के द्वारा क्षमादि दश प्रकारका कहा गया है, आप्त वही हैं जो अठारह दोषोंसे रहित हों। गुरु वही हैं जो बाह्याभ्यन्तर परिग्रहसे रहित हों, और तत्त्व वही जीवादि हैं जो कि सर्वज्ञ देवके द्वारा कहे गये हैं ॥ १२८–१२९ ॥ शङ्का, काङ्क्षा, विचिकित्सा, मूढदृष्टि, प्रशंसन और संस्तव—ये सम्यग्दर्शनके अतिचार कहे गये हैं ॥ १३० ॥ जो अदेवमें देवबुद्धि, अगुरुमें गुरुबुद्धि और अतत्त्वमे तत्त्वबुद्धि है वही मिथ्यात्व है। यह मिथ्यात्व बड़ा विलक्षण पदार्थ है ॥१३१॥ मधुत्याग, मांसत्याग, मद्यत्याग और पाँच उदुम्बर फलोंका त्याग करना ये सम्यग्दृष्टिके आठ मूल गुण कहे गये हैं ॥ १३२ ॥ धर्मात्मा पुरुषोंको जुआ, मांस, मदिरा, वेश्या, शिकार, चोरी और परस्त्रीसंगका भी त्याग करना चाहिए ॥ १३३ ॥ जो प्राणी मोहवश इन सात व्यसनोंका सेवन करता है वह इस संसार रूप दुःखदायी अपार वनमें निरन्तर भ्रमण करता रहता है ॥ १३४ ॥ देशविरत श्रावक दो मुहूर्त्त बाद फिरसे न छाने हुए पानी तथा मक्खनका कभी सेवन न करे ॥ १३५ ॥ निर्मल बुद्धि वाला पुरुष दो दिनका तक दही, जिसपर फूल [भकूंडा] आ गया हो ऐसा ओदन, तथा कच्चे गोरससे मिला हुआ द्विदल न खावे ॥ १३६ ॥ घुना, चलित स्वाद तथा जिसमें नया अंकुर निकल आया हो ऐसा

अनाज, चमड़ेके बर्तनमें रखनेसे अपविश्रित तैल, पानी, घी आदि, गीलाकन्द, कलींदा (तरबूजा), मूली, फूल, अनन्तकाय, अज्ञातफल संधान आदि उपासकाध्ययनमें जो जो त्याज्य बतलाये गये हैं जिनेन्द्र भगवान्‌की आज्ञा पालन करने वाला बुद्धिमान् श्रावक क्षुधासे क्षीण शरीर होकर भी उन्हें न खावें ॥ १३७–१३९ ॥ पापसे डरनेवाला सम्यग्दृष्टि पुरुष मन, वचनकी शुद्धिपूर्वक रात्रि भोजन तथा दिवा मैथुनका भी त्याग करे ॥ १४० ॥ उल्लिखित पद्धतिसे प्रवृत्ति करने एवं मनको सुस्थिर रखनेवाला पुरुष ही निश्चयसे श्रावकके व्रत पालन करनेका अधिकारी होता है ॥ १४१ ॥ हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह इन पाँच पापोंसे एक देश विरत होना पाँच अणुव्रत जानना चाहिए ॥ १४२ ॥ दिग् देश और अनर्थदण्डोंसे मन, वचन, काय पूर्वक निवृत्त होना तीन गुणव्रत हैं । यह गुणव्रत संसार-रूप समुद्रमें जहाजका काम देते हैं ॥ १४३ ॥ झाड़ू, कोल्हू, शस्त्र, अग्नि, मूसल तथा उखली आदिका देना, मुर्गा, कुत्ता, बिलाव, मैना-तोता आदिका पालना, कोयला, गाड़ी, बाग-बगीचा, भाड़ा तथा फटाका आदिसे आजीविका करना, तिल, पानी तथा ईख आदिके यन्त्र लगाना, बनमें अग्नि लगाना, दांत केश नख, हड्डी चमड़ा रोम, निन्दनीय रस, सन, हल, लाख, लोहा तथा विष आदिका बेचना, बावड़ी, कुँआ, तालाब आदिका सुखाना, भूमिका जोतना, बैल आदि पशुओंको बदिया करना, उन्हें समय पर आहार-पानी नहीं देना, अधिक भार लादना, वनक्रीड़ा, जलक्रीड़ा, चित्रकर्म तथा लेप्यकर्म आदि और भी बहुतसे अनर्थदण्ड कहे गये हैं । व्रती मनुष्यको इन सबका त्याग करना चाहिए ॥ १४४–१४८ ॥ गृहस्थोंका प्रथम शिक्षाव्रत सामायिक है जो कि आर्त्त रौद्र ध्यान छोड़कर त्रिकाल जिन-वन्दना करनेसे होता है ॥ १४९ ॥ चारों पर्वोंके दिन भोजन तथा अन्य

भोगोंका त्याग करना दूसरा प्रोषध नामक शिक्षाव्रत है—ऐसा कहा गया है ॥१५०॥ संतोषी मनुष्योंके द्वारा जो भोगोपभोगका नियम किया जाता है यह भोगोपभोगका परिमाण व्रत है। यह व्रत दुःख रूपी दावानलको बुझानेके लिए पानीके समान है ॥१५१॥ घर आये साधुके लिए जो समय पर दान दिया जाता है, अथवा जीवनके अन्तमें जो सल्लेखना धारण की जाती है वह चौथा अतिथिसंविभाग अथवा सल्लेखना नामक शिक्षाव्रत कहा जाता है ॥ १५२ ॥ जो सम्यग्दृष्टि इन बारह व्रतोंको धारण करता है वह गहरे संसार रूप समुद्रको घुटनोंके बराबर उथला कर लेता है ॥१५३॥ इस प्रकार आगमके अनुसार श्रावकोंके व्रत कहे। अब यहाँसे त्रिलोकके आभरण भूत अनगार धर्मका कुछ वर्णन करते है ॥ १५४ ॥

बाह्य और आभ्यन्तरके भेदसे अनगारधर्म–मुनिव्रत दो प्रकारका है। जिनेन्द्र भगवान्‌ने बाह्यके छह भेद कहे हैं और आभ्यन्तरके भी उतने ही ॥ १५५ ॥ वृत्ति परिसंख्यान, अवमौदर्य, उपवास, रस-परित्याग, एकान्त स्थिति और कायक्लेश ये छह बाह्यव्रत हैं ॥१५६॥ स्वाध्याय, विनय, ध्यान, व्युत्सर्ग, वैयावृत्य और प्रायश्चित्त ये छह अन्तरङ्ग व्रत हैं ॥ १५७ ॥ जो तीन गुप्तियाँ और पाँच समितियाँ कही गई हैं वे भी मुनिव्रतकी जनक पालक और पोषक होनेसे अष्ट-मातृकाएं कहलाती हैं ॥१५८॥ यह संक्षेपसे निर्जराका स्वरूप कहा। अब अविनाशी सुखसम्पन्न मोक्षलक्ष्मीका वर्णन करता हूँ ॥ १५९ ॥

बन्धके कारणोंका अभाव तथा निर्जरासे जो समस्त कर्मोंका क्षय होता है वह मोक्ष कहलाता है ॥ १६० ॥ वह मोक्ष उत्तम परिणाम वाले जीवके एकरूपताको प्राप्त हुए ज्ञान दर्शन और चारित्रके द्वारा ही होता है ॥ १६१ ॥ तत्त्वोंका अवगम होना ज्ञान है, श्रद्धान होना दर्शन है और पापारम्भसे निवृत्ति होना चारित्र है

ऐसा श्री जिनेन्द्र देवने कहा है ॥ १६२ ॥ बन्धन रहित जीव अग्निकी ज्वालाओंके समूहके समान अथवा एरण्डके बीजके समान अथवा स्वभावसे ही ऊर्ध्व गमन करता है ॥ १६३ ॥ वह लोकाग्रको पाकर वहीं पर सदाके लिए स्थित हो जाता है। धर्मास्तिकायका अभाव होनेसे आगे नहीं जाता ॥ १६४ ॥ वहाँ वह पूर्व शरीरसे कुछ ही कम होता है तथा अनन्त अप्राप्त पूर्व, अव्याबाध, अनुपम और अविनाशी सुखको प्राप्त होता है ॥१६५॥ इस प्रकार तत्त्वोंके प्रकाशसे भगवान् धर्मनाथने उस सभाको उस प्रकार आह्लादित कर दिया जिस प्रकार कि सूर्य कमलिनीको ॥ १६६ ॥

तदनन्तर भव्य जीवोंके पुण्यसे खिंचे निःस्पृह भगवान्ने अज्ञान अन्धकारको नष्ट करनेके लिए सूर्यकी तरह प्रत्येक देशमें विहार किया ॥१६७॥ समस्त पदार्थोंको अवकाश देने वाला यह आकाश पृथिवीसे कहीं श्रेष्ठ है—यह विचार कर ही मानो गमन करनेके इच्छुक भगवान्ने गमन करनेके लिए ऊँचा आकाश ही अच्छा समझा था ॥ १६८ ॥ आकाशमे उनके चरणोंके समीप कमलोंका समूह लोट रहा था जो ऐसा जान पड़ता था मानो भगवान्के चरणोंकी अविनाशी शोभा पानेके लिए ही लोट रहा हो ॥ १६९ ॥ चूँकि उस समय कमलोंके समूहने उनके चरणोंकी उपासना की थी इसलिए वह अब भी लक्ष्मीका पात्र बना हुआ है ॥ १७० ॥ उनके आगे-आगे चलता हुआ वह धर्मचक्र जो कि तीर्थंकर-लक्ष्मीके तिलकके समान जान पड़ता था, कह रहा था कि संसारमें भगवान्का चक्रवर्तीपना अखण्डित है ॥१७१॥ चूंकि समस्त पदार्थोंको प्रकाशित करनेवाले इन भगवान्के तेजसे सूर्य व्यर्थ हो गया था अतः मानो वह धर्मचक्रके छलसे सेवाके लिए उनके आगे-आगे ही चलने लगा हो ॥१७२॥ अतिशय सम्पन्न जिनेन्द्रदेव जहाँ विहार करते थे

वहाँ रोग, ग्रह, आतङ्क, शोक तथा शङ्का आदि सभी दुर्लभ हो जाते थे ॥ १७३ ॥ उस समय सज्जन पुरुष शत्रुओंके समान निष्कलाभ मुहूर्तोंके लाभसे सहित [पक्षमें कृष्णकान्ति] हुए थे और पृथिवी भी प्रजाकी तरह निष्कण्टक परिग्रह—काँटोंसे रहित [पक्षमें क्षुद्र शत्रुओंसे रहित] हो गई थी ॥ १७४ ॥ जब कि महाबलसान् वायु भी उनकी अनुकूलताको प्राप्त हो चुकी थी तब बेचारे अन्य शत्रु क्या थे जो उनकी प्रतिकूलतामें खड़े हो सकें ॥ १७५ ॥ पैंतालीस धनुष ऊँचे सुवर्णसुन्दर शरीरको धारण करनेवाले जिनेन्द्र, देवोंसे सेवित हो ऐसे जान पड़ते थे मानो दूसरा सुमेरु पर्वत ही हो ॥ १७६ ॥

इनकी सभामें बयालीस गणधर थे, नौ सौ तीक्ष्ण बुद्धि वाले पूर्वधारी थे, चार हजार सात सौ शिक्षक थे, तीन हजार छह सौ अवधिज्ञानी थे, पैंतालीस सौ केवलज्ञानी थे, इतने ही पापको नष्ट करनेवाले मनःपर्ययज्ञानी थे, सात हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक थे, दो हजार आठ सौ वादी थे, छह हजार चार सौ आर्यिकाएँ थीं, शुद्ध सम्यग्दर्शनसे सुशोभित दो लाख श्रावक थे, पापोंको नष्ट करने वाली चार लाख श्राविकाएँ थीं, देव और तिर्यञ्च असंख्यात थे ॥ १७७–१८२ ॥ इस प्रकार सेनाकी तरह चार प्रकारके संघसे सुशोभित धर्मनाथ स्वामी मिथ्यावादियोंके मुखसे आकृष्ट समस्त पृथिवीको सुखी कर अहंकारी मोह-राजाकी सेनाको जीत विजय-लक्ष्मीसे सुशोभित होते हुए विजय-स्तम्भके समान आचरण करने वाले सम्मेदाचल पर जा पहुँचे ॥ १८३ ॥ वहाँ उन्होंने चैत्रमासकी शुक्ल चतुर्थीको पाकर रात्रिके समय साढ़े बारह लाख प्रमाण उत्तम आयुका क्षय होने पर आठ सौ मुनियोंके साथ क्षण भरमें ध्यानके द्वारा समस्त कर्मरूपी बेड़ियाँ नष्ट कर दीं ॥१८४॥

तदनन्तर विविध प्रकारके स्तोत्रों तथा पुष्पवृष्टि आदिसे [पक्षमें

फूलोंके समान सुकुमार वचनोंसे] हरिचन्द्र-इन्द्र तथा चन्द्रमा आदि देवों [पक्षमें महाकवि हरिचन्द्र] के द्वारा पूजित भगवान् धर्मनाथ मोक्ष-लक्ष्मीको प्राप्त हुए और निर्वाणकल्याणककी पूजासे पुण्य-राशिका संचय करनेवाले भक्त देव लोग अपने-अपने स्थानोंको प्राप्त हुए ॥ १८५ ॥

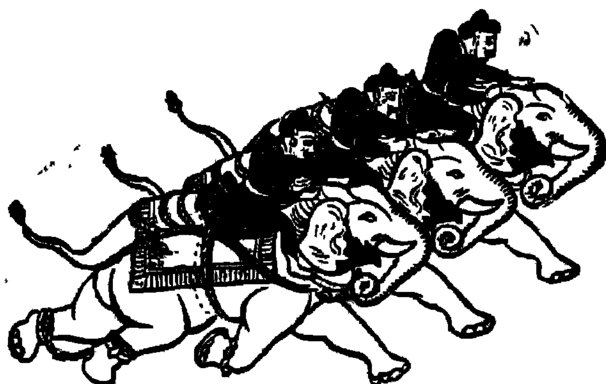
इस प्रकार महाकवि श्री हरिचन्द्र द्वारा विरचित धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्यमें इक्कीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।



प्रशस्ति

श्रीमान् तथा अपरिमित महिमाको धारण करनेवाला वह नोमक वंश था जो कि समस्त भूमण्डलका आभरण था तथा जिसका हस्तालम्बन पा लक्ष्मी वृद्ध होने पर भी दुर्गम मार्गोंमें कभी स्खलित नहीं होती ॥ १ ॥ उस नोमक वंशमें निर्मल मूर्तिके धारक वह आर्द्र-देव हुए जोकि अलंकारोंमें मुक्ताफलकी तरह सुशोभित होते थे। वह कायस्थ थे, निर्दोष गुणग्राही थे और एक होकर भी समस्त कुलको अलंकृत करते थे ॥ २ ॥ उनके महादेवके पार्वतीकी तरह रथ्या नामकी प्राणप्रिया थी जो कि सौन्दर्यकी समुद्र, कलाओंका कुल भवन थी, सौभाग्य और उत्तम भाग्यका क्रीड़ाभवन थी, विलास के रहनेकी अट्टालिका थी, सम्पदाओंके आभूषणका स्थान थी, पवित्र आचार विवेक और आश्चर्यकी भूमि थी ॥१३॥ उन दोनोंके अर्हन्त भगवान्के चरण-कमलोंका भ्रमर हरिचन्द्र नामका वह पुत्र हुआ जिसके कि वचन गुरुओंके प्रसादसे सरस्वतीके प्रवाहमें—शास्त्रोंमें अत्यन्त निर्मल थे ॥४॥ वह हरिचन्द्र श्रीरामचन्द्रजीकी तरह भक्त एवं समर्थ लघु भाई लक्ष्मणके साथ निराकुल हो बुद्धिरूपी पुलको पाकर शास्त्ररूपी समुद्रके द्वितीय तटको प्राप्त हुआ था ॥ ५ ॥ पदार्थों की विचित्रता रूप गुप्त सम्पत्तिके समर्पणरूप सरस्वतीके प्रसादसे सभ्योंने उसे सरस्वतीका अन्तिम पुत्र होने पर भी प्रथम पुत्र माना था ॥६॥ जो रस, रूप, ध्वनिके मार्गका मुख्य सार्थवाह था ऐसे उसी महाकविने कानोंमें अमृतरसके प्रवाहके समान यह धर्मशर्माभ्युदय नामका महाकाव्य रचा है ॥ ७ ॥ मेरा यह काव्य निःसार

होने पर भी जिनेन्द्र भगवान्के निर्दोष चरित्रसे उपादेयताको प्राप्त होगा। क्या राजमुद्रासे चिह्नित मिट्टीके पिण्डको लोग उठा-उठाकर स्वयं मस्तक पर धारण नहीं करते ॥ ८ ॥ समर्थ विद्वानोंने नये-नये उल्लेख अर्पण कर जिसकी बड़े आदरके साथ अच्छी परीक्षा की है, जो विद्वानोंके हृदयरूप कसौटीके ऊपर सैकड़ों बार खरा उतरा है, और जो विविध उक्तियोंसे विचित्र भाव भी घटनारूप सौभाग्यका शोभाशाली स्थान है। वह हमारा काव्यरूपी सुवर्ण विद्वानोंके कर्ण-युगलका आभूषण हो ॥ ९ ॥ यह जिनेन्द्र भगवान्का मत जयवन्त हो, यह दया क्रूर प्राणियोंको भी शान्त करे, लक्ष्मी निरन्तर सरस्वतीके साथ साहचर्यव्रत धारण करे, खल पुरुष गुणवान् मनुष्योंमें ईर्ष्याको छोड़ें, सज्जन संतोषकी लीलाको प्राप्त हों और सभी लोग कवियोंके परिश्रमको जानने वाले हों ॥ १० ॥



ज्ञानपीठ के सुरुचिपूर्ण हिन्दी प्रकाशन

श्री० बनारसीदास चतुर्वेदी
- हमारे आराध्य ३)
- संस्मरण ३)
- रेखाचित्र ४)

श्री० अयोध्याप्रसाद गोयलीय
- शेरो-शायरी ८)
- शेरो-सुखन [पाँचोंभाग] २०)
- गहरे पानी पैठ २॥)
- जैन-जागरणके अग्रदूत ५)

श्री० कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर
- आकाश के तारे : धरती के फूल २)
- जिन्दगी मुसकराई ४)

श्री० मुनि कान्तिसागर
- खण्डहरों का वैभव ६)
- खोजकी पगडंडियाँ ४)

डॉ० रामकुमार वर्मा
- रजतरश्मि [नाटक] २॥)

श्री० विष्णु प्रभाकर
- संघर्षके बाद [कहानी] ३)

श्री० राजेन्द्र यादव
- खेल-खिलौने [कहानी] २॥)

श्री० मधुकर
- भारतीय विचारधारा २)

श्री० सम्पूर्णानन्द
- हिन्दू विवाहमें कन्या-दानका स्थान १)

श्री० हरिवंशराय बच्चन
- मिलनयामिनी [गीत] ४)

श्री० अनूप शर्मा
- वर्द्धमान [महाकाव्य] ६)

श्री० वीरेन्द्रकुमार एम० ए०
- मुक्तिदूत [उपन्यास] ५)

श्री० रामगोविन्द त्रिवेदी
- वैदिक साहित्य ६)

श्री० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य
- भारतीय ज्योतिष ६)

डॉ० जगदीशचन्द्र जैन
- दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ ३)

श्री० नारायणप्रसाद जैन
- ज्ञानगंगा [सूक्तियाँ] ६)

श्रीमती शान्ति एम० ए०
- पंचप्रदीप [गीत] २)

श्री० 'तन्मय' बुखारिया
- मेरे बापू [कविता] २॥)

श्री० राजकुमार जैन साहित्याचार्य
- अध्यात्म-पदावली ४)

श्री० बैजनाथ सिंह विनोद
- द्विवेदी-पत्रावली २॥)